वर्ष: 46 , अंक: 3 मई – जून 2023

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

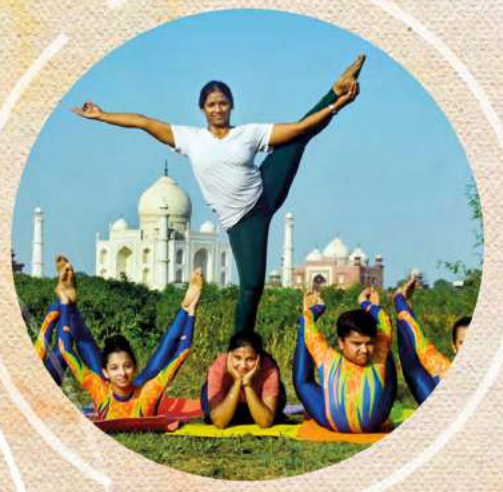

विश्व में व्यापक होता योग

"काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में प्रलय होएगी, बहुरि करेगा कब"

भक्तिकालीन युग में ज्ञानश्रयी-निर्गुण
शाखा की काव्यधारा के प्रवर्तक

संत कबीर दास जी की जयंती

पर शत्-शत् नमन।

ISSN : 0971-1430

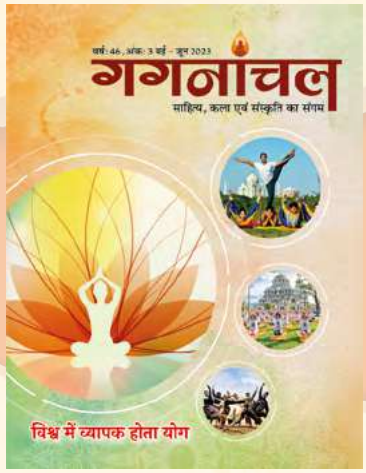

वर्ष. 46 , अंक: 3 , मई - जून 2023

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

प्रकाशक

कुमार तुहिन

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

रवि शंकर

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

इस अंक के आकर्षण

विश्वव्यापक होता योग

एक खानाबदोश संस्कृति है कजाख

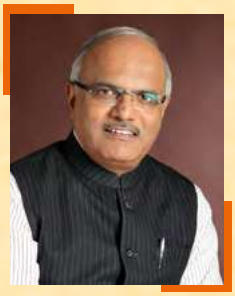

सौम्य सम्पदा बनेगी सांस्कृतिक सम्बन्धों का आधार

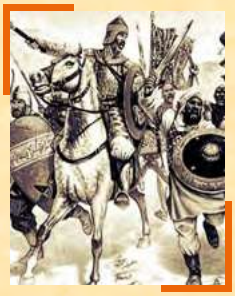

असम के वीर नायक महाराज पृथु

सूरीनाम में भारतीयों का स्वर्णिम इतिहास

कविता में भारतीय संस्कृति

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

अनुक्रम

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम
मई-जून, 2023, वर्ष 46, अंक 03

प्रकाशकीय

3 **आवश्यक है सौम्य सम्पदाओं पर शोध**
कुमार तुहिन

संपादकीय

4 **विश्वहृदय पर राज करती हैं भारतीय विद्याएँ**
रवि शंकर

आवरण कथा

5 **विश्व में फैलता योग**
आचार्य बालकृष्ण

9 **प्रशांत क्षेत्र में योग और उसकी चुनौतियां**
अनिल शर्मा 'जोशी'

13 **बुल्गारिया में योग का प्रचार**
एवगेनिया बेलसेवा

16 **यूरोप में योग और उसकी चुनौतियां**
गिलेटा डर्जिनाउस्के

साक्षात्कार

18 **सौम्य संपदा बनेगी सांस्कृतिक सम्बन्धों का आधार**
डॉ. विनय सहस्रबुद्धे

प्रवासी भारतीय

22 **पीढ़ियों के संघर्ष की अविस्मरणीय गाथा**
डा. मोहन कांत गौतम

28 **कठोरतम प्रवास में भी की स्वभाषा की रक्षा**
प्रो. डा. पुष्पिता अवस्थी

34 **भारतवंशी भाषा एवं संस्कृति की परिचायक पुस्तक**
डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

35 **कजाखस्तान और भारत में शांति और सद्भाव**
जेनार केसिमोवा

37 **एक खानाबदोश संस्कृति है कजाख**
जरीना अबि लमझिनोवा

39 **बदलते विश्व में बदलता भारत**
अब्दुल्ला अली अलकुदारी

इतिहास

43 **कश्मीर का गौरव ग्रंथ राजतरंगिणी**
गौरीशंकर वैश्य विनम्र

46 **विक्रमादित्य की शासन पद्धति के विविध आयाम**
सौरभ जैन

50 **असम के वीर नायक महाराज पृथु**
डॉ. राजश्री देवी और डॉ. रक्तिम पाटर

साहित्य

54 **भारतीयता का प्राणतत्व : रामभक्ति काव्य**
डॉ. चंदन कुमारी

59 **हिन्दी उपन्यास और 1857 का संघर्ष**
डॉ. उन्मेष कुमार सिन्हा

64 **हिन्दी साहित्य में आषाढ़ का महत्त्व**
डॉ. अभिषेक मिश्र

76 **कविताओं में भारतीय संस्कृति**
डॉ. पवनपुत्र बादल

81 **मातृभाषा में शिक्षा: विविध आयाम**
डॉ. गौरव रंजन

84 **भारत की राजभाषा में लिपि विमर्श**
यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

स्थायी स्तम्भ

67 **द फ्युनरल सर्विस**
श्रीमती अंजु रंजन

75 **कविता**
मदन गोपाल शर्मा, डॉ. प्रशांत आचार्य

88 **गतिविधियाँ**

प्रकाशकीय

आवश्यक है सौम्य सम्पदाओं पर शोध

भारत की सम्पूर्ण संस्कृति को अपने गगन समान अंचल में समेटने की आकांक्षा लिये भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद गगनांचल का प्रकाशन करती है। स्वाभाविक ही है कि जो परिषद् के उद्देश्य हैं, वही गगनांचल के भी होंगे। गगनांचल को भारत के शोधार्थियों का जो स्नेह प्रेम मिल रहा है, वह अतुलनीय है। आप अपने आलेख नियमित रूप से हमें भेजते हैं, इसके लिए आप सभी का अभिनंदन। आग्रह केवल इतना है कि अपने शोध संसार से केवल वही आलेख हमें भेजें जो गगनांचल के उद्देश्यों के अनुकूल हो।

चूँकि गगनांचल सांस्कृतिक संबंध परिषद की पत्रिका है, इसका उद्देश्य है विदेशों में भारतीयों तथा विदेशी हिन्दी पाठकों के समक्ष भारत के सांस्कृतिक पक्ष को मजबूत करने तथा उसके विश्व के साथ सम्बन्धों को स्थापित करने वाले शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत करना। भारत की संस्कृति के अनेक आयाम हैं, जिनकी ओर पूरा विश्व आकर्षित होता है। भारत की परिवार व्यवस्था, आत्मीय तथा मानवीय व्यवहार, प्रकृति प्रेम आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनको अपनाने की आकांक्षा पूरा विश्व करता है। भारत की ऐसी सौम्य सम्पदाओं पर शोधपूर्ण आलेखों का हमेशा सहर्ष स्वागत रहेगा।

इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय समाज में सब कुछ अच्छा ही है, कुछ भी गलत नहीं है। प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ विकृतियां कालप्रवाह में आती ही रहती हैं। समाज उनका निराकरण भी करता रहता ही है। इस तरह के निराकरण करने में शोधकर्ताओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि वे ही अपने शोध से समस्याओं को चिह्नित भी करते हैं और उनके समाधान की राह भी प्रस्तुत करते हैं। परंतु ऐसे आत्मावलोकन हमेशा आत्मस्थ हो कर ही किया जाता है। आत्मावलोकन है ही व्यक्तिगत विषय। सार्वजनिक रूप से कभी भी आत्मावलोकन नहीं किया जाता। समाज भी अंतस्थ हो कर ही आत्मावलोकन करता है। परंतु परिषद् तथा गगनांचल की भूमिका बहिर्मुखी है, अंतर्मुखी नहीं। यह पत्रिका विश्व में भारत का चेहरा प्रस्तुत करती है। स्वाभाविक ही है कि आवश्यक होने पर भी इसका विषय अपनी विकृतियों की चर्चा करना नहीं हो सकता। इसके लिए अन्यान्य और भी कई सारी पत्रिकाएँ निकलती ही हैं, निकलनी भी चाहिएं। अतः सभी शोधकर्ताओं और लेखकों से आग्रह है कि गगनांचल हेतु उसके उद्देश्यों को ध्यान में रख कर ही आलेख भेजें।

भारत ने अपनी सौम्य सम्पदाओं के माध्यम से ही विश्व के हृदय पर शासन किया है। आज भी हम देख सकते हैं कि पूरे विश्व में योग का स्वागत हो रहा है। कोरोनाकाल में पूरे विश्व में भारत के आयुर्वेद की प्रतिष्ठा बढ़ी। भारतीय समाज व्यवस्थाओं में परम्परा से जिन वर्जनाओं और स्थापनाओं का पालन किया जाता रहा है, कोरोनाकाल में उनकी उपादेयता पर पूरे विश्व में चर्चा हुई। सम्पूर्ण विश्व ने हाथ मिलाकर हैलो कहने की बजाय हाथ जोड़ कर नमस्ते करने को एक श्रेष्ठ परम्परा के रूप में स्वीकार किया।

इसी प्रकार कोरोनाकाल के एकाकी जीवन के दौर में परिवार के महत्त्व पर भी सभी का ध्यान गया है। परिवार कैसे हमारे अवसाद को कम करता है और साथ मिल कर कैसे हम बड़ी से बड़ी समस्याओं का सामना कर सकते हैं, यह कोरोनाकाल ने हमें सिखाया है। कोरोना तो एक उदाहरण था, एक सबक था। वह व्यतीत हो चुका है। परंतु क्या हम कह सकते हैं कि ऐसी समस्याएं हमारे जीवन में फिर नहीं आने वाली हैं? समस्याएं जीवन में हमेशा आती ही रहती हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में भारतीय जीवन मूल्य केवल हमारा ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व का मार्ग दर्शन कर सकते हैं।

आज के समय में भारत की ऐसी सौम्य सम्पदाओं पर शोध और चर्चा किया जाना आवश्यक हो गया है। आने वाले अंकों में हम भारत की ऐसी ही सौम्य सम्पदाओं तथा परम्पराओं पर चर्चा और विमर्श करेंगे। भारत की लोक परम्पराओं और उनमें निहित इतिहास, विज्ञान, समाजविज्ञान, पर्यावरणप्रेम, प्रकृति संरक्षण जैसे विषयों पर चर्चा की जाएगी। गगनांचल के इस अभियान में आप सभी शोधार्थियों के पूर्ववत् सहयोग की आवश्यकता और अपेक्षा दोनों ही रहेगी।

कुमार तुहिन
महानिदेशक

संपादकीय

विश्वहृदय पर राज करती हैं भारतीय विद्याएँ

कहते हैं कि भारत कभी विश्वगुरु था। इसका केवल एक ही तात्पर्य है कि भारतीय विद्याओं तथा उनके आचार्यों का सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठा करता था। देखा जाए तो आज भी भारतीय विद्याओं तथा उनके आचार्यों का विश्व में प्रतिष्ठा है ही। हाँ, पाश्चात्य यानी यूरोपीय विद्याओं में भारतीय आचार्यों की प्रतिष्ठा भले ही थोड़ी कमतर मानी जा रही है। हालाँकि पाश्चात्य विद्याओं पर आधारित तकनीकियों में भारतीयों की ही उपलब्धियां अधिक हैं, परंतु धन और उस पर आधारित सत्ता के कारण उन उपलब्धियों के बाद भी पाश्चात्य विद्याओं के भारतीय संस्थानों की प्रतिष्ठा कुछ अधिक नहीं है।

आयुर्वेद, संस्कारों का विज्ञान, कुटुम्ब यानी परिवार तथा वसुधैव कुटुम्बकम् का समाजशास्त्र, मसाले, सब्जियां तथा पाकविद्या और योग तथा अध्यात्म आदि विद्याएँ भारतीय विद्याएं ही हैं। कोरोनापश्चात् के विश्व में इन सभी विद्याओं और इनके भारतीय आचार्यों की प्रतिष्ठा भरपूर बढ़ी है। यह सत्य है कि विदेशी लोग भारत में ताजमहल देखने आते हैं, परंतु उससे अधिक वे भारत के योगियों से आकर्षित होते हैं। यदि उन्हें ऐसे योग केंद्रों तथा आयुर्वेद के संस्थानों में ले जाया जाए तो वे अधिक प्रसन्न होते हैं। भारत के आध्यात्मिक गुरुओं से मिलना उनके लिए आह्लादकारी होता है। यह भी सही है कि साधुओं की वेशभूषा उनमें कौतुहल का निर्माण करती है, परंतु यह कहना भी गलत होगा कि केवल वेशभूषा उन्हें आकर्षित करती है।

भारतीय परिवारों में ठहरना उन्हें पंचसितारा होटलों में ठहरने से अधिक अच्छा लगता है। भारतीय व्यंजनों का आस्वादन और उनकी निर्माणविधि सीखना उन्हें प्रिय है। भारत आने के बाद वे शाकाहारी होना पसंद करते हैं। भारतीय परिधान और गहने पहनना उन्हें अत्यधिक प्रिय है। नमस्ते तो कोरोनापश्चात् के विश्व में लोकप्रिय हुआ ही है।

ये विद्याएं किसी धन या सत्ता की मुखापेक्षी नहीं हैं। स्वाभाविक बात है कि यदि विश्व में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ानी हो तो विकास के आधुनिक व्ययसाध्य कार्यों से कहीं अधिक ये विद्याएं काम करती हैं। परम ऐश्वर्य तथा सादगी में सामंजस्य बैठाने वाली भारत की सर्वव्यापी आध्यात्मिक संस्कृति ही भारत की वह शक्ति है, जो सम्पूर्ण विश्व के हृदय पर राज करती रही है और आज भी करती है।

आवश्यकता केवल इतनी सी है कि हम स्वयं अपनी इन शक्तियों को जाने और पहचानें। इस अंक में योग पर दी गई संक्षिप्त सामग्री से यह कुछ-कुछ स्पष्ट हो रहा है। साथ ही गिरमिटिया मजदूर बनाकर ले जाए गए भारतीयों के सूरीनाम पहुँचने की 150वें वर्ष पर प्रस्तुत दो आलेखों से भी यह काफी कुछ समझ आता है। जबरन प्रवासी बना दिये गए इन भारतीयों ने घोरतम अभावों और कष्टों में भी जिस प्रकार अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बचा कर रखा और इन सांस्कृतिक मूल्यों ने जिसप्रकार उन्हें बचा कर रखा, उसके कारण ही आज वे उन देशों में शीर्ष पदों पर बैठे हैं। अन्यथा भारत में जो प्रवासी यूरोपीय आए और कभी शीर्ष पदों पर बैठने का दावा किया, वे यहाँ आज पर्यटक मात्र बन कर रह गए हैं। यह भारतीय संस्कृति की ही ताकत है जिसने इन प्रवासी भारतीयों की न केवल रक्षा की, बल्कि उन्हें इस योग्य बना दिया कि वे उस विश्व पर आज राज कर रहे हैं, जहाँ वे कभी गुलाम हुआ करते थे।

इसलिए गगनांचल के आने वाले अंकों में हम भारतीय संस्कृति की उन्हीं शक्तियों पर शोध, चिंतन और मंथन करने वाले हैं। वैसे भी भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की पत्रिका होने के नाते गगनांचल का यह दायित्व बनता है कि वह भारतीय संस्कृति की कीर्तिपताका सम्पूर्ण विश्व में लहराये। इस विधायी कार्य में आप सभी सुधी पाठकों, लेखकों, शोधार्थियों और गुरुजनों का सहयोग तथा आशीर्वाद प्राप्त होगा, इसी आकांक्षा के साथ अपने संपादकत्व में यह प्रथम अंक आप सभी को समर्पित कर रहा हूँ।

रवि शंकर
मोबाइल : +91-8076624400
ई-मेल : editor-iccr@govcontractor.in

विश्व में फैलता योग

– आचार्य बालकृष्ण

> **यह भारतवर्ष के लिये बहुत बड़े गौरव की बात है कि भारतवर्षीय ऋषियों की सर्वश्रेष्ठ, वैज्ञानिक, प्रामाणिक व सार्वभौमिक खोज योग आज दुनिया के सबसे अधिक प्रचलित शब्दों में है। वर्तमान समय में श्रद्धेय योगर्षि स्वामी रामदेव जी महाराज के पावन तप व अखण्ड पुरुषार्थ से इस दुनिया की लगभग पूरी आबादी योग तथा योग से सम्बद्ध आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान, समाधि आदि शब्दों से परिचित हो रही है। यह अत्यन्त हर्ष की बात है।**

योग पाँच हजार वर्षों से भी अधिक समय से प्रचलन में है, जिसकी उत्पत्ति भारत में हुई। योग एक प्राचीन, शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अभ्यास है। योग शब्द संस्कृत से लिया गया है, जिसका अर्थ है जुड़ना अर्थात् शरीर और चेतना का मिलन। इस पृथ्वी पर योगविद्या या ब्रह्मविद्या से लेकर जितनी भी तरह की विद्याएं हैं उन सभी का जनक वेद है। स्मृति शास्त्रों में योग को मुख्य तत्त्व के रूप में स्वीकार करके धर्मों का विश्लेषण किया गया है। मनु का दशाङ्गधर्म योग के प्रकरण के अंतर्गत निर्दिष्ट है। इस प्रकार यह मनु की श्रद्धामयी योगज दृष्टि को व्यक्त करता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के आरम्भ में ही योग द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार का मुख्य ध्येय निर्दिष्ट किया गया है। यही ब्रह्मयोग कालान्तर में सांख्ययोग, ज्ञानयोग, राजयोग आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ। चारों वेदों, ब्राह्मण, आरण्यक व कुछ उपनिषदों में योग की अनेक संकल्पनाओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। युञ्जते मन उत युञ्जते धियः ऋचा में विद्वान् योगी द्वारा चित्त (मन) और इसकी वृत्तियों को योग में लगाने की बात कही गयी है। ऋग्वेद में योग की महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यस्मादृते न सिद्ध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति। वैदिक वाङ्गमय में अष्टाङ्गयोग, पञ्चकोश आदि विषयों का व्यापक निरूपण देखने को मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वैदिक काल में योग को विशेष महत्व दिया जाता था। स्मृतियों में योग तत्त्वों का वर्णन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। महर्षि पतञ्जलि-प्रदत्त योग की परिभाषा योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः अर्थात् चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं, वही उनके द्वारा ही प्रतिपादित एक अन्य सूत्र यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाधयोऽष्टाङ्गानि प्रज्ञा की सर्वोच्च स्थिति की ओर संकेत करती है।

योग सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन महत्व की ऋषि-मुनियों की एक अनमोल विरासत है। भगवद्गीता में दी गई परिभाषा के अनुसार कर्म करने में सबसे बड़ी कुशलता (चातुर्य) ही योग है। इस योग को जीवन में अपनाने से बंधन स्वभाव वाले कर्म भी योगी को बंधन में नहीं डाल पाते हैं। शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म एवं शुद्ध उपासना अर्थात् ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्तियोग-यह योग की त्रिवेणी है। यह एकमात्र ऐसा दर्शन है, जिसके सबल सैद्धान्तिक पक्ष का ही नहीं, अपितु उन्हें बोध कराने वाले

क्रियात्मक साधनों का भी ऋषियों ने प्रतिपादन किया है, जिन्हें आचरण में लाकर प्रत्येक मनुष्य अपना कल्याण अपने हाथों करने की योग्यता व क्षमता प्राप्त कर लेता है।

समाधि योग का अन्तिम अंग है। यह योग की अति उच्च स्थिति है। योगसूत्र के प्रथम पाद (समाधि पाद) में महर्षि पतञ्जलि ने इसका निरूपण किया है। जिनका चित्त जन्म-जन्मान्तर की साधना से निर्मल एवं शान्त है, जो इन्द्रिय-विषयों के प्रति सर्वथा अनासक्त एवं वीतराग हैं, ऐसे साधक शीघ्र ही चित्तवृत्तियों का निरोध कर समाधि की अवस्था पा लेते हैं।

योग पूजा-पाठ की कोई विधा नहीं है, बल्कि इससे व्यक्ति के समूचे जीवन में सकारात्मक व गुणात्मक परिवर्तन होते हैं। योगाभ्यास के सहारे मानव अपने शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को तो अक्षुण्ण रखता ही है, साथ ही श्रद्धा, ब्रह्मचर्य, विद्या तथा तपस्यापूर्वक निरन्तर इसके अनुष्ठान से उसका योगाभ्यास दृढ़ हो जाता है और वह योगाभ्यास अभ्यासी के लिए परमात्मा को पाने का मार्ग प्रशस्त करता है।

योग में जीवन व जगत् से सम्बद्ध सभी समस्याओं का पूर्ण समाधान विद्यमान है, यह सर्वविदित सत्य-तथ्य है। 21वीं सदी में आज योग शब्द जन-जन की जिह्वा पर है। योग आज समग्र विश्व को सूर्य की भाँति उपकृत कर रहा है। बालक हो या युवा, प्रौढ़ हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, अशिक्षित हो या शिक्षित, प्रायः सभी योग शब्द से परिचित हैं। इतना ही नहीं आज पूरी दुनिया योग को अपने लिए अनन्य व उपयोगी मानती है। योग के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक व नैतिक-लाभ से सम्पूर्ण मानव-जगत् परिचित हो चुका है। हाँ, यह सत्य है कि अभी भी योग को देखने का सभी का दृष्टिकोण सर्वाङ्गीण नहीं हो पाया है। कोई योग को विभिन्न आधि-व्याधियों को जीवन से दूर करने का तथा उनसे बचने का सर्वश्रेष्ठ उपाय मानता है, तो कोई श्रेष्ठ व्यक्तित्व के निर्माण का साधन और कोई त्रिविध दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति का एकमेव माध्यम मानता है।

सभी इस बात पर एकमत हैं कि योग किसी विशेष मत, पन्थ, सम्प्रदाय, वर्ग या जाति से सम्बद्ध नहीं है। योग मात्र आसन-प्राणायाम की क्रियाओं का ही नाम नहीं, अपितु मानव के मानस (चित्त) में निहित सम्पूर्ण जिज्ञासाओं, प्रश्नों, शंकाओं और सम्पूर्ण समस्याओं का एकमात्र समाधान है। यह ऋषि-संस्कृति का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, सभ्यता, संस्कृति व परम्पराओं का भी प्राण है। इस दिव्य ज्ञान से समस्त मानव-जाति को परिचित होना चाहिए। कम से कम भारतवर्ष के प्रत्येक व्यक्ति को तो इस ज्ञान से युक्त होना ही चाहिए, जिससे कि वह अपने पूर्वज ऋषियों की भाँति पुनः पूरे विश्व का मार्गदर्शन कर सके।

वैश्विक दृष्टि से देखा जाय तो योग आज बीहड़ जंगलों व गुफा-कन्दराओं से निकलकर गाँव के गलियारों, शहरों के कोलाहल में भी शान्ति की तलाश में भटकते मानवों की जीवन-शैली का हिस्सा बन रहा है। अब लोग यह समझ चुके हैं कि योग मात्र जंगलों में बैठकर या गुफा-कन्दराओं में छिपकर या घर-परिवार व समाज से दूर रहकर केवल साधु-संन्यासियों के द्वारा की जाने वाली कोई रहस्मयी विद्या ही नहीं है, बल्कि करोड़ों मानवों के जीवन से जुड़ी हुई पीड़ा का समाधान है। बहुत सारे लोग इस अनादि सत्य को समझ गए हैं कि योग ही दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति का एकमात्र साधन है। असाध्य माने जाने वाले मधुमेह, उच्च रक्तचाप, कैन्सर, डिप्रेशन आदि रोगों की सरल, सफल व प्रामाणिक चिकित्सा के रूप में योग पूरे विश्व में फैल चुका है। देर रात तक कॉर्पोरेट सेक्टर में काम करनेवाला व्यक्ति भी निद्रा की गोद में समाहित होने के लिए योग का सहारा ले रहा है।

दूसरी तरफ देखा जाय तो योग रोजगार का साधन भी बनकर उभरा है। इसे व्यावसायिक रूप से भी युवा अपना रहे हैं। आज योग लाखों युवाओं के लिए स्वाभिमान के साथ जीने का सहारा भी बना है। घरेलू गृहिणी से लेकर देर रात तक कार्य में व्यस्त लोगों के लिये योग-प्रशिक्षकों की माँग दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। इसके साथ ही देश-विदेश के बहुत सारे विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में भी योग पाठ्यक्रम का हिस्सा बनता जा रहा है, जिसके कारण समाज में एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण हो रहा है, जो दिखने में भले ही सामान्य क्यों न हो; परन्तु आन्तरिक रूप से पूरी तरह योग में रंगी हुई है। सम्पूर्ण दुनिया जीवन व जगत् से सम्बद्ध सभी क्षेत्रों में योग की उपयोगिता को दिन-प्रतिदिन आवश्यक अनुभव करती जा रही है। वस्तुतः लोग योग से जितनी अपेक्षा कर रहे हैं, योग उन्हें उससे कई गुना अधिक लाभ पहुँचा रहा है।

योग शनैः-शनैः प्रत्येक परिवार, गली, गाँव शहर, देश और

सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित कर रहा है। आज योग विश्व के अन्तिम व्यक्ति तक पहुँचने के क्रम में है। योग को जन-जन तक पहुँचाने में ज्ञात-अज्ञात हजारों प्राचीन एवं अर्वाचीन योगियों, ऋषियों, मुनियों व आचार्यों आदि का विशेष योगदान रहा है। सृष्टि के आदिकाल से सतत प्रवहमान योग-परम्परा को इसके शुद्ध स्वरूप में लाखों-करोड़ों लोगों तक प्रत्यक्ष पहुँचाने में पतञ्जलि योगपीठ का ज्ञात इतिहास में अतुलनीय योगदान रहा है। योग को जन-आन्दोलन बनाने का श्रेय भी इसी अभियान को जाता है। सभी के अथक प्रयासों का परिणाम है कि 21 जून को पूरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है।

यह भारतवर्ष के लिये बहुत बड़े गौरव की बात है कि भारतवर्षीय ऋषियों की सर्वश्रेष्ठ, वैज्ञानिक, प्रामाणिक व सार्वभौमिक खोज योग आज दुनिया के सबसे अधिक प्रचलित शब्दों में है। वर्तमान समय में श्रद्धेय योगर्षि स्वामी रामदेव जी महाराज के पावन तप व अखण्ड पुरुषार्थ से इस दुनिया की लगभग पूरी आबादी योग तथा योग से सम्बद्ध आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान, समाधि आदि शब्दों से परिचित हो रही है। यह अत्यन्त हर्ष की बात है।

एक रिपोर्ट के अनुसार, आज समूचे विश्व में लगभग 30 करोड़ लोग नियमित योग का अभ्यास करते हैं, जिनमें अमेरिका में लगभग 3.6 करोड़ लोग हैं। जहाँ ऐसे लोगों की संख्या वर्ष 2020 तक बढ़कर लगभग 5.5 करोड़ हो गयी। वर्ष 2019 तक वैश्विक योग उद्योग लगभग 37.46 अरब डालर का था। इस उद्योग से अमेरिका को सालाना 9.09 अरब डालर के राजस्व की प्राप्ति होती है और वहाँ के योग उद्योग में चक्रवृद्धि वार्षिक विकास की दर 2021 से 2027 तक 9.6 प्रतिशत होने की उम्मीद है।

अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस प्रति वर्ष 21 जून को मनाया जाता है जिसकी पहल भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने 27 सितम्बर 2014 को संयुक्त राष्ट्र महासभा में की थी। अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस प्रति वर्ष 21 जून को मनाने के प्रस्ताव की मंजूरी संयुक्त राष्ट्र के 177 सदस्यों द्वारा 11 दिसम्बर 2014 कोदी गयीथी। पहली बार यह दिवस 21 जून 2015 को मनाया गया। तब से हर साल इसे 21 जून को पूरे विश्व में हर्षोल्लास पूर्वक मनाया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का उद्देश्य आत्म-जागरूकता और मन की शान्ति के लिए ध्यान केन्द्रित करना है जो स्वस्थ और तनाव-मुक्त जीवन जीने के लिए आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी अपने सदस्य देशों से योग का अभ्यास करने के लिए आग्रह किया है और इसे शारीरिक गतिविधि के लिए अपनी वर्ष 2018-30 की वैश्विक कार्य-योजना में शामिल किया है। भारत के खेल मंत्रालय ने भी एक खेल अनुशासन के रूप में योग को मान्यता दी है एवं प्रधानमंत्री मोदी जी ने एम-योग ऐप की घोषणा की है जो एक विश्व एक स्वास्थ्य के लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद करेगा। भारत में योग फिट इन्डिया मूवमेंट का एक हिस्सा है।

आधुनिक समय में योग एक मिशन ही नहीं अपितु एक अत्यांत लोकप्रिय प्रोफेशन यानी व्यवसाय भी बन चुका है। आज भारत सहित विश्व के कई विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में योग के पाठ्यक्रम प्रारम्भ हो चुके हैं जिनमें स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर उपाधियाँ प्रदान की जा रही हैं एवं शोध की सुविधा है।

एक रिपोर्ट के अनुसार, आज समूचे विश्व में लगभग 30 करोड़ लोग नियमित योग का अभ्यास करते हैं, जिनमें अमेरिका में लगभग 3.6 करोड़ लोग हैं। जहाँ ऐसे लोगों की संख्या वर्ष 2020 तक बढ़कर लगभग 5.5 करोड़ हो गयी। वर्ष 2019 तक वैश्विक योग उद्योग लगभग 37.46 अरब डालर का था। इस उद्योग से अमेरिका को सालाना 9.09 अरब डालर के राजस्व की प्राप्ति होती है और वहाँ के योग उद्योग में चक्रवृद्धि वार्षिक विकास की दर 2021 से 2027 तक 9.6 प्रतिशत होने की उम्मीद है। एक अध्ययन के अनुसार, अमेरिका में वर्ष 2012 और 2016 के बीच योग का अभ्यास करने वालों की संख्या 40 लाख से बढ़कर एक करोड़ हो गयी, जिसकी वृद्धि दर लगभग 150 प्रतिशत थी। यदि देखा जाय तो एक अमेरिकी योग व्यवसायी कक्षाओं, कार्यशालाओं और उपकरणों पर प्रति वर्ष 1080 डालर खर्च करता है। अमेरिका में आज प्रत्येक तीन में से एक व्यक्ति का रुझान योग की तरफ होता है। वर्तमान में अमेरिका में 48,547 योग और पिलेट्स स्टूडियो हैं।

इसी प्रकार यदि हम चीन के ऊपर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि

वहाँ पुरुषों की अपेक्षा महिलाएं स्वयं को स्वस्थ, चुस्त और युवा रखने के लिए योग का अभ्यास करती हैं। इस समय चीन में लगभग 10,800 पंजीकृत योग प्रशिक्षण केन्द्र काम कर रहे हैं। ब्रिटेन में भी योग व्यापक रूप से लोकप्रिय हो चुका है जहाँ लगभग 500,000 से अधिक लोग प्रति सप्ताह इसका अभ्यास करते हैं और कम से कम 30 लाख लोगों ने इसे आजमाया है।

इटली आज योग पर्यटन के लिए एक लोकप्रिय स्थान है, जहाँ वर्ष 2017 तक 830 मान्यता प्राप्त योग के स्कूल थे। यहाँ मुख्यतःएरिएल योग और एक्रोयोग को अपनाया गया है। एक रिपोर्ट के अनुसार, इटली में लगभग 10 प्रतिशत महिलाएं और 3 प्रतिशत पुरुष योग का अभ्यास करते हैं। रूस में लोग मुख्य रूप से एरिएल योग और जीवमुक्तियोग का अभ्यास करते हैं। मास्को में योग का पहला स्कूल 1993 में स्थापित किया गया था। इसके साथ ही विश्व के अन्य देशों में भी स्वस्थ जीवन जीने के लिए योग का नियमित अभ्यास किया जाता है।

योग से जीवन व जगत् से संबद्ध समस्त समस्याओं और विषमताओं पर नियंत्रण व विजय प्राप्त की जा सकती है। योग विज्ञान-सम्मत जीवन-शैली का नाम है, जिससे व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। इससे व्यक्ति न केवल आधि, व्याधि व उपाधि से मुक्त होता है, अपितु समाधि की प्राप्ति भी कर लेता है। प्रतिदिन योग करने से व्यक्ति के जीवन से रोग, शोक, क्षुद्रता, चिन्ता, तनाव, अवसाद, आत्मग्लानि, मोह व दरिद्रता आदि व्यक्ति की कमजोरियाँ समाप्त हो जाती हैं; ऐसे लोगों से युक्त समाज समतापूर्ण प्रगतिशील होता है तथा राष्ट्र समृद्ध व समर्थ बन जाता है। अतः पूरे विश्व को चाहिए कि वह प्रातः उठकर प्रतिदिन योग करे।

संदर्भ

1. Yoginidra, J.R (2022). 50 Blissful Yoga Statistics for 2022. https://yogaearth.com/yoga-research/yoga statistics/#:~:text=Yoga%20Mental%20and%20Emotional%20Health%20Benefits%20Statistics&text=63%25%20report%20yoga%20mentally%20motivates,of%20mental%20wellness%20and%20clarity. Accessed on 5 June.
2. Heilbron, C. (2021). Where Is Yoga the Most Popular in the World? https://www.yogabasics.com/connect/yoga-blog/yoga-popularity-by-country/. Accessed on 5 June.
3. McCain, A. (2023). 26 interesting yoga industry statistics [2023]: yoga trends + revenue, https://www.zippia.com/advice/yoga-industry-statistics/#:~:text=How%20much%20is%20the%20yoga,do%20yoga%20around%20the%20world. Accessed on 5 June.
4. Wei, M. (2016). New survey reveals the rapid rise of yoga — and why some people still haven't tried it. https://www.health.harvard.edu/blog/new-survey-reveals-the-rapid-rise-of-yoga-and-why-some-people-still-havent-tried-it-201603079179. Accessed on 5 June.
5. Zhang, Y., et. al. (2021). Increasing Trend of Yoga Practice Among U.S. Adults From 2002 to 2017. https://www.liebertpub.com/doi/10.1089/acm.2020.0506. Accessed on 5 June.
6. Patranobis, S. (2017). Women pushing the popularity of yoga in China, says govt research on the subject. https://www.hindustantimes.com/world-news/women-pushing-the-popularity-of-yoga-in-china-says-govt-research-on-the-subject/story-IEUY7xP6xgjatubnczDUPJ.html. Accessed on 5 June.
7. Carati, B. (2019). Yoga sempre più in voga, ma il settore non è regolato". La Stampa (in Italian).
8. COOP (2017). Rapporto COOP (in Italian). https://italiani.coop/rapporto-coop-2018-versione-definitiva/. Accessed on 5 June.
9. Yoga (2022). Festival dell' Oriente (in Italian). https://www.festivaldelloriente.it/piattaforma/yoga/. Accessed on 5 June.
10. Barashev, R. (2007). Yoga in Russian. RIA Novosti. https://ria.ru/20070903/76271972.html. Accessed on 5 June.

पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार

प्रशांत क्षेत्र में योग और उसकी चुनौतियां

- अनिल शर्मा 'जोशी'

> चार वर्षों तक प्रशांत क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन कर कुछ बातें विशेष रूप से सामने आयी। पूरा प्रशांत क्षेत्र मधुमेह से प्रभावित है। समुद्र के कारण पानी मीठा है। खाना अधिक खाया जाता है। फास्टफूड कंपनियों ने लोगों को कोकोकोला आदि नियमित पीने की आदत डाल दी है। इनके कारण फीजी व अन्य देश दुनिया में मधुमेह में सबसे आगे हैं। वहां सामाजिक कार्यक्रमों में ऐसे लोग मिल जाते हैं जिनका डायबिटीज के कारण हाथ या पैर कटे हों। उस क्षेत्र को योग की बहुत आवश्यकता है। फीजी, किरीबास व अन्य देशों में बड़ी संख्या में रोगियों को देखते हुए योग निशुल्क व निवारक चिकित्सा पद्धति है। इसकी वहां बहुत आवश्यकता है।

यह बात वर्ष 2015 की है। अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की शुरूआत हुई थी। मैने द्वितीय सचिव (हिंदी और संस्कृति) के रूप में फीजी के भारतीय उच्चायोग में मई, 2015 में कार्यभार ग्रहण किया था। मुझे उच्चायोग की और से यह कार्य सौंप दिया गया कि मुझे किरीबास नामक देश में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन करना है। मुझे तब तक उस देश के भूगोल और इतिहास का कुछ नहीं पता था। पता चला कि किरीबास वही देश है जो जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा जूझ रहा था। जून के शुरूआत में मुझे कहा गया कि आप तत्कालीन सांस्कृतिक केंद्र के निदेशक के साथ जाकर किरीबास में योग दिवस के सफल आयोजन की तैयारी करवाएं। हम लोग किरीबास पहुँचे। 21 जून 2015 की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उस दिन रविवार था। पैसेफिक के देशों में रविवार पूजा–अर्चना का दिन होता है। ज्यादातर लोग चर्च में जाते हैं। वहाँ कई तरह के चर्च थे। मुझे तैयारी के लिए गए जून के उस दिन की अभी तक याद है। हमारी फ्लाईट सुबह दस बजे के करीब किरीबास पहुँची। समुद्र पास होने के नाते वहाँ लगातार बरसात हो रही थी। किरीबास एक लंबी सड़क की तरह है।

सबसे पहले हम भारत के पासपोर्ट होल्डर से संपर्क किया। वे मद्रास से थे और ईसाई थे।वे वहाँ किसी स्कूल में एकाँऊटस का काम देख रहे थे। हम उस बरसात में उनके संस्थान के प्रांगण में उतरे। उन्होंने योग दिवस की तिथि आदि पूछी और हमें कहा कि यह संभव नहीं है। यहाँ रविवार को कुछ काम नहीं होता। उन्होंने हमसे पूछा कि क्या आपको पता है कि रविवार चर्च में जाने का दिन होने के नाते कुछ समय पूर्व यहाँ रविवार को फ्लाइट भी नहीं चलती थी। फीजी में भी रविवार के चलते वहाँ पर किसी गतिविधि के होने पर भारतीयों को सैन्य विद्रोह के समय में दंडित किया गया था, यह मेरी जानकारी में था। हम दोनों के चेहरे लटक गए। हम होटल पहुँचे। भारतीयों के बार में जानकारी लेने लगे। यहीं जानकारी मिली कि यहाँ के प्रमुख बैंक के मैनेजर भारतीय हैं और भारतीयों को बहुत सहायता करते हैं। उनसे मिलने पहुँचे तो पता चला कि वह वित्तीय गतिविधियों की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण बैंक है। कई पूर्व मंत्री लाइन में अपना नंबर आने का इंतजार कर रहे थे। वहाँ के अधिकारियों में भी कई सक्षम भारतीय थे। उन्होंने हमें बहुत सहयोग और बल दिया। प्रबंधक बैंगलूर से थे पर उस समय किरीबास में तैनात थे। उन्होंने रात्रि में हमें और वहां के पूर्व स्वास्थ्य मंत्री को रात्रि भोज पर आमंत्रित किया। लंबी बातचीत और विमर्श हुआ। उन्होंने बताया कि बैंक के आगे स्थित मैदान ही वहाँ होने वाले सभी कार्यक्रमों का प्रमुख

स्थल है। अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की भूमिका तैयार हो गयी। उनमें भारतीयता कूट -कूट कर भरी थी और वे सब प्रकार का सहयोग देने को तैयार हो गए थे। उन्होंने कहा कि पहली बार फीजी का उच्चायोग वहाँ कोई कार्यक्रम कर रहा है, हमारा पूरा सहयोग रहेगा।

अगले दिन सुबह वहां के स्वास्थ्य मंत्री के साथ मिलने का समय तय था। वे एक युवा व्यक्ति थे और स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ करने को उत्सुक थे। फीजी से उनका विशेष संबंध था क्योंकि डॉक्टर की डिग्री उन्होंने फीजी से ली थी। इसलिए भारतीयों से भली भांति परिचित थे। उन्होंने बातचीत थोड़े आक्रमक ढंग से शुरू की । उन्होंने कहा कि यह केवल औपचारिक कार्यक्रम है और एक दिवसीय आयोजन बन कर ही रह जाने वाला है तो उनकी विशेष रूचि नहीं, परंतु यदि हम योग को इस देश में स्थापित करना चागते हैं तो यह उस देश के लिए महत्वपूर्ण होगा और वे पूरा सहयोग देंगे। हमने कहा यह तो शुरूआत है। हम इस देश में योग के सतत विकास के लिए प्रतिबद्ध हैं। उन्हें अच्छा लगा और किरीबास का स्वास्थय मंत्रालय हमारे अभियान में सहयोगी बन गया।

इतने प्रयत्नों के बाद भी हमारी जान अटकी हुई थी। पता नहीं चर्च आदि के समय के दबाव के चलते लोग आएँ या नहीं। कार्यक्रम किरीबास के प्रमुख चौक पर प्रारंभ हुआ। देखते-देखते देश के प्रमुख लोग शामिल होने लगे। स्वास्थ्य मंत्री, कैबिनेट सचिव (महिला), उनका स्कूल जाता छोटा बेटा, उनका परिवार, विभिन्न विभागों के प्रमुख लोग। सबको योग में रूचि थी। उस वर्ष योग दिवस के अवसर पर प्रशांत क्षेत्र में आयोजित हुए कार्यक्रमों में वह कार्यक्रम सबसे अधिक प्रभावी रहा। हमारे योगाचार्य श्री इन्द्र देव से मैंने अनुरोध किया कि वे ऐसे आसन न कराएं, जिसके चलते स्थानीय लोग कठिनाई महसूस करें।

किरीबास में भारत और भारतीयता के प्रति विशेष प्रेम है। मैं और संस्कृति केंद्र के निदेशक कहीं भी जाते तो लोग हमें राहुल और विजय जैसे नामों से बुलाते। ये फिल्मों में मुख्य चरित्रों के नाम थे, जो कि उनके हिन्दी फिल्मों के प्रति प्रेम का परिचायक था। अगली बार जब मैं उच्चायुक्त श्री गीतेश शर्मा के साथ उनके एक्रेडिशन के लिए गया तो प्रोटोकोल अधिकारी ने बताया वहां तो रोज हिंदी गानों का कार्यक्रम आता है। उस समय वहां हुए संगीत कार्यक्रमों में 'गोरों की न कालों की' गीत काफी लोकप्रिय था और उसे पुरस्कार भी मिला। मुझे बताया गया कि वहां हिंदी फिल्में काफी लोकप्रिय हैं क्योंकि हॉलीवुड फिल्में उनकी संस्कृति के अनुरूप नहीं है। पर अब गानों में अश्लीलता और फूहड़ता बढ़ने के चलते बालीवुड फिल्मों के संबंध में उनकी आशंकाएं बनी हैं। योग के कारण मेरा पूरे देश में इतना सघन परिचय हो गया था कि उच्चायुक्त महोदय के साथ दूसरी यात्रा में मुझसे मिलने वालों की बड़ी संख्या को देखते हुए हमारे उच्चायुक्त महोदय ने मजाक किया कि आप तो यहाँ से चुनाव लड़ सकते हैं। उसी वर्ष फीजी, टोंगा, नोरू, आदि देशों में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के कार्यक्रम हुए। यह भारत सरकार का इन देशो में पहला ऐसा प्रयास था। इससे पूर्व कभी-कभी सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए थे।

वर्ष 2016 में चुनौतियाँ दूसरी थीं। हमारे उच्चायुक्त महोदय बदल गए थे और नए उच्चायुक्त महोदय श्री विश्वास सपकाल ने तय किया कि प्रशांत क्षेत्र के महत्वपूर्ण देश फीजी में कार्यक्रम की गरिमा और स्तर को बढ़ाया जाए। यह कार्यक्रम फीजी नेशनल विश्वविद्यालय, सुवा में आयोजित किया गया। महत्वपूर्ण बात यह थी कि इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि फीजी के महामहिम राष्ट्रपति थे। साथ ही कई अन्य मंत्रियों ने इसमें भाग लिया। माननीय अतिथियों ने आसन और प्राणायाम भी किए। महामहिम राष्ट्रपति जी द्वारा किया प्राणायाम का चित्र इंटरनेट पर काफी लोकप्रिय हो गया। कई अखबारों में भी छपा। योग में स्थानीय

सरकार की गहन रूचि का वह प्रमाण था। इससे फीजी में अंतरराष्ट्रीय योग दिवस को मान्यता मिली और फीजी में योग का प्रचार–प्रसार हुआ।

इस बीच वर्ष 2016 में मुझे अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के कार्यक्रम के लिए पुन : किरीबास जाने का मौका मिला। इस बार हमने वहां अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के तीन कार्यक्रम किए। पहला मुख्य चौक पर, दूसरा वहाँ के प्रमुख शिक्षा संस्थान में, तीसरा वहां के स्कूल में। सबमें अच्छी संख्या थी। इस बार शिक्षा संस्थान के कार्यक्रम में किरीबास के महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय पधारे। राष्ट्रपति महोदय देश में नहीं थे। इससे किरीबास में योग दिवस को अत्यंत लोकप्रियता मिली। विशेष यह था कि फीजी की एक योग साधक श्रीमती संगीता को व किरीबास में एक अस्पताल मे कार्यरत स्टाफ को हमने बैंगलूरू में योग सीखने के लिए एक मास की कार्यशाला में भेजा। श्रीमती संगीता आज भी फीजी के सांस्कृतिक केंद्र में योग सिखा रही हैं और किरीबास के योग साधक ने किरीबास में योग के प्रसार में बहुत मदद की।

जब से फीजी में गया मेरे घर और उच्चायोग के बीच संसद आती थी और संसद के सामने एल्बर्ट पार्क था, देश का सबसे बड़ा मैदान। जैसे, भारत में इंडिया गेट के सामने विशाल मैदान हो। देश की संसद के समीप होने के कारण एल्बर्ट पार्क आकर्षण का बड़ा केंद्र था। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि हम वहां योग दिवस का कार्यक्रम करें। परंतु इच्छाओं से सब कुछ संभव नहीं है, इसके लिए हजारों की संख्या चाहिए थी। उस समय शिक्षा मंत्री डॉ महेन्द्र रेड्डी थे। उनके भारत सेवाश्रम फीजी के प्रमुख श्री संयुक्तानंद जी से अच्छे संबंध थे। स्वामी जी ने उन्हें योग को विद्यालयों के पाठ्यक्रम में जोड़ने के लिए प्रेरित किया। उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हुए हमने स्वामी जी के साथ मिलकर उन्हें आग्रह किया कि अंतराष्ट्रीय योग दिवस का कार्यक्रम एल्बर्ट पार्क में होना चाहिए। मैं कार्यक्रम का संयोजक था। शिक्षा मंत्री तैयार थे परंतु साधनों की कठिनाई थी। उन्होंने कहा कि इतने विद्यार्थियों की व्यवस्था, बसों से आना–जाना, योग करने के लिए मैट, जलपान, पानी की बोतलें आदि की व्यवस्था करनी होगी। हमने उच्चायोग की और से विचार किया कि इसमें भारत सरकार और भारतीय मूल के निवासी क्या मदद कर सकते हैं। हमारे उच्चायुक्त श्री विश्वास सपकाल इस कार्यक्रम के लिए दृढ़ संकल्पित थे।

भारत–फीजी मैत्री संघ के कार्यकर्ता श्री सुमंत के नेतृत्व में कार्यक्रम के आयोजन में सहयोग के लिए तैयार हुए। श्री लोकेश और उनके साथी रवि सदा सहयोग को तत्पर रहते हैं। श्री लोकेश ने आर्थिक रूप से बड़ी जिम्मेदारी संभाली। टप्पूस, रूपस, बच्चू भाई आदि से हमने संपर्क किया व आर्थिक योगदान मिला। देखते–देखते उच्चायोग, शिक्षा मंत्रालय, भारत-फीजी मैत्री संघ और भारतीय मूल के लोगों ने अत्यंत सफलता से यह विशाल आयोजन किया। संसद की अध्यक्षा महोदय कार्यक्रम की मुख्य अतिथि थीं। साथ में शिक्षा मंत्री डॉ महेन्द्र रेड्डी और राज्य मंत्री श्रीमती वीना भटनागर ने भागीदारी की। आर्ट ऑफ

कार्यक्रम किरीबास के प्रमुख चौक पर प्रारंभ हुआ। देखते-देखते देश के प्रमुख लोग शामिल होने लगे। स्वास्थ्य मंत्री, कैबिनेट सचिव (महिला), उनका स्कूल जाता छोटा बेटा, उनका परिवार, विभिन्न विभागों के प्रमुख लोग। सबको योग में रूचि थी। उस वर्ष योग दिवस के अवसर पर प्रशांत क्षेत्र में आयोजित हुए कार्यक्रमों में वह कार्यक्रम सबसे अधिक प्रभावी रहा। हमारे योगाचार्य श्री इन्द्र देव से मैंने अनुरोध किया कि वे ऐसे आसन न कराएं, जिसके चलते स्थानीय लोग कठिनाई महसूस करें।

लिविंग की टीम ने योग का नेतृत्व किया। जयपुर से पधारी आर्ट ऑफ लिविंग की श्रीमती रेखा ने योगदान किया। फीजी में भारत के उच्चायुक्त श्री विश्वास सपकाल और शिक्षा मंत्री डॉ महेन्द्र रेड्डी के नेतृत्व में यह अत्यंत सफल कार्यक्रम हुआ। पूरा फीजी योगमय हो गया।हर अखबार में और हर स्थान पर सफल कार्यक्रम की चर्चा थी। फीजी के इतिहास में यह विराट आयोजन सदा के लिए अंकित हो गया।

परंतु इस बार जो मुझे किसी देश में योग कराने का दायित्व दिया गया था, वह नोरू का था। छोटा सा देश परंतु भारोत्तलन में ओलंपिक तक में शानदार प्रदर्शन करने वाला। हमारी इच्छा थी कि वहां के राष्ट्रपति कार्यक्रम में आए। नोरू छोटा सा देश है, कभी खनिजों के लिए दुनिया में सबसे अधिक घरेलु उत्पाद वाला। आज गरीब और अल्पविकसित है। वहां की एक विशेषता यह है कि वहां के राष्ट्रपति के सलाहकार श्री शशि केरल से हैं। भारत और भारतीयता के अग्रदूत। एक बार मैंने उनसे पूछा कि आप कैसे यहां आ गए। इतनी दूर, इतने छोटे से देश में। उन्होंने दिलचस्प बात बतायी कि उन्हें बचपन में सपने आते थे कि वे नाव पर किसी छोटे से द्वीप में जा रहे हैं। वे लोगों से घिरे हुए हैं, चारों तरफ कद में छोटे पर सुगठित लोग। इतने सपने आते थे कि उनके माता -पिता ने डॉक्टर को भी दिखाया पर डॉक्टर ने कहा कि आयु के साथ ठीक हो जाएगा। वे कहते हैं जब मैं नोरू आया तो मुझे वही लोग दिखायी दिए जो स्वप्न में दिखाई देते थे। वहां के राष्ट्रपति भारत से विशेष स्नेह रखते हैं। उन्होंने भारत सरकार के अनुरोध पर वैष्णव जन तो तेने कहिए गीत का मुखड़ा फीजी आकर गाया था। वे कार्यक्रम में पधारे। साथ ही आसन और प्राणायाम किए। फीजी सांस्कृतिक केंद्र की श्रीमती संगीता ने कार्यक्रम का संचालन किया। यह देखने योग्य था कि भारी -भरकम भारत्तोलक कैसे धनुरासन तक पूर्णता से कर लेते हैं।

इसके बाद मुझे उच्चायुक्त महोदय के साथ कुक आई लैण्ड जाने का मौका मिला। वहां हमारा रात्रि भोज वहां के प्रधानमंत्री के साथ तय था। उस भोज में वहां के स्वास्थय मंत्री भी थे। हमारे उच्चायुक्त महोदय चाहते थे कि वहां के प्रधानमंत्री को मैं व्यक्तिगत रूप से उदाहरणों के साथ योग का महत्व वताऊं। अनौपचारिकता के दौर में योग पर गहरी बात हुई। भोज में वहां के स्वास्थ्य मंत्री भी उपस्थित थे। मैंने योग और व्यक्तिगत जीवन के उदाहरण देते हुए अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की बात की। वहां भी अगला कार्यक्रम अत्यंत भव्य हुआ।

वर्ष 2017 के बाद हमें लगा कि योग को फीजी मे नियमित रूप से स्थापित किया जाना चाहिए। उसके लिए समुद्र तट पर अत्यंत सुरम्य स्थान ढूंढा गया। स्थानीय नगर निगम ने सहर्ष अनुमति दी और समुद्र के किनारे हमारी साप्ताहिक नियमित कक्षा प्रारंभ हो गयी। फीजी में भारत के उच्चायुक्त श्री विश्वास सपकाल योग कक्षा में नियमित रूप से आते। भारत – फीजी मैत्री संघ के श्री सुमंत, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ पैसेफिक के श्री सुरेन्द्र प्रसाद आदि इस आयोजन के आधार बने। समुद्र किनारे, चारों तरफ घने वृक्षों के बीच योग करना दिव्य अनुभव था। इस कार्य में उच्चायोग के स्टाफ ने काफी मदद की।

वर्ष 2018 में मुझे योग के संबंध में टोंगा में संपर्क का अवसर मिला। यहां पर सुविधा यह थी कि टोंगा में फीजी के प्रमुख प्रवासी भारतीय श्री रेड्डी का हॉटल था। उनके संपर्क टोंगा मे काफी थे। यद्यपि टोंगा में चीनी प्रभाव बढ़ता जा रहा था परंतु स्थानीय मंत्रालय और लोगों ने बहुत रूचि ली और कार्यक्रम अत्यंत सफल रहा।

चार वर्षों तक प्रशांत क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस का आयोजन कर कुछ बातें विशेष रूप से सामने आयी। पूरा प्रशांत क्षेत्र मधुमेह से प्रभावित है। समुद्र के कारण पानी मीठा है। खाना अधिक खाया जाता है। फास्टफूड कंपनियों ने लोगों को कोकोकोला आदि नियमित पीने की आदत डाल दी है। इनके कारण फीजी व अन्य देश दुनिया में मधुमेह में सबसे आगे हैं। वहां सामाजिक कार्यक्रमों में ऐसे लोग मिल जाते हैं जिनका डायबिटीज के कारण हाथ या पैर कटे हों। उस क्षेत्र को योग की बहुत आवश्यकता है। फीजी, किरीबास व अन्य देशों में बड़ी संख्या में रोगियों को देखते हुए योग निशुल्क व निवारक चिकित्सा पद्धति है। इसकी वहां बहुत आवश्यकता है।

औपचारिक कार्यक्रमों की दृष्टि से तो अंतराष्ट्रीय योग दिवस अत्यंत प्रभावी हैं। तीन देशों में तो मेरी उपस्थिति में राष्ट्रपति आदि प्रमुख लोगों की योग दिवस में भागीदारी हुई, जिससे स्पष्ट है कि उच्चतम स्तर पर योग में बहुत रूचि है पर यह आवश्यक है कि योग को वहां के स्कूलों में पाठ्यक्रम में जगह मिले। इसके लिए मानसिकता तैयार करने की जरूरत है। साथ ही वहां के योग साधना में प्रवेश करने वालों को भारत में कार्यशाला आदि आयोजित कर प्रशिक्षित किया जा सके। कुछ सफल प्रयत्न भी हुए। इसके लिए भारत सरकार और योग संस्थानों को इस कार्य के लिए आगे आना होगा। योग भारत की विश्व को महत्वपूर्ण देन है। हमें अपनी विरासत को समझते हुए विश्व के समक्ष उपस्थित वर्तमान चुनौतियों में अपने योगदान को पुष्ट करना होगा।

उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

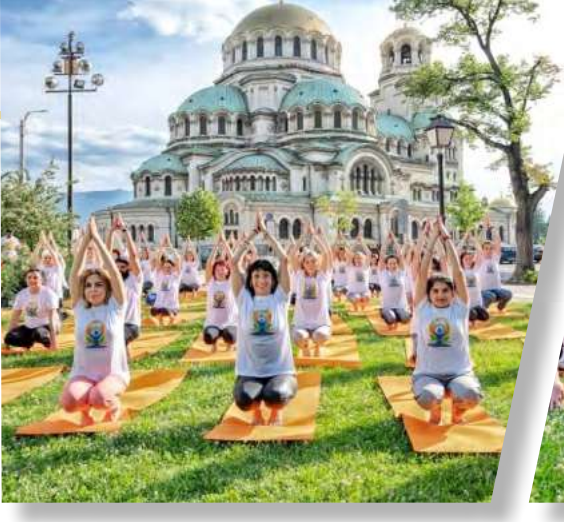

बुल्गारिया में योग का प्रचार

– एवगेनिया बेलसेवा

1969 में बल्गेरियाई राज्य सर्कस के निमंत्रण पर स्वामी देव मूर्ति ने बुल्गारिया का दौरा किया। हालांकि सर्कस में उनका काम योग का प्रदर्शन करना था पर उन्हें दिन के समय मे योग पर व्याख्यान देने की भी अनुमति दी गई, जिसमें योग के साथ-साथ विभिन्न भारतीय जड़ी-बूटियों से संबंधित जानकारी देनी थी। स्वामीजी का लक्ष्य बुल्गारिया में योग शिक्षा देना, एक योग केंद्र और एक शाकाहारी रेस्तरां खोलना था। वे लंबे समय से बुल्गारिया जाने के इच्छुक थे क्योंकि बुल्गारिया में जड़ी-बूटियों की भरमार है।

मैं एक योग शिक्षक हूं और लगभग 15 वर्षों से इस क्षेत्र में कार्यरत हूं। योग ने मेरा जीवन परिवर्तित किया है। यह मेरे लिए बुरी आदतों से लड़ने, सही तरीके के से सांस लेने, स्वास्थ रहने एवं जीवन की कठिनाइयों को आसानी से दूर करने में मददगार साबित हुई है।

मेरे लिए योग जीवन जीने की एक पद्धति और जीवन का दृष्टिकोण है। योग आसन, प्राणायाम और ध्यान की एक पद्धति है जो मनुष्य के मन और मस्तिष्क को प्रशिक्षित करती है। योग केवल व्यायामों की श्रृंखला नहीं है, अपितु इसे आगे बहुत कुछ है। योगिक क्रियाएं स्वाभाविक रूप से मानव शरीर के सभी अंगों और तंत्रों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं और उन्हें स्वस्थ रखने में मदद करती हैं। योग जीवन के दार्शनिक पक्ष को दिखाता है, जो जीवन जीने की एक पद्धति बन जाती हैं। योग मन और शरीर को अच्छे मानसिक और शारीरिक स्थिति में रखता है, जिससे हम अनुशासित रहते हैं। योग एक दर्शन है, यह सोच है और स्वयं की खोज है,जिसका उद्देश्य मनुष्य का उच्च स्तरीय व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास करना है।

बुल्गारिया में योग का विकास

बुल्गारिया में योग को लोकप्रिय बनाने में स्वामी देव मूर्ति का बहुत बड़ा योगदान है। इससे पहले, 1930 के दशक में प्रथम विश्व युद्ध के बाद, योग का अभ्यास उन व्यक्तियों द्वारा किया जाता था जिन तक इसकी समझ और पहुंच थी।

1969 में बल्गेरियाई राज्य सर्कस के निमंत्रण पर स्वामी देव मूर्ति ने बुल्गारिया का दौरा किया। हालांकि सर्कस में उनका काम योग का प्रदर्शन करना था पर उन्हें दिन के समय मे योग पर व्याख्यान देने की

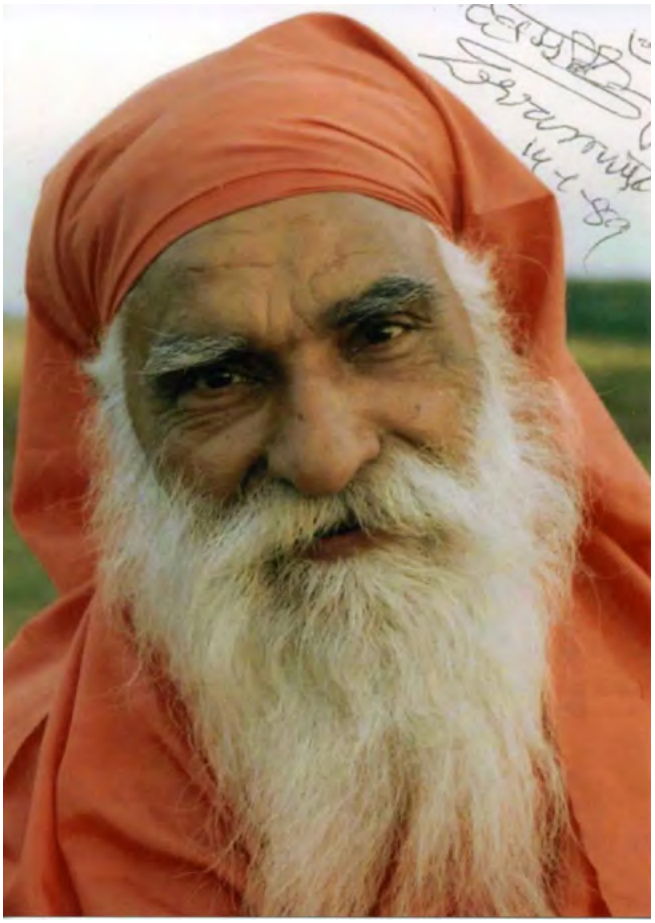

ज़िवकोवा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण और सर्वांगीण विकास करना था। इसीलिए उनकी अधिकांश सांस्कृतिक नीतियाँ इसी दिशा में थीं। इस अंतर्राष्ट्रीय बाल सभा के उद्देश्यों में एकात्मता, रचनात्मकता, सौंदर्य आदि शब्दों को रखा जाना आनायास नहीं था। इन शब्दों को रखने का मूल उद्देश्य था कि लोगों में छिपी रचनात्मकता को जगाया जाए, उनका आध्यात्मिक जागरण किया जाए और उनकी इच्छाओं तथा प्रयत्नों को सही दिशा में प्रेरित किया जा सके। इससे वह विश्व के अनूठेपन को पहचान सकेगा और वास्तविक कलाकार बन सकेगा। हाँ, यही योग है!

भी अनुमति दी गई, जिसमें योग के साथ-साथ विभिन्न भारतीय जड़ी-बूटियों से संबंधित जानकारी देनी थी। स्वामीजी का लक्ष्य बुल्गारिया में योग शिक्षा देना, एक योग केंद्र और एक शाकाहारी रेस्तरां खोलना था। वे लंबे समय से बुल्गारिया जाने के इच्छुक थे क्योंकि बुल्गारिया में जड़ी-बूटियों की भरमार है। वे अपने बेटे बाल और अपने भारतीय छात्र हैरी के साथ बुल्गारिया गये थे।

स्वामीजी अक्सर यहाँ अपने सबसे महत्वपूर्ण कार्यों की बात करते हैं। वह अपने स्वयं की लागत से बुल्गारिया में एक योग केंद्र खोलना चाहते थे। साथ ही साथ जर्मनी में अपने आश्रम की एक शाखा और एक शाकाहारी रेस्तरां खोलना चाहते थे जहाँ उनके पैम्फलेट बाँटे जा सकें और उनके अनुसार व्यंजन पकाया जा सके। उन्होंने महसूस किया कि उनका कार्य आसान नहीं था। वे तत्कालीन प्रथम पार्टी और राज्य के नेता टोडर झिवकोव के साथ बैठक करना चाहते थे पर उनकी मुलाकात ज़िवकोव के स्वास्थ्य और भौतिक संस्कृति के सलाहकार से हुई।

स्वामी जी ने उन्हें एक योग केंद्र और शाकाहारी रेस्तरां खोलने के बारे में बताया पर कभी भी टोडर झिवकोव से व्यक्तिगत मुलाकात नहीं हुई जो उनकी मदद कर सकते थे। हालाँकि, वे भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति वराहगिरी वेंकट गिरि के स्वागत के अवसर पर हवाई अड्डे पर मिले, जो बुल्गारिया की आधिकारिक यात्रा पर आ रहे थे, लेकिन उनकी व्यक्तिगत रूप से बात नहीं हुई। तब स्वामी कहते हैं "हो सकता है कि वे भले ही आज हमसे मिलना न चाहें, लेकिन एक दिन उनके परिवार में योग आ जाएगा"। बहुत बाद में उनकी बेटी ल्यूडमिला जिवकोवा योग की एक बड़ी प्रशंसक और अनुयायी बन गई।

उन्होंने स्वामी विष्णु देवानंद, इंद्र देवी और सुरेन गोयल जैसे प्रसिद्ध योग शिक्षकों के बुल्गारिया आने में मदद की। इसी के साथ योग को अब बुल्गारिया में हरी झंडी दी गई।

ल्यूडमिला ज़िवकोवा की प्रमुख और सफल प्रयासों में से एक था "शांति का ध्वज" नामक एक अंतर्राष्ट्रीय बाल सभा का आयोजन। यह बुल्गारिया के सांस्कृतिक जीवन की अनूठी घटना थी। राष्ट्रीय सीमाओं से परे जाकर कॉमनवेल्थ में शामिल स्वाधीन देशों तथा वारसा संधि से बंधे देशों के बीच सांस्कृतिक और आध्यात्मिक माध्यम से सम्पर्क स्थापित करना इस आंदोलन की मुख्य विशेषता थी। परियोजना के केंद्र में , बच्चों में सृजनशीलता की जागृति एवं विकास के नाम से एक मानवतावादी लक्ष्य था, जिन्हें कम उम्र से ही गहरे और सार्थक जीवन की ओर प्रवृत किया सके।

ज़िवकोवा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण और सर्वांगीण विकास करना था। इसीलिए उनकी अधिकांश सांस्कृतिक नीतियाँ इसी दिशा में थीं। इस अंतर्राष्ट्रीय बाल सभा के उद्देश्यों में एकात्मता, रचनात्मकता, सौंदर्य आदि शब्दों को रखा जाना आनायास नहीं था। इन शब्दों को रखने का मूल उद्देश्य था कि लोगों में छिपी रचनात्मकता को जगाया जाए, उनका आध्यात्मिक जागरण किया जाए

और उनकी इच्छाओं तथा प्रयत्नों को सही दिशा में प्रेरित किया जा सके। इससे वह विश्व के अनूठेपन को पहचान सकेगा और वास्तविक कलाकार बन सकेगा।

हाँ, यही योग है!

एक योग शिक्षक के रूप में वर्षों से, दैनिक जीवन में भोजन, गति और ऊर्जा प्रबंधन का क्रियात्मक प्रयोग आयुर्वेद के माधम से सिखा रही हूँ। मेरा लक्ष्य इन प्रथाओं आसान बनाना है जिससे हमारी दुनिया स्वस्थ, समझदार और व्यवस्थित हो सके।

आयुर्वेद एक्सपर्ट स्पेस के नाम से मैंने एक वेबसाइट https://ayurvedaexpertspace.com/ बनायी है जो बुल्गारिया के लोगों को इन क्षेत्रों के भारतीय विशेषज्ञों से परिचय कराती है। मेरे सम्पर्क के आयुर्वेद विशेषज्ञों ज्योतिषियों एवं वास्तु मंत्र एवं यंत्र विशेषज्ञों को इसके लिए धन्यवाद।

योग पूरब, पश्चिम और पूरी दुनिया के बीच एक सेतु का काम भी करता है। वैसे कई लोग जो पश्चिम में अपना ज्ञान देने आते हैं वे भी इसमें अपना योगदान देते हैं। वे विभिन्न शैक्षिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कार्यक्रमों अपना योगदान देते हैं। संचार और परिवहन में विकास होने से सम्पूर्ण विश्व ही मानवता का घर बन गया है जहाँ एकत्मता, शांति और सद्भाव करने की चुनौती सामने है।

योग हमें विश्व बंधुत्व एवं शान्ति का संदेश देता है जिससे हम सही सोच सकें, सार्थक जीवन जीएँ सबसे प्रेम करें, सबकी सेवा करें एवं हर परिस्थिति में साम्य रहें।

योग-अभ्यास करने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और विभिन्न धर्मों, जातियों, विचारों, सिद्धान्तों, वैवाहिक स्थितियों और वैज्ञानिक विषयों वाले साधक आते हैं। हर कोई अपना मार्ग खोजते हुए योगाभ्यास करता है। प्रकृति और अपनी स्वयं की प्रकृति की खोजते हुए, अपनी सम्पूर्ण जागरूकता बनाए रखते हुए, स्वयं का अनुभव करते हुए हम आत्म-साक्षात्कार, एकात्मता, शांति और आनंदके परम सत्य तक पहुँच पाते हैं।

योग पूरब और पश्चिम के लिए जीवन का एक यथार्थ पक्ष बन गया है। योग ही पूरब और पश्चिम के संयोग की खोयी हुई कड़ी है। मुझे आशा है कि लोगों को जानकारी उपयोगी लगेगी और जो उन्होंने सीखा है उसे लागू करेंगे।

अंत में मैं महर्षि स्वामी देव मूर्ति का एक विचार रखते हुए अपने वक्तव्य को समाप्त करना चाहूँगी। प्रेम सबसे बड़ा शिक्षक है। प्रेम करने का मतलब स्वयं को भूलना है और तभी आप प्रेम कर सकते हैं। जब भी आप स्वयं को अलग रखेंगे प्रेम संभव नहीं है। सबकुछ स्वयं को प्रदान कीजिए। प्रेम ही सबकुछ है, सबकुछ – चेतना, आत्मा, मन, मस्तिष्क। आपको सबकी शुचिता बनाए रखना है।

योग शिक्षिका, बुल्गारिया

यूरोप में योग और उसकी चुनौतियां

– गिलेटा डर्जिनाउस्के

> योग की पारम्परिक प्रक्रिया में एक समग्रता थी, यानी कि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक आयामों के रूप में स्वास्थ्य और परमार्थ पर सम्पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पारम्परिक योग शरीर, मन और आत्मा को संयुक्त करने पर ध्यान देता है, जिससे इन तीनों में एक सामंजस्य का निर्माण होता है। यह लोगों को सचेत, जाग्रत तथा संतुलित जीवन जीना सिखाता है। समय से साथ योग प्रक्रियाओं में काफी बदलाव आए हैं। आज योग का स्वरूप ऐसा बन गया है जो शरीर को ठीक से समझे बिना केवल शरीर और केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान देता है। पश्चिम में प्रचलित हो रहे ऊपर वर्णित योग के प्रकार इसी स्वरूप में आते हैं। आज बिना शरीर के स्वास्थ्य और सीमाओं के बारे में पूरा ज्ञान और समझ रखे, योगासन किये जा रहे हैं। इससे लोगों को गंभीर चोटें लग सकती हैं और लाभ की बजाय हानि हो सकती है।

संपूर्ण विश्व में योग लोकप्रिय होता जा रहा है। विश्व के हर देश में योग का प्रचलन बढ़ रहा है और उसपर दावे भी हो रहे हैं। प्रश्न यह है कि योग का प्रारंभ कहाँ से हुआ और वास्तव में योग है क्या? हालाँकि योग के प्रारंभिक उपयोग के बारे में इतिहासकार एकमत नहीं हैं और इस पर चर्चा चलती ही रहती है। सिंधु घाटी में प्राप्त पत्थरों पर उत्कीर्ण चित्रों से पता चलता है कि योग का अभ्यास कम से कम 3300 ईसा पूर्व से होता आ रहा है। योग शब्द का उल्लेख प्राचीन भारत के प्राचीनतम ग्रंथ वेदों में प्राप्त होता है। योग का काल लगभग 1500 ईसा पूर्व का माना जाता है।

योग के प्राचीनतम व्यवस्थित तंत्र का उल्लेख और वेदों में उल्लिखित योग शब्द के बीच में अंतर्सम्बन्ध हमें कठोपनिषद् में प्राप्त होता है। इस उपनिषद् में मृत्यु के देवता यम एक युवा शिष्य नचिकेता को सम्पूर्ण योग का ज्ञान देते हैं। शिक्षण के क्रम में यम आत्मा, शरीर, बुद्धि आदि की तुलना रथ, उसके अश्व और रथी आदि से करते हैं। इस उपनिषद् के तीन तत्त्वों से ही शताब्दियों से प्रचलित योग की अवधारणा को पुष्ट किया है।

सर्वप्रथम इसने एक यौगिक शरीरशास्त्र को वर्णन किया है, जिसमें शरीर को ग्यारह द्वारों वाला एक पुर यानी किले की संज्ञा दी है और जिसमें अंगुष्ठ मात्र अवकाश में रहने वाले परमात्मा की चर्चा की है, जिसकी उपासना समस्त देव यानी कि इंद्रियां करती हैं। दूसरे, यह उपनिषद् प्रत्येक व्यक्ति यानी व्यष्टि को वैश्विक व्यक्तित्व यानी समष्टि जिसे वहाँ पुरुष तथा ब्रह्म कहा गया है, में स्थित बताता है और इसे ही जीवन का निर्धारक बताता है। तीसरे बिंदु के रूप में यह उपनिषद् शरीर के मन, बुद्धि, इन्द्रियां आदि अंगों के बीच के सम्बन्धों की व्याख्या करता है। चूँकि ये सभी अंग एक पदानुक्रम में व्यवस्थित हैं, इसलिए चेतना की उच्चतम अवस्था की अनुभूति हेतु वस्तुतः बाह्य जगत के स्तरों से ऊपर उठना होता है। इस अर्थ में यह उपनिषद् तथा अन्य उपनिषद् भी योग को बाह्य जगत से अंतर्जगत की यात्रा की एक तकनीक के रूप में व्याख्यायित करते हैं।

आज के योगासनों के संदर्भ में हठयोग में विभिन्न आसनों की महान परंपरा पाई जाती है। इसमें विभिन्न प्रकार के आसन, श्वांस पर नियंत्रण की तकनीक के रूप में विभिन्न प्रकार के प्राणायाम, बंध और मुद्राओं का विवरण मिलता है, जो योग के प्रायोगिक पक्ष का निर्माण करता है। इन तकनीकों का 10वीं तथा 15वीं शताब्दी के मध्य काफी विकास हुआ और इस काल को हम हठयोग के विकास का काल मान सकते हैं। बाद की शताब्दियों में 84 आसनों का विकास हुआ। अष्टांग योग से भेद करते हुए हठयोग को सामान्यतः छह अंगों वाला माना

जाता है। इन दोनों प्रकार के योग के प्रणालियों तथा प्राचीन उपनिषदों में वर्णित योग प्रणालियों तथा यहाँ तक कि बौद्ध योग प्रणाली में भी तीन बातें समान हैं – आसन, प्राणायम और त्रिस्तरीय ध्यान की प्रणाली जिसकी चरम अवस्था समाधी होती है।

19वीं शताब्दी में पश्चिम में आध्यात्मिक से लेकर शारीरिक योग काफी प्रचलित हुआ। योग के वर्तमान व्यावसायिक युग में हठ योग के आसन काफी लोकप्रिय हुए हैं। वर्ष 1890 में पश्चिम में योग के प्रति रूझान में काफी बढ़ोत्तरी देखी गई। स्वामी विवेकानंद जब यूरोप पहुँचे तो योग के ज्ञान का वहाँ काफी प्रचार हुआ। उन्होंने पश्चिम को योग सूत्रों का ज्ञान करवाया और इसके ध्यान पक्ष को प्रोत्साहित किया। योग केवल एक शारीरिक स्वास्थ्य की विधा मात्र नहीं है, बल्कि यह शरीर, मन और आत्मा के उच्चतम अवस्था की चेतना के साथ सम्बन्धता की विधा है। हालाँकि आज जो योग प्रचलित हुआ है, वह केवल अच्छे शारीरिक स्वास्थ्य को प्रोत्साहित करने मात्र से सम्बन्धित है। 1960 के दशक में अनेक युवा अमेरीकियों ने योगासनों के अभ्यास में भाग लेना प्रारंभ किया और इसके स्वास्थ्य लाभों का प्रचार किया। योग के लोकप्रिय होने के कई कारण बताये जा सकते हैं। एक है, सभी प्रकार के आयुवर्ग के लोगों के लिए इसका उपयुक्त होना। दूसरा कारण है, योग करने वाले की शरीर से ऊपर की चेतना का जागरण करने की इसकी क्षमता। विभिन्न आसनों के माध्यम से योग ध्यान करने और अपनी आत्मा पर ध्यान देने काफी अधिक बल देता है। तनावमुक्ति और मानसिक शांति का यह एक सर्वोत्कृष्ट माध्यम है।

दस योगाभ्यासियों से योग की व्याख्या करने के लिए कहा जाए तो हमें दस प्रकार के अलग-अलग उत्तर मिल सकते हैं। कुछ लोग इस प्राचीन विधा के तनावमुक्त करने के लाभों की चर्चा करेंगे तो कुछ लोग इसके शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभों को गिनवाएंगे। फिर भी अधिकांश लोग इसे मन को शान्त करके उच्चतर चेतना से संयुक्त करने की विधा के रूप में स्वीकार करेंगे। योग की सर्वोत्तम व्याख्या में इन सभी का समावेश होगा। पश्चिमी जगत में आजकल सबसे अधिक लोकप्रिय योग के मूल प्रकारों का एक संक्षिप्त विवरण कुछ इस तरह दिखाई देगा–

1. हठयोग योगासनों का सामान्य और मूल परिचय देता है। हो सकता है कि आसनों को करने से आपको पसीना नहीं आए, परंतु इससे आप अधिक समय तक शांत और तनावमुक्त हो सकते हैं।
2. अष्टांग योग, योग का वह प्रकार है, जिसमें विशिष्ट आसनों को श्वांस की गतिविधि से एक समान प्रक्रिया में संयुक्त किया जाता है।
3. आयंगर योग की बहुत ही सूक्ष्म शैली है, जिसमें ब्लॉक, कंबल, पट्टियों, कुर्सियों, तकियों और रस्सी की दीवार आदि बाह्य साधनों के सहयोग पर बल दिया जाता है।
4. विन्यास की पद्धति मूलतः अपने सहज, सरल और संगीत के साथ किये जाने वाले आसनों के लिए जानी जाती है।
5. विक्रम पद्धति में कृत्रिम रूप से गर्म कमरों में एक निश्चित क्रम में 26 प्रकार के आसन किये जाते हैं।
6. रिस्टोरेटिव योग कक्षाएं छात्रों को स्थिर मुद्रा में सहारा देने के लिए तकियों, कंबलों और ब्लॉकों का उपयोग करती हैं ताकि उनके शरीर मुद्रा के लाभों का अधिक आसानी से अनुभव कर सकें।
7. फिटनेस योग कक्षाओं में ध्यान पर कम और स्वस्थ जीवनशैली पर अधिक जोर दिया जाता है।

योग की इस पुरातन काल से प्रतिष्ठित प्रक्रिया में बहुत से नवाचार हो रहे हैं। इंटरनेट पर थोड़ा सा भी ढूंढने पर अनगिनत प्रकार के योग प्रक्रियाओं की जानकारी मिलती है। इनमें घोड़े की पीठ पर बैठ कर योग, पेड़ों पर योग, रस्सी पर योग, हुला हूप के साथ योग, पीटीएसडी और कैंसर के उपचार के रूप में योग, वजन घटाने के लिए योग, कार्यस्थल पर योग, प्रतिस्पर्धी योग और एरोबिक्स और योग का मिश्रण जैसे प्रयोग मिलेंगे। विभिन्न स्वास्थ्य स्तरों वाले लोग अपनी व्यक्तिगत शारीरिक क्षमता के अनुसार योगासन कर सकते हैं और नियमित अभ्यास से कम ही समय में अपनी क्षमता को बढ़ा सकते हैं।

प्रश्न उठता है कि योग इतने सारे नवाचारों के बीच हम किस पर ध्यान दें?

योग की पारम्परिक प्रक्रिया में एक समग्रता थी, यानी कि शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक आयामों के रूप में स्वास्थ्य और परमार्थ पर सम्पूर्ण ध्यान दिया जाता है। पारम्परिक योग शरीर, मन और आत्मा को संयुक्त करने पर ध्यान देता है, जिससे इन तीनों में एक सामंजस्य का निर्माण होता है। यह लोगों को सचेत, जाग्रत तथा संतुलित जीवन जीना सिखाता है। समय से साथ योग प्रक्रियाओं में काफी बदलाव आए हैं। आज योग का स्वरूप ऐसा बन गया है जो शरीर को ठीक से समझे बिना केवल शरीर और केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ध्यान देता है। पश्चिम में प्रचलित हो रहे ऊपर वर्णित योग के प्रकार इसी स्वरूप में आते हैं। आज बिना शरीर के स्वास्थ्य और सीमाओं के बारे में पूरा ज्ञान और समझ रखे, योगासन किये जा रहे हैं। इससे लोगों को गंभीर चोटें लग सकती हैं और लाभ की बजाय हानि हो सकती है।

हमारा उद्देश्य योग के विभिन्न प्रकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना होना चाहिए, ताकि लोग सही निर्णय ले सकें। कोई भी प्रक्रिया सही या गलत नहीं होती, परंतु लोगों बुद्धिमत्तापूर्वक निर्णय लेना चाहिए कि उनके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक स्तर के लिए कौन सी प्रक्रिया सही होगी।

योग शिक्षिका, लिथुआनिया

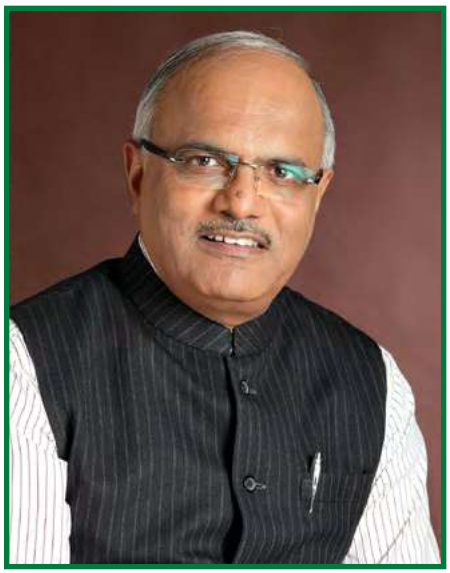

सौम्य संपदा बनेगी सांस्कृतिक सम्बन्धों का आधार

- डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे

कोरोना के पश्चात् वैश्विक शक्ति संतुलन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। एक ओर जहाँ चीन की स्थिति कमजोर हुई है, कोरोना के अवसर पर भारत द्वारा की गई पहलें और प्राप्त की गई उपलब्धियां काफी उल्लेखनीय रहीं और इनके कारण विश्व में भारत का मान बढ़ा। स्वाभाविक ही है कि कोरोनापश्चात् की उभर रही वैश्विक व्यवस्थाओं में भारत की भूमिका बढ़ने वाली है। जैसा कि भारत का स्वभाव और परम्परा रही है, भारत वैश्विक व्यवस्थाओं के निर्माण में सांस्कृतिक पक्ष को ही अधिक महत्त्वपूर्ण मानता रहा है और आज भी मानता रहा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भारत के इस सांस्कृतिक पक्ष को अपनी विदेश नीति के रूप में की महत्त्वपूर्ण अवसरों पर रेखांकित भी किया है। आज जबकि भारत जी 20 देशों के सम्मेलन की अध्यक्षता तथा आतिथ्य दोनों ही करने जा रहा है, कोरोनापश्चात् की वैश्विक व्यवस्थाओं में भारत और उसके सांस्कृतिक पक्ष को लेकर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे से गगनांचल के संपादक रवि शंकर ने बातचीत की। यहाँ प्रस्तुत है, उसके प्रमुख अंश -

प्र. आज का समय आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों का है, ऐसे में सांस्कृतिक सम्बन्धों की क्या महत्ता है?

उ. विश्व में कई दशकों से एक प्रचलन दिखता है, जिसे बैक टू द रूट्स कहते हैं। पिछले कई दशकों से लोगों में अपना मूल को जानने का आकर्षण उत्पन्न हुआ है। लोग जानना चाहते हैं कि उनका मूल कहाँ है। इसके अलावा यह भी दिखता है कि न्यूयार्क, मुंबई जैसे बड़े महानगरों को मेल्टिंग पॉट कहते थे। मेल्टिंग पॉट यानी जिसमें दूसरे लोगों की अपनी पहचान विलीन हो जाती है। उनकी एक नई अलग पहचान बन जाती है। अब इस संज्ञा का प्रयोग बंद हो गया है।

समाजविज्ञानियों का कहना है कि इसके स्थान पर अधिक उपयुक्त संज्ञा है – सलाद बाउल। मेल्टिंग पॉट के स्थान पर अब सलाद बाउल का सिद्धांत आ गया है, जिसमें सभी एक साथ तो हैं परंतु सभी की अपनी पहचान और अस्तित्व बना हुआ है। अपनी-अपनी पहचानों के साथ होने के बाद भी सारे एक ही समुदाय के अंग हैं। तात्पर्य यह है कि पहचान, आइडेंटिटी, अस्मिता का विषय और अधिक महत्त्वपूर्ण होते जा रहा है। वैश्वीकरण के इस युग में वे समाप्त नहीं हो रहे हैं, बल्कि और अधिक उभर कर सामने आ रहे हैं।

वैश्वीकरण का आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम तो है ही, परंतु इसका एक सांस्कृतिक परिणाम भी दिखता है। जैसे आज हम पूरे विश्व का अमेरिकीकरण होता देख रहे हैं। आज हम बीजिंग जाएं तो भाषा के अलावा शेष पूरा वातावरण अमेरिकन है। बीजिंग आपको एक मैन्डेरिन अमेरिका जैसा लगेगा। इसे आप सांस्कृतिक आक्रमण या अतिक्रमण, जो भी कहना चाहें, परंतु यह हो रहा है। चाहे जानबूझ कर हो या फिर अनजाने में परंतु पश्चिम अपने इस प्रयास में जुटा हुआ है कि आधुनिकीकरण की व्याख्या पश्चिमीकरण के रूप में स्वीकारी जाए। यद्यपि वह गलत है। आधुनिकीकरण भिन्न है और पश्चिमीकरण भिन्न है। आधुनिकीकरण के नाम पर पश्चिमीकरण ही हो रहा है।

इस पृष्ठभूमि में यदि हम विश्व संघर्ष के मुद्दों को देखते हैं तो एक ओर हम पाते हैं कि हमारे कुछ पड़ोसी देश अपनी सामरिक और सैनिक ताकत के बल पर अपना प्रभाव बढ़ान का प्रयास कर रहे हैं। दूसरी ओर, विश्व में जहाँ भी आज युद्ध हो रहे हैं, उसका मूल कारण है स्वयं के

श्रेष्ठता का भाव। एक नये जमाने का सांस्कृतिक उपनिवेशवाद भी हमें दिख रहा है। विश्व की ऐसी विषम परिस्थिति में सांस्कृतिक सम्बन्धों की केन्द्रीय भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

प्र. ऐसा माना जाता है कि आज होने वाले अधिकांश युद्ध आर्थिक कारणों से हो रहे हैं। आर्थिक संसाधनों पर कब्जा बनाए रखने के लिए हो रहे हैं। दूसरी ओर आपने कहा कि ये युद्ध अपने श्रेष्ठताबोध के कारण हो रहे हैं। इसे थोड़ा विस्तार से समझाएंगे?

उ. मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि श्रेष्ठताबोध ही युद्धों का एकमात्र कारण है। यह भी एक बड़ा कारण है। आर्थिक कारण भी हैं। परंतु यह भी एक बड़ा कारण है। यह उपनिवेशवाद की पिछले द्वार से अंदर आने का प्रयास है। दूसरी ओर, आर्थिक व्यवहार और संस्कृति में भी काफी घनिष्ठ सम्बन्ध है। पारम्परिक व्यंजनों को छोड़ कर केंटुकी चिकन और मैक्डोनाल्ड की ओर जाना केवल आर्थिक परिवर्तन नही है, यह सांस्कृतिक परिवर्तन भी है। आर्थिक दरवाजे से वह अंदर आया है, परंतु है तो सांस्कृतिक ही।

प्र. इस परिदृश्य में सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत करने के लिए क्या उपाय किये जा सकते हैं?

उ. इस सम्बन्ध में भारत का दृष्टिकोण हजारों वर्षों से रहा है और एकदम स्पष्ट रहा है। एक समय भारत का विश्व के अनेक हिस्सों में प्रभाव था। वह हमारी संस्कृति की ताकत के कारण था। हमारे राजाओं की सामरिक शक्ति के आधार पर कम था, सांस्कृतिक आधारों पर अधिक था। इसलिए सांस्कृतिक सम्बन्धों को यदि हम भारत की दृष्टि से देखेंगे, तो भारत अपनी एक विशिष्टतापूर्ण जीवनदृष्टि रही है। इसका सम्बन्ध भारत के अध्यात्म से है। मेरे अनुसार इसके पाँच आयाम हैं जो कि भारत की सांस्कृतिक सम्बन्धों के या फिर हमारी सौम्य सम्पदा, जिसे अंग्रेजी में सॉफ्ट पॉवर कहा जाता है, के मूलाधार हैं।

पहला आयाम है, हमारी आध्यात्मिक जनतंत्र की परिकल्पना। हमारा जनतंत्र राजनीतिक तो है ही, लेकिन उसकी सफलता के पीछे भी हमारा आध्यात्मिक जनतंत्र है। हमने कभी भी रिलीजियस स्टेट यानी किसी एक आस्था विशेष या उपासना पद्धति का राज्य नहीं स्वीकारा। एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति ही हमारी आधारशिला रही है। आध्यात्मिक क्षेत्र में जब आप सभी के प्रति समान सम्मान और आदर रखते हैं तो जनतांत्रिक दृष्टि अपने आप विकसित हो ही जाती है। इसलिए जब प्रधानमंत्री कहते हैं कि भारत जनतंत्र की जननी है। तो भारतीय संस्कृति के एक छात्र के नाते मुझे लगता है कि इसका एक कारण हमारी आध्यात्मिक जनतंत्र की परम्परा है।

प्र. आध्यात्मिक जनतंत्र एक बहुत ही अच्छा शब्द प्रयोग है। अपने देश में सेकुलरिज्म पर इतनी चर्चाएं हुई हैं, उसके अनेक प्रकार के अर्थ करने के प्रयास किये जाते हैं, परंतु यह उसका सटीक पर्याय लगता है। आध्यात्मिक जनतंत्र के अलावा अन्य आयाम कौन से हैं?

वैश्वीकरण का आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम तो है ही, परंतु इसका एक सांस्कृतिक परिणाम भी दिखता है। जैसे आज हम पूरे विश्व का अमेरिकीकरण होता देख रहे हैं। आज हम बीजिंग जाएं तो भाषा के अलावा शेष पूरा वातावरण अमेरिकन है। बीजिंग आपको एक मैन्डेरिन अमेरिका जैसा लगेगा। इसे आप सांस्कृतिक आक्रमण या अतिक्रमण, जो भी कहना चाहें, परंतु यह हो रहा है। चाहे जानबूझ कर हो या फिर अनजाने में परंतु पश्चिम अपने इस प्रयास में जुटा हुआ है कि आधुनिकीकरण की व्याख्या पश्चिमीकरण के रूप में स्वीकारी जाए। यद्यपि वह गलत है। आधुनिकीकरण भिन्न है और पश्चिमीकरण भिन्न है। आधुनिकीकरण के नाम पर पश्चिमीकरण ही हो रहा है।

उ. मैं इसका प्रयोग काफी लम्बे समय से करता रहा हूँ। आध्यात्मिक जनतंत्र के बाद दूसरा आयाम है हमारी विविधता की एकता। यह केवल विविधता में एकता नहीं है। हम मूलतः एक हैं और इस एकता का प्रकटीकरण विभिन्न पद्धति से होता है, इसलिए विविधता सामने आती है। इस विविधता के आप जितना अंदर जाएंगे, उतना ही आपको एकत्व का अहसास होगा। यह यद्यपि भारतीय सोच है, परंतु मुझे लगता है कि यह विश्व समुदाय के लिए भी स्वीकार्य है। जैसे कि हम मानते हैं कि पेड़, पहाड़ आदि पृथिवी के कण-कण में परमेश्वर है, तो इसका अर्थ है कि हम सभी मनुष्यों में भी एक देवतत्त्व है। इसलिए हम सभी इस अर्थ में समान ही हैं। यह इसकी तार्किक परिणति है।

हमारी सौम्य सम्पदा की सांस्कृतिक भूमिका का तीसरा आधार है हमारी अन्त्योदय की कल्पना। आज इतने वर्षों तथा दशकों के बाद भी विश्व समुदाय, साम्यवाद श्रेष्ठ है या पूंजीवाद, के झगड़े से बाहर नहीं आ पा रहा है। हमने कह दिया कि दोनों की कुछ मर्यादाएं हैं और दोनों में कुछ गुण हैं तो हमें तीसरा मार्ग चाहिए। यह मार्ग है अन्त्योदय। इसका अर्थ है कि सबसे निर्बल को विकास के वितरण में सबसे अधिक प्राथमिकता देना चाहिए।

हमारा चौथा मूलाधार है प्रकृति के प्रति कृतज्ञता। इसी को सस्टेनेबिलिटी कहा जाता है। आज भी सुबह उठने के बाद घर के बड़े लोग "विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे" कहते हैं। यह कृतज्ञता है और इसमें ही सस्टेनेबिलिटी का सूत्र अन्तर्निहित है। पाँचवा मूलाधार है हमारी वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा। इसमें कुटुम्बकम् पर ही

> **भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का लक्ष्य है सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की समझ विकसित करना। आज विश्व में भारत के प्रति प्रचूर मात्रा में सदिच्छा है। भारत से द्वेष करने वाले समुदाय या देश लगभग नहीं के बराबर हैं। परंतु भारत के प्रति सदिच्छा का होना एक बात है और भारत की समझ होना अलग बात है। हमारा काम है सदिच्छा को समझ में बदलने का है। इसके अलग-अलग तरीके हैं। प्रशिक्षण है, प्रबोधन का कार्य है। इसके साथ-साथ जो गलत धारणाएं जो बनती हैं, या बनाई गई हैं, उन्हें ठीक करना भी हमारा काम है। इन तीनों काम में हम सक्रियता से कार्य कर रहे हैं।**

अधिक जोर है। वसुधैव समाजम् भी कहा जा सकता था, वसुधैव गृहम् भी लोग कह सकते थे, परंतु लोगों ने वसुधैव कुटुम्बकम् कहा है। कुटुम्ब में हमारे पारस्परिक सम्बन्धों की जो व्याख्या है, वह अद्वितीय है। वह केवल रक्तसम्बन्धों तक सीमित नहीं है। उससे परे भी है। ये पाँच हमारे मूलाधार हैं। मेरा मानना है कि ये इतने सनातन और शाश्वत मूल्यों के आधार पर है कि विश्व समुदाय में कोई भी इन पर कोई आक्षेप नहीं कर सकता।

इन्हीं को आगे बढ़ाकर भारत अपने सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत कर सकता है। हमारी कलाएं, हमारे प्राचीन ज्ञान के भण्डार, हमारा साहित्य आदि समस्त सम्पदाओं में इनका ही विस्तार है।

प्र. भारत के सांस्कृतिक सम्बन्धों की बात तो ठीक है, परंतु क्या वैश्विक संघर्ष को समाप्त में दूसरे देशों के पारस्परिक सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत करने से सहायता मिलेगी?

उ. यह निर्भर करेगा कि वे देश सांस्कृतिक सम्बन्धों के लिए कौन सी जीवन दृष्टि अपनाते हैं। यदि हमारे आध्यात्मिक जनतंत्र की संकल्पना को अपनाता है तो सारे झगड़े ही समाप्त हो जाएंगे। यदि वे इसे नहीं अपनाते तो फिर सबसे श्रेष्ठ कौन के झगड़े में वे लिप्त हो जाएंगे। इससे उलझन होना स्वाभाविक है।

प्र. वर्तमान समय में इक्कीसवीं सदी में एक नई वैश्विक व्यवस्था बन रही है। पूरानी वैश्विक व्यवस्था समाप्त हो रही है। प्रधानमंत्री मोदी जी ने भी इसका उल्लेख किया है। इस नई उभरती वैश्विक व्यवस्था में आप भारत की क्या भूमिका देखते हैं?

उ. भारत जिस पद्धति से स्वयं को प्रस्तुत करते हुए आगे बढ़ रहा है, चाहे वह जनतंत्र की बात हो तो आपात्काल के एक छोटे से काल को छोड़ दें तो हम जनतंत्र से अलग कभी नहीं गए और न ही जनता ने जनतंत्र से अलग जाने वाले को स्वीकार किया। विश्व में ऐसे कई देश हैं, जिन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जनतंत्र स्वीकारा और बाद में सैनिक शासन में चले गए। सोवियत रूस से अलग हुए अनेक देशों में यदि जनता को विकल्प दिया जाए तो वह पुनः सोवियत शासन की ओर जाएगी। वहाँ जनतंत्र के प्रति उतनी निष्ठा नहीं बनी, क्योंकि उनके जनतंत्र ने उन्हें कुछ दिया नहीं। भारत में ऐसा नहीं है। भारत में जनतंत्र अक्षुण्ण रहा है।

फिर विविधता का संरक्षण, इतनी सारी जनसंख्या को इकट्ठा रखना, आर्थिक प्रगति को ठीक रखना और विभिन्न विषयों में भारत की जो भूमिका रही है, उससे भारत की वैश्विक भूमिका बढ़ती है। जैसे कि संयुक्त राष्ट्र और वैश्विक प्रशासन में जनतंत्र आना चाहिए और विकासशील देशों की बात को माना जाना चाहिए, यह यदि भारत ने कहा तो इसका कोई भी विरोध नहीं कर सकता। अधिकांश विश्व समुदाय हमारे साथ है। इसी प्रकार जिस पद्धति से हमने जलवायु परिवर्तन पर बात रखी। विकसित देश पर्यावरण का नुकसान करें और उसका खामियाजा विकासशील देश भुगतें, यह हमें स्वीकार नहीं, भारत की इस बात को भी सभी को स्वीकारना पड़ा।

जब युद्ध छिड़ा तो हमारे प्रधानमंत्री ने कहा कि यह युद्ध का युग नहीं है। इसका सम्पूर्ण विश्व ने स्वागत किया। यह सब देखें तो हम कह सकते हैं कि इस नई उभरती विश्व व्यवस्था में भारत की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका बनती है। भारत विश्व समुदाय के लिए विकास का, अपनी अस्तित्व रक्षा का और अपना विकास करते हुए विश्व कल्याण को साधने का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह भारत के समकक्ष माने जाने वाले विश्व के अन्य देश नहीं कर पा रहे हैं। न हमारा उत्तर का पड़ोसी कर सकता है, न भारत से भी भौगोलिक दृष्टि से विशाल देश हैं, वे कर सकते हैं।

प्र. या फिर जो देश आर्थिक रूप से बहुत संपन्न हैं, वे भी नहीं कर पा रहे हैं।

उ. बिल्कुल इसमें मैं एक और बिन्दु जोड़ता हूँ। भारत की एक और विशिष्टता है। हमने अतिरेकी व्यक्तिवाद और अत्यधिक समूहवाद दोनों का संतुलन बनाए रखा है। हमारी परिवार व्यवस्था इस संतुलन का एक परिचायक है। व्यक्ति की स्वतंत्रता सामूहिकता की सीमा में और सामूहिकता की मजबूती व्यक्ति के विकास के लिए, यह हमारा सूत्र है। आज यह भी विश्व में एक अलग आदर्श के रूप में स्थापित होता हुआ दिख रहा है। यह विश्व के बहुत कम समुदायों में है। हाँ, दक्षिणी गोलार्ध के जो देश हैं, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, दक्षिण-पूर्व एशिया आदि में ये परंपराएं आज भी विद्यमान हैं। जो स्वयं को विकसित मानते हैं और विश्व के उत्तरी गोलार्ध में है, वहाँ समाज की स्थिति अच्छी नहीं है।

प्र. भारत की एक विशिष्ट संस्कृति को विश्व में प्रचारित करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की भी कोई भूमिका और गतिविधियां है क्या?

उ. भारतीय सांस्कृतिक परिषद् का लक्ष्य है सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की समझ विकसित करना। आज विश्व में भारत के प्रति प्रचूर मात्रा में सदिच्छा है। भारत से द्वेष करने वाले समुदाय या देश लगभग नहीं के बराबर हैं। परंतु भारत के प्रति सदिच्छा का होना एक बात है और भारत की समझ होना अलग बात है। हमारा काम है सदिच्छा को समझ में बदलने का है। इसके अलग-अलग तरीके हैं। प्रशिक्षण है, प्रबोधन का कार्य है। इसके साथ-साथ जो गलत धारणाएं जो बनती हैं, या बनाई गई हैं, उन्हें ठीक करना भी हमारा काम है। इन तीनों काम में हम सक्रियता से कार्य कर रहे हैं।

प्र. आज हिन्दी का वैश्विक व्याप काफी बढ़ा है। भारत की सांस्कृतिक महत्ता के संवर्धन में हिन्दी की कितनी भूमिका है?

उ. भाषा का महत्त्व तो है ही। विश्व में हिन्दी का महत्त्व बढ़ाना, उसके बारे में विश्व में रूचि उत्पन्न करना, यह सब करना ही चाहिए। हिन्दीभाषियों की संख्या बढ़ाना भी अच्छा है। परंतु किसी भी भाषा के विकास का मार्ग, भाषा और उसे बोलने की विधा और उसे बोलने वाले लोग, इन तीनों को हम कितना सम्मान देते हैं, इस पर निर्भर करता है। अगर हम आज की भांति मिलावटी हिन्दी बोल रहे हैं जिसमें 10 शब्दों के वाक्य में पाँच शब्द अंग्रेजी या किसी और भाषा के हैं, तो अपनी भाषा का हम अपमान कर रहे हैं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हिन्दी इतनी गरीब नहीं है कि उसकी अपनी शब्द संपदा नहीं हो। इसलिए, सबसे पहले जिनकी मातृभाषा हिन्दी है और जो हिन्दी से प्रेम करते हैं, उन सभी लोगों को हिन्दी को प्रतिष्ठित करना होगा। ऐसा होगा, तब विश्व समुदाय हिन्दी के प्रति अधिक सजगता से देखेगा। आज

पाँचवा मूलाधार है हमारी वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा। इसमें कुटुम्बकम् पर ही अधिक जोर है। वसुधैव समाजम् भी कहा जा सकता था, वसुधैव गृहम् भी लोग कह सकते थे, परंतु लोगों ने वसुधैव कुटुम्बकम् कहा है। कुटुम्ब में हमारे पारस्परिक सम्बन्धों की जो व्याख्या है, वह अद्वितीय है। वह केवल रक्तसम्बन्धों तक सीमित नहीं है। उससे परे भी है। ये पाँच हमारे मूलाधार हैं। मेरा मानना है कि ये इतने सनातन और शाश्वत मूल्यों के आधार पर है कि विश्व समुदाय में कोई भी इन पर कोई आक्षेप नहीं कर सकता।

भारतीय भाषाओं में अंग्रेजी का जो अतिक्रमण हुआ है, उसे अतिक्रमण मानने के लिए भी हम तैयार नहीं हैं। यह बहुत बड़ी विडम्बना है।

प्र. इसे हिन्दी के एक गुण के रूप में देखा जाता है कि हिन्दी तो बहुत ही समावेशी भाषा है।

उ. यह समावेशीपन नहीं है, यह लोगों के हीन भाव से प्रेरित है। अभी मैं रूस गया। वहाँ रूस में हिन्दी के अध्यापन की बहुत लंबी परम्परा है। वहाँ की एक शिक्षिका मुझे कह रही थी कि हम जो हिन्दी पढ़ाते हैं, वह आपके देश में बोली नहीं जा रही है। उन्होंने उदाहरण दिया कि वे पढ़ाते हैं कि मंहगाई और मुद्रा स्फिति दो अलग शब्द हैं परंतु आपके देश में मुद्रा स्फिति शब्द किसी को पता ही नहीं है, हर कोई कहता है कि मंहगाई बढ़ गई। इसलिए हिन्दी की शुद्धता का आग्रह और सर्वसमावेशकता में हम जो भ्रमित हो रहे हैं, उससे हमें बचना होगा।

अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सूरीनाम में भारतीय प्रवासी की 150वीं जीवित हीरक जयंती पर विशेष

पीढ़ियों के संघर्ष की अविस्मरणीय गाथा

- डा. मोहन कांत गौतम

1970 से सूरीनाम से बहुत प्रवासी भारतीय हॉलैंड चले गए। आज उनकी भी तीन पीढ़ियां आ गई हैं। उनकी जनसंख्या कोई डेढ़ लाख के आसपास है। वे भी सूरीनाम से हिन्दूस्तानी संस्कृति लेकर आए हैं। सूरीनाम की संस्कृति को सुरक्षित रख रहे हैं। यदि हिंदू है तो सुनहरी गले की जंजीर में प्रतीक रखते हैं। 1975 में सूरीनाम की स्वतंत्रता से पहले से ही आना शुरू कर दिया था। डच सरकार ने उनकी संस्थाएं बनाई जिन्होंने मिलकर काम किया। मंदिर, हिन्दू स्कूल और डच ब्रॉडकास्टिंग माध्यम खोला। यहां भी प्रत्येक वर्ष भारतीय प्रवासियों का आगमन मनाया जाता है। प्रवासी भारतीयों के 150 वर्ष यहां भी मनाए जाएंगे। क्योंकि यह आलेख सूरिनाम पर है, मैं हॉलैंड के बारे में और कुछ नहीं बताऊंगा। हाँ एक बात जरूरी है कि हिन्दुस्तानी सूरिनामी एक त्रिकोण में काम करते हैं। बहुत से बुजुर्ग जो भारत जाना चाहते थे, वे तो नहीं जा पाए, परन्तु उनकी हॉलैंड की बसी पीढ़ियां वहां गई। आजा-आजी के गांव देखकर आई।

इस वर्ष पाँच जून को सूरीनाम में हिन्दुस्तानी भारतीय आगमन के 150 वर्ष मनायेंगे। हिन्दुस्तानी जो 1970 के दशक में सूरीनाम की स्वतंत्रता (1975 नवम्बर) से पहले ही नीदरलैंड्स चले गए और वहीं बस गए, वे, अपने उन आजा-आजी, जो भारत छोड़कर सूरीनाम के बागानों में पांच वर्ष के ठेके पर चले गए थे और जिनकी पीढ़ियां आज सूरीनाम में रह रही हैं, उनके साथ मिल कर नीदरलैंड्स में भी सूरीनाम में उनके पूर्वजों के आगमन की 150वीं शताब्दी वर्ष मनायेंगे। जब मैं नीदरलैंड्स में 1960 में आया था, तब वहां एक हिंदुस्तानी संस्था मनन थी, जिसका मैं सदस्य भी बन गया था। बुजुर्ग लोग तो सूरीनाम में ही रहे पर उन्होंने अपने युवा बच्चों को अध्ययन के लिए हॉलैंड भेजा था। दूसरे सूरीनामी जो श्रानांग टोंगो भाषा बोलते हैं, वे आजकल क्रियोल कहलाते हैं।

वर्ष 1860 में सूरीनाम में गुलाम प्रथा का अंत हुआ। जो स्वतंत्र हुए, वे अपने को क्रियोल कहने लगे और सब कुछ छोड़कर जंगलों में जा बसे। वे चाहते थे कि छोड़ कर जाने वाले डच लोगों के पद उन्हें मिले। पढ़ने के बाद वे भी शहरों में बस गए। तब कैरीबियन देशों में, चाहे वह गायाना हो या त्रिनिदाद, हिन्दुस्तानियों के साथ नस्लीय भेदभाव बढ़ गया था। शासन में क्रियोल थे और व्यापार में हिन्दुस्तानी भारतीय। हॉलैड में उन्होंने क्रियोलों की संस्था बनाई और अपने को वास्तविक सूरीनामी माना। जो अमेरिका और लैटिन अमेरिका में गुलाम की तरह बेचे गए थे, उनसे जबरदस्ती काम करवाया गया। हॉलैड में उनका लक्ष्य था कि उन्हीं का वर्ग सूरीनामी माना जाए। उस समय एक नारा लगाया जाता था कि 'वी ऐखी सानी' अर्थ था कि वास्तविक सूरीनामी कौन है? हिंन्दुस्तानियों ने भी एक संस्था बनाई और उसका नाम 'मनन' रखा, जिसका ध्येय था कि मनन करने के बाद आप स्वयं समझ जाएंगे कि हिन्दुस्तानी ही असली सूरीनामी हैं। मैं भी मनन का सदस्य बन गया था और भारतीयों को उभारने के लिए भारतीय सांस्कृतिक आयोजन किया करता था। मनन के बहुत से सदस्य मेरे मित्र बन गए, जो बाद में सूरीनाम के राष्ट्रपति और मंत्री भी बने। हालांकि हिन्दुस्तानी भारतीयों ने क्रियोलों के साथ कभी भी भेदभाव नहीं किया।

सभी हिन्दुस्तानी श्रानांग टोंगो भी बोल और समझ सकते हैं। सूरीनाम में क्रियोल तो डच कुर्सी पकड़ना चाहते थे किंतु भारतीय स्वतंत्र रहना चाहते थे। भारतीय धान की कृषि के साथ-साथ व्यापार में

महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती द्रौपदी मर्मु को सूरीनाम के सर्वोच्च नागरिक सम्मान प्रदान करते सूरीनाम के राष्ट्रपति

भी लग गए। बड़े-बड़े व्यापार भारतीयों के हाथ में थे, जैसे अनाज की दुकानें, मसाले, आने-जाने के ट्रांसपोर्ट की बसें, जमीन और जायदादों को बेचने का काम। बाद में रेडियो 'राधिका' भी खोला जो अभी तक चल रहा है। वह फिल्मी गीतों के साथ सूरीनाम के समाचार भी देता था।

सूरीनाम में एक और वर्ग है जो इंडोनेशिया से है और अपने को 'मलाई' (जावानी) कहता है। उनकी संस्कृति भी भारत से प्रभावित रही है। जब सूरीनाम में पांचवें दशक में राजनीतिक दल बने, इन्होंने भी एक राजनीतिक पार्टी 'सूरीनामी हिन्दू पार्टी' (13 फरवरी 1947) बनाई। 25 फरवरी 1947 में श्री जे. लछमन ने एशियाई प्रवासियों को एकता के सूत्र में बांधने के लिए हिन्दुस्तानी जावानी राजनीतिक पार्टी की स्थापना की। 1954 में सूरीनाम को वैधानिक स्वायत्तता मिलने के बाद लछमन ने राजनीतिक पार्टी का नाम वी.एच.पी. (वतन हितकारी पार्टी) दे दिया।

यूरोपियन यहूदियों के साथ चीन से दक्षिण के हाका बोलने वाले भी गए। जिन्होंने सूरीनाम में दुकानों से बेचने का व्यापार किया। दुर्भाग्यवश जब मैं 1950 के पांचवें दशक में लखनऊ विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था, तब वहाँ किसी ने भी सूरीनाम देश का ना तो नाम सुना था और ना जानता था। मैं लखनऊ विश्वविद्यालय से मेरे मित्र श्री दाऊजी गुप्ता के समय में सांस्कृतिक-सामाजिक सचिव था और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करता रहता था। मैं सदैव से चाहता था कि विद्यार्थी भी अन्य देशों और उनकी संस्कृतियों से परिचित हों। तभी मेरी मुलाकात सुखराम अक्कल से हुई जो बॉलीवुड में अकोर्डियन भी बजाया करते थे और सूरीनाम के थे। उन्होंने भारत में विवाह कर लिया था। एक सांस्कृतिक कार्यक्रम में मेरे कहने पर उन्होंने सूरीनाम देश और वहां के हिन्दुस्तानी संस्कृति के बारे में विद्यार्थियों को बताया। बाद में लखनऊ में क्रियोल भी अध्ययन के लिए आने लगे।

सूरीनाम के ऐतिहासिक तथ्य

1492 में कोलंबस और उसके साथी वर्ष 1495 में स्पेन से भारत की खोज में अमेरिका जा पहुंचे थे। वैसे ही वास्कोडिगामा इसी खोज में निकले थे और वर्ष 1498 में भारत पहुंचे थे। 1494 में 23 अप्रैल को स्पेन के नाविक 'डोमिंगो द वीरा' ने सूरीनाम के तट पर लंगर डाला था और इसे 'गायाना' नाम से पुकारा था। 1630 तक यहां कोई नहीं टिका। उन्हें यहाँ के मूलनिवासियों, जिन लोगों को बाद में 'रेड इंडियन'

ये प्रवासी भारतीय भी अपने देश में बहुभाषी है। घर के बाहर तुलसी की पूजा करते हैं और कुछ लाल झंडी भी लगाते हैं। वैसे हर घर में चाहे वह त्रिनिदाद या गायाना हो 'लोटा' और 'परात' या 'पीतल की थाली' मिलेगी जो उनकी भारतीयता का प्रतीक है क्योंकि उनके आजा-आजी पूजा के लिए साथ ले गये थे। लड़की के विवाह में दहेज भी दिए जाते हैं। जब-जब दिवाली का त्योहार मनाया जाता है। मशालों को भी साथ ले जाते हैं। मिट्टी के दीपक के स्थान पर अब तो टेलीफोन की रोशनी जलाते हैं। फगवा में इत्रों का उपयोग करते हैं। सूरीनाम में तो उनकी अपनी भाषा प्रचलित है जिसे हिन्दी, हिन्दुस्तानी और सरनामी कहते हैं किंतु और दूसरे कैरिबियन देशों में हिंदी लुप्त हो गई है। पूजा में संस्कृत के श्लोक और रामायण की चौपाइयां पढ़ी जाती हैं। पर वे 'रोमन' लिपि में लिखी जाती हैं। गायना और त्रिनिदाद में अंग्रेजी ही बोलते हैं। फिर भी हाटों में हिन्दुस्तानी भाषाओं के अवशेष सुनाई देते हैं।

कहा गया, का डर था। इनका उद्देश्य 'गोल्ड रश' यानी नये स्वर्ण क्षेत्र की खोज करना था। इंग्लैंड से कप्तान मार्शल अपने 60 लोगों के साथ सूरीनामी नदी के मुहाने पर उपनिवेश बनाने के लिए गया था। 1640 में लॉर्ड फ्रांसिस बिलोगबी आर्थिक विकास के लिए सूरीनाम पहुंचे। मूलनिवासियों से मित्रता कर ली। तब पारामारिबो बस्ती बनी।

अंग्रेजों और डचों में इन खोजों के लिए युद्ध होते रहे। डच कप्तान अब्राहम ग्राइनसन के समय पारामारिबो की जनसंख्या 4000 थी। अंग्रेजों से शांति स्थापित करने के लिए हालैंड ने अपना उपनिवेश अमेरिका के न्यू नीदरलैंड्स को 60 गिल्डर में बेच दिया, जिसे आजकल न्यूयॉर्क कहा जाता है। वर्ष 2000 में गिल्डर के स्थान पर पश्चिमी यूरोप ने यूरो अपना लिया। बाद में गायाना तीन भागों में बंट गया। फ्रांसीसी, डच और ब्रिटिश गायाना। चूँकि डच पानी और बांधों के विशेषज्ञ थे, उन्होंने ब्रिटिश गायना में नहरें और समुद्र के तट पर बांध बनाये। बाद में देश के अलग होने पर भी उनका उपयोग अंग्रेजों ने किया। वैसे अब भी बहुत से डच नामों का प्रयोग होता है। सूरीनाम की आर्थिक उन्नति में रुकावट तो आ गई थी और बहुत से बागान भी बंद हो गए थे। 1862 से 1877 की अवधि में 77 खेत बंद हो गए। बागान ही खेत थे।

हालैंड ने अंग्रेजी सरकार से भारतीय श्रमिकों के लिए बागानों की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए संधि की। इस कानूनी कार्यवाही से भारतीय प्रवासियों को बुलाने की छूट मिल गई। अरकाटियों ने गिरमिटियों को फुसलाकर भर्ती करना शुरू कर दिया। अरकाटियों के एजेंट भारतभर में फैल गए थे। इलाहाबाद में बनारसीलाल, फैजाबाद में मोहम्मद शरफिराज अली, बनारस में बिहारी लाल थे। वैसे आगरा, कानपुर, गाजीपुर और बक्सर में भी इनके कार्यालय थे। जब लोग जमा कर लिए जाते तो उन्हें कलकत्ते के मुख्य डिपो में भेज दिया जाता और कुछ समय बाद स्वास्थ्य का मुआयना होने के बाद जहाज में भेज दिया जाता। जाने से पहले जिले के मजिस्ट्रेट के पास जाकर उनसे कहलवाया जाता कि वे अपनी मर्जी से जा रहे हैं और अंगूठे का निशान लगाने से उन्हें भिजवा दिया जाता। इसे अंग्रेजों में एग्रीमेंट कहते हैं जो उनकी भाषा में गिरमिटिया कहलाया।

डच सरकारी प्रबंध

कोलोनियल (औपनिवेशिक) रिपोर्ट के अनुसार कलकत्ते में 'प्रोटेक्टर ऑफ इमीग्रेंटस' था जिसे लोग एजेंट जनरल भी कहते थे। भारतीयों के प्रवास के समय अंग्रेज ऑफिसर डॉ. डब्ल्यू फोरसाइथ थे जिनके नीचे डच काउंसलर पोस्टर और गोमरस थे। भर्ती का काम डिपो में कोलकाता के बाबू ठाकुर दास घोष करते थे। वे ही भर्ती किए गए गिरमिटिया के मुआयना होने के बाद जहाज में भिजवाने का काम करते। उनकी तनख्वाह तब 150 रुपए थी। सब डिपो जो उत्तर भारत के नगरों में थे, वहां से कलकत्ता के भर्ती घर मुख्य डिपो में ले जाया जाता था। यह 'गार्डन रीच' पर था। यह इमारत हुगली के पास थी और दीवारों से घिरी थी और गिरमिटियों का बाहर जाना मना था। डिपो में पहुंचकर गिरमिटियों को नहलाया जाता और धार्मिक संबंध भी समाप्त कर दिए जाते। उन्हें नए कपड़े दिए जाते और उन्हीं कपड़ों में उन्हें यात्रा करनी पड़ती।

भारतीय अपने-अपने अंचल की बोली बोलते थे जैसे भोजपुरी, नेपाली, अवधी, ब्रज, मैथिली, बंगाली, मगही आदि। अंग्रेज लोग सभी को 'हिन्दुस्तानी' कहते किंतु जहाज पर चढ़ने के बाद सभी को 'कुली' कहकर पुकारा जाता। वैसे सब एक साथ रहते और मनोरंजन के लिए रामायण पढ़ते और खेल खेलते। उड़ीसा से होकर जब जहाज निकलता तो रोते और दूर से दिखाई दिए जगन्नाथ मंदिर में कृष्ण भगवान से प्रार्थना करते कि पता नहीं कब लौटेंगे। उनका आशीर्वाद बना रहे और वे स्वस्थ रहें। दो नये रिश्तों ने उन्हें परिवार का रूप दिया। पहले तो 'डिपुआ भाई' और दूसरा था 'जहाजी भाई'।

मुंशी रहमान खान अपने घर से कानपुर की परेड पर होने वाली रामलीला देखने गए थे। जब लौट रहे थे तो उन्हें दो शरीफ मुसलमानों ने तनख्वाह का लोभ दिलाकर बाबू राम नारायण सिंह के सब डिपो में भिजवा दिया था। कहा जाता है उन्हें रामायण कंठस्थ थी और दोहे और चौपाइयों में अपनी देवनागरी में कविताएं लिखा करते थे। फिर 1898 में 618 मुसाफिरों के साथ सूरीनाम भेज दिए गए थे।

हालैंड में भी मैंने लोगों से पूछा। उनके उत्तर से समझ आया कि

उस समय उन्हें पता नहीं था कि वे कहां भेजे जा रहे हैं। श्री निवासी जो सूरीनाम के राष्ट्र कवि थे, 1970 के दशक में उनके घर गया। तब उनके पिताजी 75 वर्ष के थे। उन्होंने कहा- ''देखो, भारतीय कैसे आए? खुशी मन से नहीं, बल्कि उन्हें ठगा गया। हमार नानी का एक भाई पुलिस का सिपाही लखनऊ मा रहा। आजमगढ़ के पास हमार नानी का गांव रहा। एक दिन कटिया (अरकाटी) आये रहेन और सब भेद ले लिया। हमार नानी से बोले तुम्हार भाई लखनऊ में सख्त बीमार है। नानी तुरंत ताला लगाय दी और बिना कहे-सुने उनके साथ चल दी। उनको ले गए कलकत्ता और जहाज में सूरीनाम भिजाइ दी।''

सूरीनाम में जब नया जहाज आता तो हल्ला हो जाता देहातों में, और सभी उसे देखने के लिए बंदरगाह जाते। अभिलाषा यही थी कि शायद कोई जान-पहचान का गांव से आया हो, समाचार लाया हो और जब कभी भाई से मिटिया लिए तो वहां रूआ-पिटाई होती। और प्रवासी जहाज से ही आंख फाड़-फाड़ कर सकते में पड़ जाता। उन्हें अपना गांव याद आता। कोई हंसता पर असली हंसी नहीं, यह उनकी लाचारी होती। हिन्दुस्तानी आए हुए प्रवासियों की पूछताछ कर सूरीनाम के डिपो से अपने साथ बागान में ले जाते, काम सिखाते, फिर मरते-मरते भी कहते कि हमार मिट्टी ले जाय कोय। यह बकरा (डच लोग) हमें खूब, फरेब दिखाय रहेन।

इस तरह के मेरे पास बहुत से इंटरव्यू हैं।

भारत के दर्शन की इच्छा सबकी थी पर बनाया घर, जमीन और बच्चे नहीं छोड़े जा सकते थे। अब भारत की तुलना में सूरीनाम में अधिक स्वतंत्रता भी थी।

हिन्दुस्तानी संस्कृति की सुरक्षा

जब पांच या दस वर्षीय ठेका समाप्त हो गया तो उन्होंने अपनी जमीन पर सब्जियां लगाई, धान लगाया, दूध और घी के लिए जानवर पाले। उनकी बिक्री भी की और ठीक से रहने लगे। बागानों की यंत्रणाओं को सहकर भी हिन्दुस्तानी सूरीनामियों ने अपने धर्म, संस्कृति, भाषा, रीति रिवाज, लोकगीत आदि को सुरक्षित रखा और आने वाली पीढ़ियों को भी दिया। सूरीनाम में गांव को 'परिणासी' कहते हैं।

स्त्रियों ने साड़ी, लहंगा, ब्लाउज के साथ हंसुली, बाजू, टीका, कड़े, जंजीर सभी का उपयोग किया। शादी-विवाह भी भारतीय परंपरा से होता है, चाहे पंडित सनातनी हो या आर्य समाजी। मुसलमानों ने भी अपने रीति रिवाज संभाल कर रखें। मंदिर, मस्जिद और गिरजाघरों में राम, कृष्ण, अल्लाह सुनाई देते हैं। ईसाई भारतीय भी ईसा का नाम

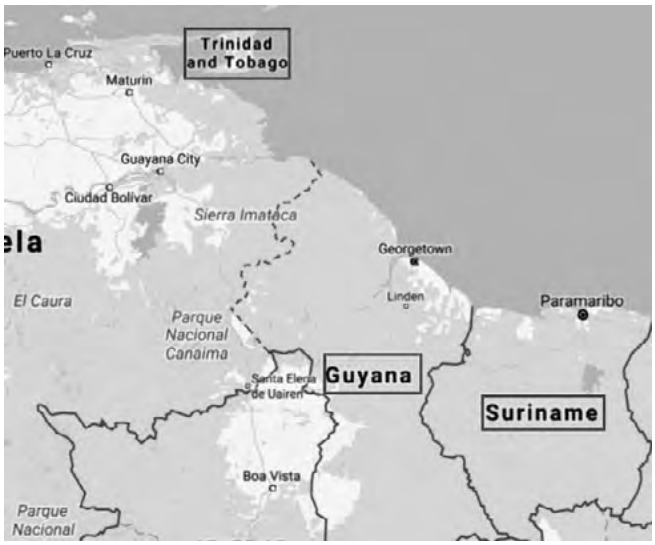

लेते हैं। रामायण का पाठ, हनुमान चालीसा, भागवत की कथा घर-घर में सुनाई देती है। फिर जब त्यौहार आते हैं तो उन्हें मनाते हैं और गीत, ढोलक, खंजरी पर गाते हैं। आजकल तो हारमोनियम भी बजाया जाता है। सूरीनामी भारतीयों ने भारत नहीं देखा पर बड़े-बूढ़ों के संदर्भ में स्मृतियां ढाल दिया। सच में पूछा जाये तो घर से ही उनको स्मृति से भारतीय संस्कृति मिली है।

एक बात यहां हुई प्रवासी भारतीयों में जाति प्रथा को ना माना। स्त्रियां वैसे कम ही आई थी। राष्ट्रीय आरकाइव्यस् में लोगों ने नए नाम रख लिए। बहुतों ने 'सिंह' नाम अपनाया। आजकल नए टेक्निक से बॉलीवुड के संगीत ने उन्हें गीतों की ध्वनि और फिल्मों से भारतीयों भारतीय जीवन देखने का अवसर भी मिला। सभी के यहां टीवी भी है। हाँ, बहुत से सूरीनामी हिन्दुस्तानी जो हॉलैंड से आए बस गये।

भारत से सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थी समझते हैं कि सूरीनाम और प्रवासी देशों में प्रवासी भारतीयों की संस्कृति भारत की प्रतिलिपि है। ऐसा नहीं है। हिन्दुस्तानी जहां गए उन्होंने वहां की भाषाएं सीखी और उनकी संस्कृति के बहुत से तथ्य अपना लिए। इसलिए आवश्यक है कि शोध के लिए वहां जाएं और वहां की संस्कृति देखें और समझे। उदाहरण के लिए जब प्रवासी भारतीयों का जमैका में ठेका समाप्त हो गया तो बेलिज में श्रमिकों की मांग हुई। जमैका के प्रवासी वहां जाना चाहते थे पर अंग्रेज औपनिवेशक सरकार ने मना कर दिया। हिन्दुस्तानियों की आंचलिक भाषाओं के लुप्त होने पर हिंदुस्तानी का ही प्रयोग करने लगे। उन्होंने स्पेनिश भी सीख ली थी। उन्होंने अवसर क्यूबा में खोजा। 1910 में क्यूबा में जमैका से गए जगदीश थे जिन्होंने चाहा कि भारतीय प्रवासियों को काम मिले। पर क्यूबा ने भी काम नहीं दिया। बाद में वहीं बस गए। अपने नाम स्पेनिश में रख लिये। वहां पर भी आजकल काफी प्रवासी भारतीय हैं। वह भी भारत की प्रतिलिपि नहीं है। इसी तरह सेंट लुशिया, ग्रेनाडा, सेंट विन्सेंट, सेंट किटस्, ब्रिटिश होनरुस (बेलिज), ग्वाडेलूप और मार्तिनिक (जो फ्रांसीसी हैं और गए हैं) में भी प्रवासी भारतीय हैं। इन सभी की संस्कृतियों पर काम होना चाहिए। इनकी भारत से समानता तो है, परंतु काफी कुछ भिन्नता भी है।

ये प्रवासी भारतीय भी अपने देश में बहुभाषी है। घर के बाहर तुलसी की पूजा करते हैं और कुछ लाल झंडी भी लगाते हैं। वैसे हर घर में चाहे वह त्रिनिदाद या गायाना हो 'लोटा' और 'परात' या 'पीतल की थाली' मिलेगी जो उनकी भारतीयता का प्रतीक है क्योंकि उनके आजा-आजी पूजा के लिए साथ ले गये थे। लड़की के विवाह में दहेज भी दिए जाते हैं। जब-जब दिवाली का त्योहार मनाया जाता है। मशालों को भी साथ ले जाते हैं। मिट्टी के दीपक के स्थान पर अब तो टेलीफोन की रोशनी जलाते हैं। फगवा में इत्रों का उपयोग करते हैं। सूरीनाम में तो उनकी अपनी भाषा प्रचलित है जिसे हिन्दी, हिन्दुस्तानी और सरनामी कहते हैं किंतु और दूसरे कैरिबियन देशों में हिंदी लुप्त हो गई है। पूजा में संस्कृत के श्लोक और रामायण की चौपाइयां पढ़ी जाती हैं। पर वे 'रोमन' लिपि में लिखी जाती हैं। गायना और त्रिनिदाद में अंग्रेजी ही बोलते हैं। फिर भी हाटों में हिन्दुस्तानी भाषाओं के अवशेष सुनाई देते हैं।

सूरीनाम में 1873 से 1916 तक 34,000 भारतीय प्रवास में गये, जिनकी यात्रा की अवधि जहाजों से 64 दिनों की थी। उनका यह प्रवास 44 वर्ष तक चलता रहा, जिसमें ठेका समाप्त होने के बाद 11,700 लोग भारत लौट गये। उससे पहले बहुत से गयाना के प्रवासी भारतीय वहां शर्त बंदी ठेके के बाद सूरीनाम जा पहुंचे। जिनको यह पता था कि भारत पूर्व में है, वह ठेके के समाप्त होने के बाद पूरब की ओर चलते रहे। इसी आशा से कि वह भारत पहुंच जाएंगे। गयाना की पूर्वी सीमा सूरीनाम से लगी है। हाँ, बीच में बहुत बड़ी नदी निकेरी है। किसी तरह से उस पार पहुंचने पर निकेरी में पहुंच गये और वहाँ काम करने लगे। सूरीनाम को ही उन्होंने भारत समझा।

सभी प्रवासी भारतीय प्रवासी भारतीय संस्थानों को साथ ले गए, जिसमें उनकी संस्कृति थी। 1873 में सूरीनाम पहुंचने के बाद उन्हें 15 बागानों में भेज दिया जो निकेरी से लेकर पारामारिबों के पूरब में स्थापित थे। नए परिवेश और नए रेड इंडियन के साथ क्रियोलों से भी मुलाकात हुई। उनके बागानों के कर्मचारी क्रियोल ही थे। पर गुलाम प्रथा के उन्मूलन के बाद वही लोग पुरानी बागानों की परंपरा से काम करने लगे। शर्तबंदी ठेके के बाद जो भारत लौटे, उनके गांव वालों ने शुरू में बहुत लूटा पर जब सब कुछ समाप्त हो गया तो काम के लिए कलकते के बंदरगाह में पहुंचे। चाहते थे कि उसी टापू में जाये पर उन्हें दूसरे देशों में भेज दिया गया। जैसे एक भाई सूरीनाम, दूसरा भाई गयाना में और तीसरा भाई दक्षिण अफ्रीका में। मेरी मुलाकात कुछ लोगों से हुई, वे बहुत खुश हुए। कुछ लोग तो 'गार्डन रीच' पहुंचे और जब काम नहीं मिला तो पास के मोहल्ले में काम ढूंढने लगे।

सूरीनाम में भारतीय संस्कृति को कैसे सुरक्षित रखा?

मेरे विचार में प्रथम लल्लारुख जहाज में 410 श्रमिक थे। ज्यादातर आगरा जिले से, कोई प्रतिशत 260 और संस्थानों से कम थे। अवध से 75, बिहार से 49, बंगाल से 14, बाकी 11 अन्य संस्थानों से। जब विदित हुआ कि अंग्रेज सरकार ने जहाजों का जाना बंद कर दिया है। कारण था ना तो डॉक्टर थे और ना अनुवादक दुभाषिये। जब जहाजों का कोलकाता से आना बंद हो गया जो 5 वर्ष तक चला।

पहले दो वर्षों में आए 8 जहाजों में कोई 20 प्रतिशत की मृत्यु हो गई थी। अंग्रेज चाहते थे कि वहाँ अस्पताल और दुभाषिये भी हों। आठ जहाजों से 3871 श्रमिक आए थे। उनको लगा कि लौटकर नहीं जा पाएंगे। सभी एक दूसरे से मिले और हिन्दुस्तानी भाषा के जरिए हर रविवार को एक-दूसरे से सम्पर्क किया। अपनी भाषा के साथ अपनी संस्कृति की सुरक्षा की। बाद में हरदेव साहब ने लिखा,

अपनी भाषा में एक बात बोली
तोहसे हमने बहुत है प्यार,
महतारी भाषा हमार।

बिरहा भी लोग सुनाने लगे। लोकगीत सुनने में आए। स्मृति के अकेलापन को दूर किया। 1841 डा. कोमिन जब सूरीनाम गये तब 1891 में चार 'कुली स्कूलों' की स्थापना हुई। कुछ अध्यापक दुभाषिये भी बनें। वहीं विद्यार्थियों ने हिन्दी सीखी। शिक्षक और दुभाषिये थे - तुलसी, अकरम मियां, करामत अली, शीतल प्रसाद, दलिया सिंह, रामदास, शिवप्रसाद और जब्बर। दो दुभाषिये दिल रोशन और उदय राज सिंह अंग्रेजी भी जानते थे। 1907 से 1929 तक स्कूलों में डच भी सीखने लगे। संस्थाएं बनी और आर्य समाज, सनातन धर्म और इस्लाम नामी संस्थाएं थी। महातम सिंह ने भी बहुत काम किया। उनके रेस्टोरेंट में विभिन्न हिन्दुस्तानी खाना मिलने लगा। सिनेमाघर में भारत की बॉलीवुड की फिल्म दिखाई जाने लगी। मंदिरों की स्थापना हुई।

1970 में डा. ज्ञान अधीन जो मेरे अभिन्न मित्र और मंत्री भी थे, सरनामी को भी आगे बढ़ाया। काफी लोगों ने साहित्य रचा। मेरे दो विद्यार्थियों ने सरनामी का व्याकरण लिखा। पत्रिकाएं निकाली।

भारतीय दूतावास खुलने के बाद प्रथम भारतीय श्री बच्चू प्रसाद थे जिन्होंने सूरीनामी हिन्दुस्तानी को और बढ़ाया। हिन्दी और संगीत की भी शिक्षा मिलने लगी। बॉलीवुड फिल्मों के नायक और संगीतकार भी सूरीनाम आये। आज भी यदि कोई बॉलिवुड के सिनेतारिका या संगीतकार सूरीनाम आए तो वहां हिन्दुस्तानियों की भीड़ दिखाई देगी। सब चाहते हैं कि उनका चित्र भी खिंचे। सभी हिन्दुस्तानी चाहते हैं कि बॉलीवुड देखें और हिन्दू स्थानों के दर्शन करें। अभी राष्ट्रपति संतोखी भारत गए थे और मोदी जी से भी मुलाकात की थी।

1970 से सूरीनाम से बहुत प्रवासी भारतीय हॉलैंड चले गए। आज

भारतीय अपने-अपने अंचल की बोली बोलते थे जैसे भोजपुरी, नेपाली, अवधी, ब्रज, मैथिली, बंगाली, मगही आदि। अंग्रेज लोग सभी को 'हिन्दुस्तानी' कहते किंतु जहाज पर चढ़ने के बाद सभी को 'कुली' कहकर पुकारा जाता। वैसे सब एक साथ रहते और मनोरंजन के लिए रामायण पढ़ते और खेल खेलते। उड़ीसा से होकर जब जहाज निकलता तो रोते और दूर से दिखाई दिए जगन्नाथ मंदिर में कृष्ण भगवान से प्रार्थना करते कि पता नहीं कब लौटेंगे। उनका आशीर्वाद बना रहे और वे स्वस्थ रहें। दो नये रिश्तों ने उन्हें परिवार का रूप दिया। पहले तो 'डिपुआ भाई' और दूसरा था 'जहाजी भाई'।

उनकी भी तीन पीढ़ियां आ गई हैं। उनकी जनसंख्या कोई डेढ़ लाख के आसपास है। वे भी सूरीनाम से हिन्दूस्तानी संस्कृति लेकर आए हैं। सूरीनाम की संस्कृति को सुरक्षित रख रहे हैं। यदि हिंदू है तो सुनहरी गले की जंजीर में प्रतीक रखते हैं। 1975 में सूरीनाम की स्वतंत्रता से पहले से ही आना शुरू कर दिया था। डच सरकार ने उनकी संस्थाएं बनाई जिन्होंने मिलकर काम किया। मंदिर, हिन्दू स्कूल और डच ब्रॉडकास्टिंग माध्यम खोला। यहां भी प्रत्येक वर्ष भारतीय प्रवासियों का आगमन मनाया जाता है। प्रवासी भारतीयों के 150 वर्ष यहां भी मनाए जाएंगे। क्योंकि यह आलेख सूरिनाम पर है, मैं हॉलैंड के बारे में और कुछ नहीं बताऊंगा। हाँ एक बात जरूरी है कि हिन्दुस्तानी सूरिनामी एक त्रिकोण में काम करते हैं। बहुत से बुजुर्ग जो भारत जाना चाहते थे, वे तो नहीं जा पाए, परन्तु उनकी हॉलैंड की बसी पीढ़ियां वहां गई। आजा-आजी के गांव देखकर आई।

इस त्रिकोण के तीन ध्रुव हैं - भारत, हॉलैड और सूरीनाम। इन तीनों में संबंध बना रहे, यही इनकी आकांक्षा है। वैसे सूरीनाम को अधिक महत्व देते हैं क्योंकि पुरानी पीढ़ी का जन्म भी सूरीनाम में हुआ था। भारत को तो नक्शे से ही जानते हैं। मैंने ही 1975 में सूरीनाम और हिन्दुस्तान पर सर्वप्रथम फिल्म यहां की सरकार के लिए बनाई थी। मुझे अभी तक याद है जब गुरुदत्त कला सिंह का गीत 'सारे जहां से प्यारा सूरीनाम हमारा' और आज हम भारत के गुन गायन हैं, हालैंड में सुनने को मिलता था। सूरीनाम की जीवित आत्मा सदैव आदरणीय बनी रहे, मेरा भी यही सपना है।

सूरीनाम साहित्यकार, नीदरलैंड

सूरीनाम में भारतीय प्रवासी की 150वीं जीवित हीरक जयंती पर विशेष

कठोरतम प्रवास में भी की स्वभाषा की रक्षा

- प्रो. डा. पुष्पिता अवस्थी

"भाषा व्यक्ति के हृदय पर अभिव्यक्ति के लिए उगी हुई फसल है, जिससे प्रतिभा की भूख मिट सके और संस्कारों को पोषण मिल सके। सरनामी और हिन्दी भाषा ने सूरीनाम में हिन्दुस्तानी संस्कृति की रक्षा की है। पुरखों द्वारा लाई, बचाई और चलाई गई भाषा ने भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की। जीवन मूल्य, परम्पराएं, धर्म, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएं, किस्सा जो उनके प्रवासी पूर्वज अपने साथ लेकर आए थे, उस संस्कृति को भारतवंशियों ने पर्याप्त मात्रा में आज तक सुरक्षित रखा है। दक्षिण अमेरिका और कैरिबियाई देशों में सूरीनाम देश इसी कारण से भारतीयता का ज्योति-स्तंभ बना हुआ है। तुलसीदास, सूरीनाम के हिंदू जन-मानस के शंकराचार्य बने और कबीर ने निर्गुण उपासना के रास्ते दिखाए और दोनों ने अभिव्यक्ति के लिए सहज सरल भाषा के मानवीय संवेदनशील गुण सिखाए।"

भाषा मानव हृदय का कल्पवृक्ष है। इतिहास भाषा में मुखरित होता है। भाषा में किसी भी देश की संपूर्ण संस्कृति सांस लेती है। भाषा व्यक्ति को उसे अपनी मातृभूमि की नागरिकता प्रदान करती है। पाँच जून, 2023 को सूरीनाम में गए हुए हिन्दुस्तानियों के 150 वर्ष पूरे हो रहे हैं। पाँच पीढ़ियों से विभिन्न देशों की जाति, धर्मों और संस्कृति के बीच जीने के बावजूद हिन्दुस्तानी संस्कृति ही उनके अपने जीवन की संस्कृति बनी हुई है और हिन्दुस्तानी बोली के समुच्चय से बनी उनकी नई वाणी सरनामी बनी है। सूरीनाम के हिन्दुस्तानियों की यह अपनी सांस्कृतिक भाषा है इसलिए इसे सरनामी नाम से जानते, पहचानते और मानते हैं। हिन्दी भाषा परिवार की बोलियों से बनी 'सरनामी' उनकी अपनी महतारी भाषा है।

जिस तरह भाषा किसी भी संस्कृति की शक्ति है, उसी तरह किसी भी देश की संस्कृति उस भाषा की प्राण है। सूरीनाम के असेंबली स्पीकर श्री जगन्नाथ लक्ष्मण कहा करते थे, ''यह अपना अनुभव है कि भाषा की शक्ति के माध्यम से जनता को एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है। इसलिए अपनी भाषा और संस्कृति की सुरक्षा करना हर मानव का कर्तव्य है। हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार से हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारा समाज अपनी एक पहचान बनाए हुए हैं। जो हमारे लिए गौरव की बात है।'' सूरीनाम देश के हिन्दुस्तानियों की जीविका की भाषा डच है। लेकिन उनके जीवन की भाषा सरनामी और हिंदुस्तानी है। उनकी सांस्कृतिक विरासत इन्हीं भाषा में संरक्षित और सुरक्षित है।

जून 1993 में सूरीनाम में आयोजित तृतीय अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन हुआ था। उस अवसर पर सूरीनाम देश के राष्ट्रपति रोनाल्डो फिनिव्शियांग ने डच भाषा में लिखित संदेश दिया था जिसका अनुवाद है- ''हिन्दी भाषा भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की कुंजी है। मैं चाहता हूँ कि सूरीनाम का समाज इस भाषायी संपदा से लाभान्वित हो।''

विश्व के विभिन्न देश द्वीपों में हिन्दुस्तानी भारतवंशी समाज की भाषाई संस्कृतिक शक्ति के विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह सिद्ध है कि भारतवंशी बहुत देशों में सूरीनाम देश में अभी हिंदुस्तानी संस्कृति और हिंदी भाषा अपनी बोलियों के साथ व्यवहार में जीवित और जीवंत है। वहां से हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार को केंद्र में रखकर 2004 में 'कैरिबियाई देशों' में हिन्दी शिक्षा और सूरीनाम हिन्दी परिषद' शीर्षक से पुस्तक लिखी थी, जिसे उस समय प्रधानमंत्री रहे माननीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को समर्पित की थी। 'शब्द-शक्ति' और 'हिंदीनामा' नाम से पत्रिकाओं का सूरीनाम में प्रकाशन होता रहा है, जिसके संपादन का दायित्व भी मेरे पास रहा है।

कैरिबियाई देशों में सूरीनाम ही एक ऐसा देश है जहां के लोग भारतीय संस्कृति और दर्शन में रसे-पगे हुए है। हिन्दुस्तानी मजदूर के रुप में आए हुए स्त्री-पुरुष अपने साथ ज्ञान, धर्म और अपनी लोकभाषा लेकर आए थे जो वहां के सामाजिक पर्यावरण से परितिष्ठित होकर सरनामी के रूप में प्रतिष्ठित है। विश्व हिंदी साहित्य कोश में 'हिन्दुस्तान' के वर्णित परिक्षेत्र से हिन्दुस्तानी समुदाय डच औपनिवेशिक लोगों द्वारा सूरीनाम ले जाए गए थे। मजदूरी करवाते हुए वे इन्हें कुली, कुत्ता और कलकतिया कहकर

पुकारते थे। विश्व के पूर्वी हिस्सों में हिन्दुस्तानी समुदाय गिरमिटिया एग्रीमेंट के तहत ले जाया गया तो विश्व के पश्चिमी गोलार्द्ध में वे कॉन्ट्रेक्ट के तहत ले जाये गए जिसे हिन्दुस्तानी समाज कन्ताकि समाज के रूप में जानता पहचानता है। लेकिन इन्हीं मजदूरों की अग्रतर पीढ़ियों ने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर स्वयं को इतना उन्नत कर लिया है कि डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक और व्यवसायी बनकर अपने देश और अन्य कैरेबियाई देश, द्वीपों, गयाना, ट्रिनीडाड, कुरुसावा आदि देशों में सक्रिय हैं। यह गौरव की बात है कि बहुराष्ट्रीय नागरिकों के देश का राष्ट्रपति भारतवंशी मूल के महामहिम चांद संतोषी है।

भूमध्य रेखा पर टिके-बसे सूरीनाम देश की जमीन को बादल दिन में कई बार नहलाते-धुलाते हैं। सूर्य ताप से तपता अटलांटिक महासागर हमेशा बादलों के छल्ले धुएँ की तरह निकालता रहता है। आकाश में सितारों की जगमगाहट है तो धरती पर जुगनुओं की जगमगाहट है। यहां की वसुंधरा की उर्वरा शक्ति को देखकर ऐसा लगता है कि मेघ नित्य अमृत-वर्षा करते हैं। सूरीनाम की किशोर, चंचल, खिलंदड़ी हवाओं में छुपा वसन्त देश का पोषण कर रहा है। हाथों की पहुंच में फल आ जाते हैं। मुसम्मी, संतरा, केला, पपीता, बादाम, काजू, नारियल, सुपारी और आमों की बारहों महीनों बहार रहती है। आम की मंजरी और फल एक साथ वृक्षों पर दिखाई देते हैं। भारत भूमि के भिन्न-भिन्न प्रांतों में फलने-फूलने वाले फल-फूल सूरीनाम देश की वसुन्धरा में सहज ही दिख जाते हैं।

मिस्टर डी. क्लार्क ने सन् 1953 में लिखी अपनी पुस्तक के 48-49 पृष्ठ पर उल्लेख किया है कि, ''जब उन्होंने पारामारिबो के रजिस्ट्रेशन कार्यालय में आए हुए भारतीयों की सूची की जांच की तो पाया कि 80 प्रतिशत आप्रवासियों का आगमन उत्तर प्रदेश और बिहार से है। शर्त बंदी प्रथा समाप्त होने के बाद 66 प्रतिशत आप्रवासी भारतीयों ने सूरीनाम को अपनी मातृभूमि मानकर वही बस जाना स्वीकार कर लिया। इनके पास अपने-अपने जिलों की उपभाषाएं और बोलियां थीं, जिसमें संस्कृत, उर्दू के अतिरिक्त भोजपुरी, अवधी, प्राचीन अवधी, रामचरितमानस की अवधी, हिन्दी, हिन्दुस्तानी, बाजारी हिन्दी, मगही और मैथिली प्रमुख

भारतीय मजदूरों और किसानों के साथ आई कहानियाँ, किस्से और लोकगीत ही मुख्य रूप से हिन्दी साहित्य की थाती थी जो वांचिक परंपराओं परम्परा से चलती रही। इसी तरह से राम लीला और रासलीला का प्रचलन 1920 से प्रारंभ हुआ। इनके लिए भारत से मंगवाई गई पुस्तकों की भाषा का उपयोग किया जाता था। 1918 ई. के बाद धार्मिक सत्संगों में हिस्सा लेने वाले प्रचारकों के द्वारा पर्चे लिखे जाते थे। सन् 1940 के बाद आर्यसमाज, सारामाक्का के हिन्दी कार्यकर्ताओं द्वारा साइकलो स्टाइल पर्चे वितरित किए जाते थे। टंकण और मुद्रण यंत्रों के अभाव के कारण हिंदी का विकास तीव्र गति से नहीं हो पा रहा था।

हैं। अपनी अस्मिता को बनाते हुए और अस्तित्व को बचाते हुए अप्रवासियों की हिन्दुस्तानी बोली-बानी ने अपनी तरह से सरनामी भाषा का आकार ग्रहण किया। कुछ समय के बाद ब्रज बोलने वालों का समूह लुप्त हो गया। भोजपुरी, मगही और अवधी का प्राधान्य बढ़ गया। आगे चलकर इसी ने 'सरनामी हिन्दी' या 'सरनामी भाषा' का स्वरूप ग्रहण किया। 1978 में श्री मार्दे ने कोलोनियल ओपनिवेशक रिपोर्ट, 1885 का अध्ययन करते हुए एक घटना का उल्लेख किया कि जब कमांडर ने अपने सिपाहियों को बंदूक भरने का आदेश दिया तो दो कुली नेता चुनौती देते हुए चीखे कि - आवा 'Come on' बहुत मारा 'Let them have it'। ये शब्द सूरीनामी शर्तबंदी भारतीय मजदूर के प्रथम रिकॉर्ड किए हुए शब्द हैं। श्री अवतार की ऑखिन देखी साक्ष्य के अनुसार सन् 1913 के जहाज से जैसे ही प्रताप नाम का युवा उतरा, उसने व्यथा से भरकर कहा - पगला समुंद्रा वह अपने साथ भारत से चटनी की बोतल लाया था, जिसे एक दिन किसी ने चुरा लिया। इसके लिए प्रताप ने हंगामा खड़ा कर दिया तो किसी ने कहा कि- ई सारा, गुस्सा दिखावे हे, सारे चुल्लू भर पानी में डूब मर। उसी शाम सूरीनाम नदी की रेलिंग पर खड़ा होकर चिल्लाया- ''बाबू लोग, अब प्रताप जा रहा है।'' यह सब हिन्दुस्तानी बोली बानी के जीवित उदाहरण है। इसके अतिरिक्त पारंपरिक गीत, धार्मिक गीत और लोकगीतों में इन्हीं अवधी, भोजपुरी के उदाहरण मिलेंगे। पूर्वी भारतीय इसे हिन्दुस्तानी कहते हैं और डच इसे हिन्दुस्तान पुकारते हैं, जिसे आगे चलकर श्री जे. एच. ज्ञानाधीन ने 1964 ई. में सरनामी नाम प्रदान किया जिसके ब्रोशों में लिखा था- **'The Roman spelling of Sarnam East Indian— Hinustani.'**।

सन् 1960 ई. में क्रियोल दल द्वारा जब 'एक समाज, एक राष्ट्र और एक भविष्य' की आवाज उठायी गई तो उसी के साथ एक 'राष्ट्रीय भाषा' का नारा बुलंद हुआ। ऐसे में कानून विद और भाषा वैज्ञानिक जे. एस. अधीन द्वारा वेदांत दर्शन के आधार पर अनेकता में एकता के सूत्र को लेकर बहुभाषा को प्रधानता दी गई और 'सरनामी' को भी सूरीनाम की राष्ट्रीय भाषा होने की मान्यता मिली। पंडित सूर्य वीर ने अपनी पहल से देवनागरी लिपि में सरनामी मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया। डा. कवि जीत नाराइन ने नीदरलैंड से सरनामी भाषा की पत्रिका का प्रकाशन किया और 'का हाल' नाम से डा. दम्स्त्यैरव के साथ पाठ्य अभ्यास सामग्री तैयार की। डा. तेयो दम्स्त्यैरव 1985 के अनुसार 'सरनामी' ने शब्दावली और वर्तनी की दृष्टि से अपने को सूरीनाम देश की बहुसंस्कृति और बहुभाषा से प्रभावित होकर इतना अधिक परिवर्तित किया कि इसे हिन्दुस्तानी सरनामी या सरनामी हिन्दुस्तानी कहने से अधिक बेहतर और उचित होगा केवल 'सरनामी पुकारना'। सूरीनाम देश में 'सरनामी' हिन्दी की मात्र एक बोली भर नहीं है। बल्कि एक पूर्णरूपेण समर्थ भाषा भी है।

सन् 1953 ई. में अधीन ने हिन्दी-डच शब्दकोश का निर्माण किया, जिसकी भूमिका में उन्होंने लिखा था - सूरीनामी जनसंख्या के एक बड़े भाग की मातृभाषा हिन्दी है। डच सरकारी और राजकाज की भाषा है इसलिए एक ऐसे शब्दकोश की परम आवश्यकता है जिसमें हिन्दी शब्द 'देवनागरी' में लिखे हुए हो। आगे चलकर दस वर्षों बाद भाषाविद् अधीन ने 'सरनामी' के लिए 'रोमन लिपि' को मान्यता दी। शिक्षा मंत्रालय से इसे स्वीकृति भी प्राप्त हो गई। 2001 में ज्ञानाधीन जी से सरनामी और हिन्दी के नैकट्य के लिए मेरी उनके और पंडित हरदेव सहतू के साथ बैठकें हुई। मेरे प्रस्ताव से भाषाविद् ज्ञानाधीन जी के साथ यह सुनिश्चित हुआ कि सरनामी को देवनागरी लिपि में ही लिखा जाए जिससे सरनामी बोलने वालों के लिए हिन्दी पढ़ना और सीखना सहज होगा और वे हिंदी भाषा परिवार के सदस्य हो जाएंगे। इस संदर्भ में यह ध्यात्व्य और महत्वपूर्ण है कि सूरीनाम के हिन्दुस्तानियों ने अपनी भारतीय संस्कृति को जीवन प्रदान करने के लिए 'सरनामी' भाषा को ही व्यवहार में लाकर विकसित किया, जिससे आगामी पीढ़ियों के द्वारा 'सरनामी' भाषा के प्रयोग से हिन्दुस्तानी भाषा और भारतीय संस्कृति के गुणसूत्र विकसित होते रहेंगे।

मार्तिन लक्ष्मण हरिदत्त श्री निवासी, जीत नाराइन, महादेव खुनखुन, मुंशी रहमान खान, चंद्रमोहन, अमर सिंह, रमणश्री, ब्रीस महावीर, श्री राम नारायण झा, पंडित रामदेव रघुवीर आदि सूरीनाम के प्रसिद्ध सरनामी के महत्वपूर्ण कवि हैं, जिन्होंने हिन्दी में भी कविताएं लिखी हैं। रविंद्र बलदेव सिंह, चित्रा गयादीन, चांदनी, राजमोहन, रामदास हॉलैंड में सरनामी के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं,

जिनकी रचनाओं में पुरखों के संघर्ष का अर्तनाद और हिन्दुस्तान देश से बिछुड़ने के दर्द का करुण क्रंदन है। इसमें से बलदेव सिंह, राजमोहन और जीत नाराइन सरनामी के प्रसिद्ध गीतकार हैं जो पूरे भाव से अपने गीत गाते हैं। भारतीय लोक संस्कृति के गुणसूत्र होने के बावजूद यह भारतीय हिन्दी बोलियों की लोकगीतों की तर्ज से बिल्कुल अलग है और वह इस कारण भी कि यूरोपीय जीवन, साहित्य, संस्कृति के पर्यावरण और माहौल के अनुकूल इन्होंने अपनी काक-कला को आधुनिक गीत कौशल के साथ आधुनिक पाश्चात्य वाद्य यंत्रों के बीच उसी के समानान्तर प्रतिष्ठा के साथ विकसित किया है। इसलिए इनकी कविताएं और गीत वैशिष्ट्य हैं और 'विश्व कविता' के आयोजन में हिन्दी और हिन्दी भाषा परिवार की बोलियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारत की जगह सूरीनाम देश से आमंत्रित किया जाता है। वहां वे भारत से बाहर विकसित हो रही हिन्दी भाषा परिवार की बोलियों हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं।

भाषा व्यक्ति के हृदय पर अभिव्यक्ति के लिए उगी हुई फसल है, जिससे प्रतिभा की भूख मिट सके और संस्कारों को पोषण मिल सके। सरनामी और हिन्दी भाषा ने सूरीनाम में हिन्दुस्तानी संस्कृति की रक्षा की है। पुरखों द्वारा लाई, बचाई और चलाई गई भाषा ने भारतीय संस्कृति की सुरक्षा की। जीवन मूल्य, परम्पराएं, धर्म, रीति-रिवाज, लोकगीत, लोककथाएं, किस्सा जो उनके प्रवासी पूर्वज अपने साथ लेकर आए थे, उस संस्कृति को भारतवंशियों ने पर्याप्त मात्रा में आज तक सुरक्षित रखा है। दक्षिण अमेरिका और कैरिबियाई देशों में सूरीनाम देश इसी कारण से भारतीयता का ज्योति-स्तंभ बना हुआ है। तुलसीदास, सूरीनाम के हिंदू जन-मानस के शंकराचार्य बने और कबीर ने निर्गुण उपासना के रास्ते दिखाए और दोनों ने अभिव्यक्ति के लिए सहज सरल भाषा के मानवीय संवेदनशील गुण सिखाए।

तुलसी और कबीर की भाषा अपने जन-मानस के सामूहिक सांस्कृतिक संस्कार के कारण अपने संवेदनशील वैशिष्ट्य के कारण सुरक्षित है। इन कवियों ने कालजयी संप्रेषण में समर्थ शब्द भाषा का अन्वेषण किया है, भारतीय संस्कृति के अनुकूल मानवीय मूल्य जनित शब्द-संपदा की सृष्टि की, जो सूरीनाम के हिन्दुस्तानियों के संवेदनशील चित्र की शक्ति बन सकी।

सूरीनाम के अपसंस्कृति के कोलाहल में गोस्वामी तुलसीदास जी भारतीय संस्कृति की विवेक परंपरा की धूरी हैं। वे परिवार और रिश्तों के उद्बोधन के रचनाकार हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार दायित्व और कर्तव्यबोध के व्याख्याता है। तुलसीदास ने परिवार के महत्व को, रिश्तों की सघनता को अत्यंत मार्मिक तरीके से उद्घाटित किया है, जिसका सूरीनामी हिन्दुस्तानी पूरी संवेदनशीलता के साथ पालन करते हैं। तुलसी और कबीर सृष्टा और दृष्टा दोनों ही थे। वे भाषा और समाज की नाड़ी पहचानते थे। यही कारण है कि छह सौ से अधिक वर्ष व्यतीत होने पर भी भारत और भारतवंशी बहुत देशों में भारतीय संस्कृति के प्रणेता बने हुए हैं और गहरे अर्थों में वे ही भारतीय संस्कृति के मूल वंशज हैं। वे सच्चे अर्थों में भारतीय जनमानस, जन संस्कृति और जनमानस के जनकवि थे। जिसका प्रभाव सूरीनाम की हिन्दुस्तानी भाषा और साहित्यकारों में स्पष्ट दिखाई देता है। भारत से गए हुए हिन्दुस्तानी जीविका से मजदूरी करते हुए, जीवन से मुक्ति के लिए ईश्वर के मुखापेशी हो गए थे। दासता ने हृदय में भक्ति और अपनी मातृभूमि के संस्कार जगाए। बीजक, मानस और गीता के गुटकों ने संजीवनी शक्ति और आत्मविश्वास का संचार किया।

भारतीय मजदूरों और किसानों के साथ आई कहानियाँ, किस्से और लोकगीत ही मुख्य रूप से हिन्दी साहित्य की थाती थी जो वांचिक परंपराओं परम्परा से चलती रही। इसी तरह से राम लीला और रासलीला का प्रचलन 1920 से प्रारंभ हुआ। इनके लिए भारत से मंगवाई गई पुस्तकों की भाषा का उपयोग किया जाता था। 1918 ई. के बाद धार्मिक सत्संगों में हिस्सा लेने वाले प्रचारकों के द्वारा पर्चे लिखे जाते थे। सन् 1940 के बाद आर्यसमाज, सारामाक्का के हिन्दी कार्यकर्ताओं द्वारा साइकलो स्टाइल पर्चे वितरित किए जाते थे। टंकण और मुद्रण यंत्रों के अभाव के कारण हिंदी का विकास तीव्र गति से नहीं हो पा रहा था। पंडित लक्ष्मी प्रसाद बलदेव ने

'सत्यदर्शक' पुस्तक लिखी जिसकी पाँच सौ प्रतियाँ प्रकाशित हुई। इन्होंने 'बग्घा' के नाम से भी साहित्य सेवा की। सूरीनाम देश की आजादी के बाद निबंध एवं आलेख लिखने में प्रगति हुई। सूरीनाम के लेखकों को प्रायः तीन भाषाओं से नियमित गुजरना पड़ता है - डच, सरनामी एवं सरल हिंदी। 'सरस्वती' नाम से एक प्रकाशन संस्था ने प्रकाशन का कार्य प्रारंभ किया है लेकिन वह असाध्य स्तर तक महंगी है। यदि किसी दानवीर की मदद से प्रकाशित भी हो जाए तो उसको पढ़ने वाली आबादी पाँच प्रतिशत भी नहीं मिलेगी।

सूरीनाम तथा आसपास के देशों में भारतीय संस्कृति के सम्यक योगदान और उत्थान के लिए श्री लक्ष्मण सिंह के नेतृत्व में मोती माढे और अन्य लोगों ने नवयुग संस्था के साथ-साथ माता गौरी संस्थान और सूरीनाम हिन्दी परिषद का गठन किया। माता गौरी संस्थान सांस्कृतिक और सामाजिक आयोजनों का काम कर रही है। सूरीनाम हिन्दी परिषद संपूर्ण देश में सूरीनाम सरकार के सहयोग से हिन्दी भाषा की परीक्षाएं करवाते हुए भाषा प्रचार में लगी हुई है और विद्यानिवास सूरीनाम साहित्य संस्थान नाम से परिषद की एक शाखा हिन्दी के साहित्य का प्रचार करने में संलग्न है। श्री मंगल प्रसाद, श्री लक्ष्मी प्रकाश मल्हू, महादेव खुनखुन, सुरजन परोही, रामदेव रघुवीर हरदेव सहतू ने हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। श्रीमती सुशीला मल्हू सहित उनके समकालीनों ने हिन्दी और भारतीय संस्कृति की सेवा की और कर रहे थे। सभी हर घर में, घर के हर मन में, भाषा के माध्यम से धर्म और संस्कृति का झंडा लगा रहे हैं।

सन् 1975 ई. में सूरीनाम देश के स्वतंत्र राष्ट्र घोषित होने के बाद अनेक धर्मनिष्ठ हिन्दुस्तानी नीदरलैंड आ बसे और सरनामी हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने लगे और शेष हिन्दुस्तानी सूरीनाम में रहते हुए भारतीय संस्कृति का प्रचार करने लगे सूरीनाम देश में दो तरह के उपासकों के द्वारा भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषा का प्रचार करने लगे। देवी सरस्वती के उपासकों की दो कोटियाँ होती हैं। राष्ट्र और कला के उपासक भक्त अपनी ज्ञानात्मक संवेदना द्वारा सरस्वती की साधना में अपने कृतित्व का फल अर्पित करते हैं। दूसरे श्रम द्वारा अर्जित पूँजी को, धन संपत्ति को, कला साहित्य-संस्कृति प्रेमी जनों पर अर्पित करने वालों की एक महान परंपरा देश में रही है।

मैंने परामारिबो, भारतीय दूतावास में प्रथम सचिव और भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में 2001 में पहुंचने के बाद हिन्दुस्तानियों के इसी भाषायी प्रेम का सम्मान करते हुए 'साहित्य मित्र संस्था' और 'विद्या निवास सूरीनाम साहित्य संस्था' की स्थापना की। सूरीनाम हिंदी परिषद के अध्यक्ष श्री जानकी प्रसाद सिंह की चाहत से परिषद का आज जहां भवन है उस पथ का नाम 'हिन्दी लान' रखवाने में सहायता की और सूरीनाम के सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के दौरान पाँच जून को तत्कालीन विदेश राज्य मंत्री स्वर्गीय दिग्विजय सिंह और सूरीनाम की विदेश मंत्री के द्वारा उस रास्ते का अनावरण हुआ। सूरीनाम के हिन्दुस्तानियों के हिन्दी भाषायी और सांस्कृतिक प्रेम से वशीभूत मेरे द्वारा संपादित कथा सूरीनाम, कविता सूरीनाम का सात जून 2023 को देश के उपराष्ट्रपति के द्वारा लोकार्पण हुआ। इसके साथ ही मेरे द्वारा सूरीनाम पर लिखे और देश-विदेश की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित आलेखों की सूरीनाम शीर्षक से पुस्तक लोकार्पित हुई। 2012 में मेरे द्वारा संपादित 'सूरीनाम का सृजनात्मक साहित्य' शीर्षक से साहित्य अकादमी से पुस्तक प्रकाशित हुई। 2010 में नेशनल बुक ट्रस्ट से 'सूरीनाम' देश के सांस्कृतिक अस्तित्व को हिंदी की दुनिया में स्थापित करते हुए 'सूरीनाम' शीर्षक से पुस्तक प्रकाश में आई।

डा. लोथार लुत्से कहा करते थे कि 'हिंदी सीखे बिना भारतीयों के दिलों तक नहीं पहुंचा जा सकता है।' यही सत्य सूरीनाम हिन्दुस्तानियों के साथ है। हिन्दुस्तानियों का जीवन संस्कृति को लेकर 'कन्ताकि बागान' और 'केती-कोती' शीर्षक से कहानी

सूरीनाम के अपसंस्कृति के कोलाहल में गोस्वामी तुलसीदास जी भारतीय संस्कृति की विवेक परंपरा की धूरी हैं। वे परिवार और रिश्तों के उद्बोधन के रचनाकार हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार दायित्व और कर्तव्यबोध के व्याख्याता है। तुलसीदास ने परिवार के महत्व को, रिश्तों की सघनता को अत्यंत मार्मिक तरीके से उद्घाटित किया है, जिसका सूरीनामी हिन्दुस्तानी पूरी संवेदनशीलता के साथ पालन करते हैं। तुलसी और कबीर सृष्टा और दृष्टा दोनों ही थे। वे भाषा और समाज की नाड़ी पहचानते थे। यही कारण है कि छह सौ से अधिक वर्ष व्यतीत होने पर भी भारत और भारतवंशी बहुत देशों में भारतीय संस्कृति के प्रणेता बने हुए हैं और गहरे अर्थों में वे ही भारतीय संस्कृति के मूल वंशज हैं।

संग्रह मेरे द्वारा प्रकाशित हुए हैं। साथ ही सूरीनाम हिन्दुस्तानियों के सूरीनाम देश और नीदरलैंड में सांस्कृतिक संघर्ष को लेकर संवेदनशील दस्तावेजी 'छिन्नमूल' उपन्यास लिखा है जो इस विषय का किसी भी भाषा में पहला उपन्यास है। जिसका 2020 में उई अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। इस वर्ष सूरीनाम हिन्दुस्तानियों के डेढ़ सौ वर्ष पूरे होने के सम्मान में डायमंड प्रकाशन ने 'सेपरेटेड इमोशंस' नाम से अंग्रेजी में पुस्तक प्रकाशित की है।

सारतः आप्रवासी भारतीयों और भारतवंशियों के दर्दनाक जीवन के संपूर्ण संघर्ष बीच संस्कृति और साहित्य उनके अपने तपोबल से बची हुई है, जिसको उनकी नई पीढ़ियों में इसका प्रकाश दिखायी देता है। इनकी सांस्कृतिक साहित्य साधना को सरनामी और हिन्दी के आधार पर अलगाया नहीं जा सकता है। दोनों की संवेदना और अनुभूति का आधार भारतीय संस्कृति और उनके हृदय की भारतीयता है। हिन्दी और सरनामी दोनों ही हिन्दुस्तान की और इनके अपने पुरखों की देन है। यहाँ की पत्रकारिता का इतिहास न बहुत पुराना है और न ही बहुत आधुनिक है। हिन्दुत्व का प्रवाह सूरीनाम में सनातन धर्म और आर्य समाज के रूप में बंटा हुआ है। सनातनी मूर्ति पूजा के समर्थक हैं, लेकिन आर्य समाजी नहीं। वे वैदिक पूजा को महत्व देते हैं। सत्संग, पूजा-पाठ का अधिकार सबको है। हर एक हिन्दू अपने धर्म की इज्जत करता है। और दूसरे धर्मों को भी सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। 'आर्य दिवाकर' संदेश नाम से डच और हिन्दी भाषा में पत्रिका निकलती है।

आर्य समाजी लोगों के वार्षिक अधिवेशन होते हैं, कार्यशालाएँ होती हैं। खानपान और रहन-सहन के स्तर पर भारतीय संस्कृति का प्रचार किया जाता है, जिसके लिए मन्दिर केंद्र में होते हैं। यह भारतीय संस्कृति के उपासक हैं, जिसे हिन्दुस्तानी संस्कृति के रूप में पहचानते हैं, और स्वयं को हिंदुस्तानी कहलाए जाना पसन्द करते हैं।

यूरोप और कैरिबियाई देशों में ख्याति प्राप्त हिन्दुस्तानी चित्रकार हैं - आनंद वृंदा और रामजीवन सिंह। इसके साथ-साथ प्रसिद्ध कवि हैं - मार्तिन हरिदत्त लक्ष्मण श्रीनिवासी, जीत नाराइन, जेम्स् रामलाल भाई। इनके अतिरिक्त स्थानीय रूप से प्रसिद्ध कवि हैं - हरदेव सहतू, सुरजन परोही, श्रीमती सुशीला, अमर सिंह रमण, बिहारी लाल कल्लू, तेज प्रसाद खेदु, निधान सिंह आदि। इसके साथ-साथ में हस्ताक्षरों में श्रीमती संध्या भग्गु, कृष्णा भिखारी, रोशनी अयोध्या, संचिता, अमित अयोध्या, सुशील बीरबल, देवानंद शिवराज, मर्लेना गंगाराम, डा. कार्मन जगलाल, रामदेव महावीर, निशा झाकरी, कंधई धीरज कुमार, मोहन सुमेर, आनंद लालता, तारावती बिरजा, विरजानंद अवतार आदि हिन्दी भाषा के लेखक और प्रचारक हैं। शिनाफूँग यहां के प्रसिद्ध फोटोग्राफर हैं। संगीतकार कृष रामखेलावन यहां के ही नहीं यूरोप, अमेरिका आदि कई देशों में गजल, कव्वाली और लोकगीतों के लिए प्रसिद्ध है। माइकल स्लोरी, लेविस वन्दल, वाग्लोई सिंग प्रसिद्ध नीग्रो कवि है। जोहाना फाउटन, एलसन हाउल, जॉन फोरहुक प्रसिद्ध लेखक हैं। एरबिन डफरीन यहां के प्रसिद्ध मूर्तिकार और कलाकार है।

सूरीनाम की धरती पर अनेक ऐसे भारतवंशी हैं जिनके हृदय में भारत की संस्कृति और भारतीयों के प्रति तथा अथाह आदर एवं सम्मान की भावना है। भारत जाना उनके लिए तीर्थयात्रा के समान है। उनके सपनों का भारत सदैव उनके सपनों में रहता है।

सूरीनाम साहित्यकार, नीदरलैंड

भारतवंशी भाषा एवं संस्कृति की परिचायक पुस्तक

- डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी

प्रोफेसर पुष्पिता अवस्थी की यह रचना निर्बल एवं साधन विहीन समझे जाने वाले विवश एवं पराधीन भारतवंशियों की सांस्कृतिक एवं भाषाई जिजीविषा की अकथ गाथा है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। "भारतवंशी" उन भारतीयों एवं उनके वंशजों की संपूर्ण गाथा है जो 18वीं शताब्दी में हृदय पर पत्थर रखकर भारी मन से सुखमय जीवन की चाह में मातृ- भू भारतभूमि का त्याग करने हेतु विवश हुए। विविध विभीषिकाओं से त्रस्त, परिश्रम के बावजूद भी अपनी आवश्यक आवश्यकता की पूर्ति में अक्षम इन भारतीयों की गाथा अत्यधिक कारुणिक है। विदेशी शासकों द्वारा इन्हें जहाजों में बोरियों की तरह भर भर कर मॉरीशस, सूरीनाम त्रिनिदाद एवं दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बंधुआ मजदूर के रुप में भेजा गया।

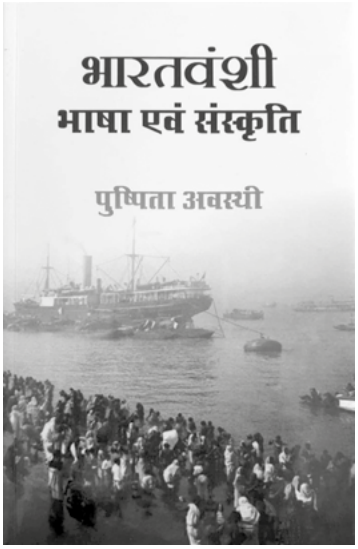

कम पढ़े लिखे गवार समझे जाने वाले इन भारतीयों के समक्ष गरीबी एवं बेबसी के अतिरिक्त जो सबसे बड़ी समस्या थी वह यह कि अपने विदेशी आकाओं की ज्यादतियों को सहते हुए अपनी सांस्कृतिक धार्मिक तथा भाषाई पहचान को कैसे अक्षुण्य बनाये रखा जाए। इस दृष्टि से इनकी अकथनीय गाथा अत्यंत मर्मस्पर्शी है। अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु सतत संघर्षशील भारतवंशियों के समक्ष अपनी भाषा एवं संस्कृति की रक्षा की समस्या थी। भारतीय किसान मजदूर जब भारत से मॉरीशस त्रिनिदाद दक्षिण अफ्रीका गुयाना सूरीनाम फ़िजी आदि देशों में पहुंचते हैं तो तो कस्टम की चेकिंग में इन भारतीय किसानों मजदूरों के पोटलियों में से फटी पुरानी रामचरितमानस, हनुमान चालीसा, गीता, निर्गुण, देवी देवताओं की स्तुतियाँ, लोकगीत, कजरी,भाग, बिरहा,चैती आदि गीतों की पुस्तकें मिलती थी। इन्हीं पुस्तकों ने सुदूर अफ्रीका में भारतवंशीयों के लिए संजीवनी सिद्ध हुआ तथा भारतीय संस्कृति को जिवंत बनाने में सहयोगी सिद्ध हुआ। डॉ. पुष्पिता अवस्थी जी ने अपनी श्रेष्ठतम रचना भारतवंशी - भाषा एवं संस्कृति के माध्यम से अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए जूझते अपने अस्तित्व रक्षा के लिए जूझते संघर्षरत भारतवंशियों की जिस जिस विषय का वर्णन किया है वहीं की चमत्कृत लेखन शैली का चरम विलास है।

उपनिवेशवाद विस्थापन तथा शोषण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रची गई यह पुस्तक भारतवंशियों के लिए बहुमूल्य धरोहर से कमतर नहीं है। डॉ. पुष्पिता अवस्थी जी ने इस ग्रंथ में भारतवंशियों की समस्याओं का अवलोकन अत्यंत सहानुभूति पूर्ण हृदय से किया है। भारतवंशियों की वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ आगामी पीढ़ियों के लिए भी यह ग्रन्थ प्रेरणादायक बना रहेगा। मनोभाव के प्रकटीकरण एवं पुनरावलोकन में भी इनकी दृष्टि खूब ही रमी है। इस ग्रंथ में वस्तु विषय का तथ्य पूर्ण सर्वांग विश्लेषण अत्यंत मनमोहक है।। डॉ. पुष्पिता जी द्वारा दर्शित तथा रचित भारतवंशी नामक इस ग्रंथ के प्रारंभ में बीजक के रूप में भूमिका तथा अंत में परिशिष्ट के मध्य निम्न तीन खंडों में विषय वस्तु का सन्निवेश किया गया है –

1. भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में हिंदी संस्कृति
2. संस्कृति का संस्मरणात्मक सरोवर, एवं
3. भारतवंशी - भाषा साहित्य एवं पत्रकारिता

इस ग्रंथ में वास्तु विषय का सारगर्भित अवलोकन अत्यंत चारुता युक्त तथा मर्मस्पर्शी है। लेखिका की विद्वतापूर्ण लेखन शैली गरिमामयी है। वस्तु विन्यास एवं तथ्यपूर्ण कथन की अपूर्व शैली भी महिमामंडित है। भाषा की भाव प्रवीणता हो या सहज शब्दों की सुबोध सुगम्यता, सुरम्य अलंकारों की सुन्दर छवि हो या माधुर्यादिगुणों की सरस अभिव्यक्ति, शब्द सामर्थ्य की ऊंची उड़ान या भावों की भव्यता, सर्वत्र लेखिका की दृष्टि शोध पूर्ण औत्सुक्य से युक्त रही है। भारतवंशी में प्रदर्शित सहज भाव भंगिमा लेखिका के अद्भुत लेखन चातुर्य की सहज अभिव्यक्ति है। डॉ. पुष्पिता जी के रसप्लावित हृदय से निःसरित निर्झरी सहृदय पाठकों को आनन्द –विभोर करने वाली है। भारतवंशी के अवगाहन में आमग्न पाठक इस ग्रंथ के संपूर्ण परायण के बिना विश्रांति की प्राप्ति कर ही नहीं सकता, ऐसा मेरा स्पष्ट सुविचरित अभिमत है। वस्तुतः यह ग्रंथ सत्यम शिवम सुंदरम का मंजूल समन्वय है। डॉ. पुष्पिता जी के इस पुस्तक के माध्यम से भारतीय संस्कृति की वैश्विकता को पुनर्भाषित करने का सफल एवं सार्थक प्रयास किया है जिससे भारतीय संस्कृति निश्चित रूप से समृद्ध होगी।

असिस्टेंट प्रोफेसर (भारत अध्ययन)
क्वान्तोंग विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, चीन

कजाखस्तान और भारत में शांति और सद्भाव

– जेनार केसिमोवा

"भारत विभिन्न आस्थाओं और सद्भाव का पालना है। भारतीय धार्मिक परंपरा अहिंसा सिखाती है, जिसका अर्थ है दूसरों को नुकसान नहीं पहुंचाना। भारत में अहिंसा की प्रथा तथा अहिंसा और करुणा का अभ्यास 3000 वर्षों से अधिक समय से किया जाता रहा है। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म के रूप में भारतीय धार्मिक परंपराओं का जन्म उस स्थान में हुआ था और अभी भी कई विश्वासियों और अनुयायियों का जन्म हुआ है। अतः भारत विश्व में धार्मिक सौहार्द के लिए एक उत्कृष्ट उदाहरण और आदर्श देश है। लगातार बढ़ती अर्थव्यवस्था और बहुजातीय आबादी वाले युवा स्वतंत्र राज्य के रूप में कजाखस्तान भी समाज में अंतरजातीय और आस्थाओं के मध्य सद्भाव के मुद्दे पर बहुत ध्यान देता है। कजाख लोगों की आध्यात्मिक संस्कृति का आधार शांति, सद्भाव और न्याय की इच्छा है।"

काममया एवायं पुरुष इति
सा यथाकामो भवति तत्क्रतुर भवति
यात्क्रतुर भवति तत कर्म कुरुते
यत कर्म कुरुते तद अभिसम पद्यते।। बृहदारण्यक उपनिषद् 4.4.5

कजाखस्तान और भारत दोनों ही बहुजातीय और बहु-धार्मिक राज्य हैं। दोनों देशों में अनेक प्रकार के समुदाय, धर्म, परंपराएं और रीति-रिवाज एक साथ मेल-जोल रखते हैं, जो निश्चित रूप से राज्य की शांति-व्यवस्था की नीति को भी प्रभावित करते हैं।

भारत विभिन्न आस्थाओं और सद्भाव का पालना है। भारतीय धार्मिक परंपरा अहिंसा सिखाती है, जिसका अर्थ है दूसरों को नुकसान नहीं पहुंचाना। भारत में अहिंसा की प्रथा तथा अहिंसा और करुणा का अभ्यास 3000 वर्षों से अधिक समय से किया जाता रहा है। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म के रूप में भारतीय धार्मिक परंपराओं का जन्म उस स्थान में हुआ था और अभी भी कई विश्वासियों और अनुयायियों का जन्म हुआ है। अतः भारत में इस्लाम, ईसाई, यहूदी और पारसी आदि विश्व की भिन्न-भिन्न धार्मिक परंपराएं साथ-साथ रहती हैं। भारत विश्व में धार्मिक सौहार्द के लिए एक उत्कृष्ट उदाहरण और आदर्श देश है। भारतीय संविधान द्वारा सभी धर्मों की समानता की स्थापना मजबूती से की गई।

लगातार बढ़ती अर्थव्यवस्था और बहुजातीय आबादी वाले युवा स्वतंत्र राज्य के रूप में कजाखस्तान भी समाज में अंतरजातीय और आस्थाओं के मध्य सद्भाव के मुद्दे पर बहुत ध्यान देता है। कजाख लोगों की आध्यात्मिक संस्कृति का आधार शांति, सद्भाव और न्याय की इच्छा है। मेधावी कजाख विचारक अबई ने कहा- "मनुष्य मनुष्य का मित्र है, क्योंकि जीवन में सब कुछ - जन्म, परवरिश, भूख, दुख, दुःख की भावना, मानव शरीर की आकृति, जिस तरह से आप दुनिया में आते हैं और जिस तरह से आप इसे छोड़ते हैं - हर किसी के लिए सब कुछ एक जैसा ही होता है।"

जैसा कि ज्ञात है, तीसरी सहस्राब्दी के आरम्भ में स्वतंत्र और धर्मनिरपेक्ष कजाखस्तान जिम्मेदारी संभालने वाले अंतर्राष्ट्रीय कानून के विषयों का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था और उसने दुनिया और पारंपरिक धर्मों के नेताओं के बीच एक वैश्विक वार्ता को गंभीरता और जिम्मेदारी से बढ़ावा दिया। सामाजिक प्रथाओं के द्वारा ही इसकी सुविधा प्रदान की गयी और इससे उत्पन्न नयी वास्तविकताओं को, जिसके लिए धार्मिक पुनर्जागरण को मान्यता देने की आवश्यकता थी और धार्मिक कारक के गौण प्रयोग के रूप में, समूह, सामाजिक या अन्य हितों के अधीनस्थ होने की आवश्यकता थी। इस कठिन अवधि के दौरान, कजाखस्तान ने अपनी घरेलू नीति के तीन मुख्य स्थिरांक तैयार किए - शांति, सद्भाव और चकबंदी।

अत्यधिक क्षमता और अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा वाले संप्रभु राज्य के रूप में विदेश नीति में बने रहने के प्रयास में, आर्थिक शक्ति, सांस्कृतिक परंपरा, वैज्ञानिक विचार के कारण, कजाखस्तान ने विश्व सभ्यताओं के बीच अपना रास्ता बनाया है, जहां विभिन्न प्रमुख धर्म, बाहरी केंद्र और क्षेत्रीय हित एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

आधुनिक कजाख रियासत के संस्थापक नूर सुल्तान नजरबायेव का वैश्विक नवाचार, विश्व और पारंपरिक धर्मों के नेताओं की कांग्रेस का अनूठा प्रारूप है, जिसे समग्र सभ्य जगत ने संवाद और सहयोग के लिए एक अनोखे मंच के रूप में मान्यता दी है।

उस ऐतिहासिक समय से 20 वर्ष बीत चुके हैं, जब स्वतंत्र कजाखस्तान की युवा राजधानी यूरेशियाई महाद्वीप के हृदय में स्थित - अस्ताना शहर में 23-24 सितम्बर 2003 को विश्व और पारंपरिक धर्मों के नेताओं की पहली कांग्रेस हुई। यह मानव जाति के आधुनिक इतिहास में पहली बार ईसाई और इस्लाम, यहूदी और बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म, ताओ धर्म और शिंतोवाद का प्रतिनिधित्व करने वाले यूरोप, एशिया, मध्य पूर्व और अमेरिका के 17 प्रतिनिधिमंडलों को एक साथ लेकर आया। इसके अलावा, सहभागियों में धार्मिक समुदायों के वे प्रमुख भी थे, जो कई वर्षों के विरोधाभासों के कारण पहले अन्य स्वीकृति के साथ बातचीत की संभावना को अस्वीकार कर चुके थे।

पहली कांग्रेस कठिन माहौल में आयोजित की गई, हमारे राज्य के प्रमुख के साथ अलग-अलग बैठकों के दौरान धर्मगुरुओं ने एक-दूसरे के प्रति दावे व्यक्त किए, जिससे स्पष्ट रूप से हमारे समय की सबसे विकट समस्याओं पर आम राय न बन पाने का संकेत मिला। ऐसे विरोधाभासों को राज्यों के बीच राजनीतिक समस्याओं से भड़का दिया गया। समय के साथ, सहभागियों के बीच राज्यों के बीच राजनीतिक अंतर्विरोधों के संदर्भ के बाहर अंतर्धार्मिक संवाद जारी रखने के महत्व की समझ विकसित हुई। कांग्रेस के दस्तावेजों और प्रतिभागियों के भाषणों में जिस उच्च विचार-विमर्श की झलक मिली, उसका अर्थ है, उसमें निहित बयानों के प्रति परस्पर सम्मान।

इस तरह के अधिकृत अंतर्धार्मिक मंच के लिए स्थान के रूप में अस्ताना शहर का चुनाव आकस्मिक नहीं था। सबसे पहले, धर्मनिरपेक्ष कजाखस्तान की राजधानी आधुनिक युग में पहला शहर था जहाँ दुनिया और पारंपरिक धर्मों की आध्यात्मिक और नैतिक क्षमता का इस्तेमाल करने के लिए अंतरराष्ट्रीय संघर्ष, वैश्विक खतरों का सामना करने, विजातियों का विरोध और असहिष्णुता दूर करने के लिए एक सफल प्रयास किया गया।

दूसरे, ऐतिहासिक दृष्टि से कजाख भूमि, व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से एशिया और यूरोप के बीच एक तरह के सेतु का कार्य करती है। यह इस्लाम, पश्चिमी और पूर्वी संस्कृति के मूल्यों की सहजीविता थी जिसने कजाख सहिष्णुता को मूर्तिवंत किया, जो अंततः कजाखस्तान की पहचान बन गया। 21वीं सदी में सभी क्षेत्रों में परस्पर संवाद का कोई विकल्प नहीं है - राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक - और यह एक निर्विवाद स्वयंसिद्ध सत्य है जो वर्तमान समय में इस प्रकार के आयोजनों की प्रासंगिकता को दर्शाता है।

देशों, लोगों, धर्मों और मान्यताओं के बीच मानवीय संबंधों सहित अविश्वास पैदा करने के कई सारे कारण आज उपस्थित हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कारण हैं - वैश्विक सुरक्षा व्यवस्था, जाँच और संतुलन की अंतरराष्ट्रीय प्रणाली, अग्रणी राज्यों के बीच विश्वास के एक माहौल की हानि, वैश्विक अर्थव्यवस्था में प्रतिबंधों के दबाव में वृद्धि की विशेषता, कोविड-19 की पृष्ठभूमि के खिलाफ आज की तेजी और तेजी से बदलती दुनिया में, सैनिक और आंतरिक टकरावों की संख्या में वृद्धि, धमकी का उग्रवाद और अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का बदनाम करना आदि।

विकास के खतरे को विश्व और पारंपरिक धर्मों के नेताओं के कांग्रेस के प्रतिभागियों ने गहराई से महसूस किया है, जो अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा और विकास के एक नए प्रतिमान को विकसित करने के लिए व्यापक संवाद स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। यह समानता, परस्पर सम्मान, एक दूसरे के हितों की मान्यता, सहयोग, सहिष्णुता और आपसी समझ के सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए।

बड़े महत्त्व की बात यह है कि विश्व और पारंपरिक धर्मों के नेताओं के कांग्रेस के सहभागियों द्वारा अपनाए गए अंतरधार्मिक शिखर सम्मेलन के अंतिम दस्तावेज - अपील, घोषणाएं और वक्तव्य सभी धर्मों और जातीय समूहों के प्रतिनिधियों को शांतिपूर्ण संवाद, धर्मों से रचनात्मक सहयोग का आह्वान करते हैं। सांस्कृतिक और धार्मिक मतभेदों के आधार पर टकराव से बचने के लिए आह्वान करते हैं।

यही वजह है कि आज विश्व और पारंपरिक धर्मों के नेताओं की कांग्रेस जो कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पूर्व और पश्चिम के बीच एक अनोखे पुल के रूप में काम करती है, की मांग बढ़ी है। यह कांग्रेस विश्व के भाग्य और इसके संरक्षण में धर्मों की भूमिका के बारे में एक महत्वपूर्ण अंतरधार्मिक संवाद जारी रखने और स्पष्ट धार्मिक अधिस्वर, नव-नाजीवाद और विदेशियों से घृणा के साथ संघर्ष के प्रसार की पृष्ठभूमि, चरमपंथ और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई के विरोध में सुधार करने का एक मुद्दा बन चुकी है।

आज के युग के गंभीर और सामयिक मुद्दों पर दुनिया की एकता और आधुनिक दुनिया के परंपरागत धर्मों के बीच हठधर्मी मतभेद के बावजूद, इस कांग्रेस का आयोजन हमें एक विश्वास दिलाता है कि कई मुद्दे, निश्चित रूप से, उचित समझौते के माध्यम से हल किए जा सकते हैं और किए जाने चाहिए। वास्तव में, यह सभी सभ्य देशों के लिए भविष्य का कार्यक्रम है और सम्पूर्ण विश्व के लिए एक प्रकार का वैश्विक एजेंडा है।

कजाखस्तान में हिन्दी की शिक्षिका

एक खानाबदोश संस्कृति है कजाख

- जरीना अबिलमझिनोवा

> **खानाबदोश जीवन शैली, जो कजाख संस्कृति का आधार बन गई, ने कजाखस्तान के लोक शिल्प पर अपनी छाप छोड़ी। जगह-जगह यात्रा करते हुए, लोगों ने सड़क पर लंबे समय तक रहने के लिए आवश्यक सब कुछ बनाया। इसलिए कजाखस्तान के शिल्प के बीच, सबसे पहले वे वस्तुएं बनाई गईं जिन्होंने सड़क पर जीवित रहने और आराम पैदा करने में मदद की। उदाहरण के लिए, लकड़ी के साधन, घोड़ों की सवारी के लिए उपकरणों का निर्माण आदि। मैदान की कठोर जलवायु में, जहां यह गर्मियों में बहुत गर्म होता है और हवाओं के कारण सर्दियों में असहनीय ठंड होती है, कजाखों ने चमड़े, फर और जानवरों के ऊन से बने गर्म फर कोट और टोपी सिलाई के लिए शिल्प विकसित किए हैं। इसके अलावा, लोहार और गहने व्यापक रूप से फैले हुए थे।**

कजाख संस्कृति खानाबदोश लोगों के इतिहास का प्रतिबिंब है। हजारों वर्षों से, खानाबदोश जनजातियाँ कजाख जगह में रहती हैं, जिन्होंने अपनी अनोखी परंपराओं का निर्माण किया है और पड़ोसी लोगों और संस्कृतियों के साथ सहयोग किया है। 19-20वीं शताब्दियों में कई कजाख समुदायों ने अपनी खानाबदोश जीवन शैली को एक व्यवस्थित रूप से बदलना शुरू कर दिया। इस काल में कजाख लोगों के नए सांस्कृतिक पहलू विकसित हो रहे थे। आज कजाखस्तान की संस्कृति विभिन्न प्रकार की कला, परंपराओं की जिंदगियों का एक संग्रह है, जो खानाबदोश अतीत की भावना से ओत-प्रोत है।

घोड़े की सवारी करना खानाबदोश के जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिए कजाखस्तान में घुड़सवारी के विभिन्न प्रकार के खेल लंबे समय से लोकप्रिय हैं, जहां सवार अपने कौशल दिखा सकते हैं और साथ ही अपने शानदार घोड़े को दिखा सकते हैं। घुड़सवारी का सबसे लोकप्रिय खेल" कोकपर" है, जो अन्य मध्य एशियाई देशों में भी लोकप्रिय है। इस खेल में बकरे के शव के लिए दो दलों के बीच संघर्ष किया जाता है। इस खेल में बकरे के शव को एक झटके से जमीन से उठाना होता है और प्रतिद्वंद्वियों द्वारा छीने जाने से बचाते हुए सीमा रेखा के पार पहुँचाना होता है। इस खेल में भरपूर शारीरिक ताकत की आवश्यकता होती है। एक और लोकप्रिय खेल "अलमन बेगे" है। यह एक लंबी दूरी की घुड़दौड़ होती है। इसमें सामान्यतः 10, 20, 50 और 100 किलोमीटर तक की घुड़दौड़ की जाती है। नियमों के अनुसार यहां केवल स्थानीय घोड़ों की नस्लों का ही उपयोग किया जा सकता है।

कजाखस्तान की संस्कृति का विवरण राष्ट्रीय कजाख पोशाक का उल्लेख किए बिना पूरी नहीं होगा। आज कजाखस्तान में लोगों को पारंपरिक कजाख कपड़ों में, दूरदराज के क्षेत्रों को छोड़कर, या छुट्टियों पर देखना दुर्लभ है। लेकिन अतीत में, सभी वर्गों के प्रतिनिधि लगभग एक ही प्रकार के कपड़े पहनते थे, केवल सजावट की गुणवत्ता और विभिन्न आभूषणों की उपस्थिति में भिन्नता होती थी। कजाख पुरुषों की पोशाक में एक शापान (बेल्ट के साथ बागे) और एक शिरोभूषण होता है। महिलाओं की पोशाक में कपड़े और एक शादी की शिरोभूषण "सौकेले" होती है, जो एक बच्चे के जन्म के बाद, "किमेशेक" द्वारा प्रतिस्थापित की जाती है।

अपने इतिहास के लिए कजाखस्तान का संगीत तथा संस्कृति लोककथाओं पर आधारित थी और इसमें कोई संगीत के चिह्न नहीं थे। संगीत शिक्षक से छात्र तक, पीढ़ी से पीढ़ी तक अग्रसारित किया जाता था। 15-16वीं शताब्दी में कजाख संगीत शैली कुई का विकास हुआ। एक कजाख संगीतकार ने एक कजाख संगीत वाद्ययंत्र डोमबरा पर एक महाकाव्य की रचना की और महाकाव्यों, किंवदंतियों और परियों की कहानियां गाईं। कुया का सबसे प्रसिद्ध कलाकार दौलेटकेरी था।

कजाख मौखिक कला के बड़े प्रशंसक हैं। कजाख साहित्य और कविताएं हजारों वर्षों से मौखिक स्वरूप में ही अस्तित्व में रही हैं। विभिन्न किंवदंतियों और कहानियों को सदियों से कहा और सुना

जाता रहाहै। कजाख के सबसे प्रसिद्ध महाकाव्य " कोरकिट-अता" और "ओगुज़नाम" थे। कजाखस्तान में मध्य युग के कवियों ने आम तौर पर अपने कामों को डोंबरा या कोबीज़ (प्लक किए गए संगीत वाद्ययंत्र) की संगत में बताया और "एटिज" की पढ़ने में प्रतियोगिताओं का आयोजन किया। कजाखस्तान का लिखित साहित्य केवल 19वीं शताब्दी में बनाया गया था। अबाई कुनानबायेव उस समय के लेखकों में से एक हैं, जिनके बाद कजाखस्तान और अन्य देशों में बस्तियों, सड़कों, थिएटरों, स्कूलों और विश्वविद्यालयों का नाम आज रखा गया है।

खानाबदोश जीवन शैली, जो कजाख संस्कृति का आधार बन गई, ने कजाखस्तान के लोक शिल्प पर अपनी छाप छोड़ी। जगह-जगह यात्रा करते हुए, लोगों ने सड़क पर लंबे समय तक रहने के लिए आवश्यक सब कुछ बनाया। इसलिए कजाखस्तान के शिल्प के बीच, सबसे पहले वे वस्तुएं बनाई गईं जिन्होंने सड़क पर जीवित रहने और आराम पैदा करने में मदद की। उदाहरण के लिए, लकड़ी के साधन, घोड़ों की सवारी के लिए उपकरणों का निर्माण आदि। मैदान की कठोर जलवायु में, जहां यह गर्मियों में बहुत गर्म होता है और हवाओं के कारण सर्दियों में असहनीय ठंड होती है, कजाखों ने चमड़े, फर और जानवरों के ऊन से बने गर्म फर कोट और टोपी सिलाई के लिए शिल्प विकसित किए हैं। इसके अलावा, लोहार और गहने व्यापक रूप से फैले हुए थे।

कजाखस्तान की संस्कृति सफलतापूर्वक विश्व समुदाय में एकाकार हो जाती है और साथ ही अपनी लोक परंपराओं और रीति-रिवाजों को सावधानीपूर्वक संरक्षित भी करती है। पीढ़ी से पीढ़ी तक, पूर्वजों के जीवन का ज्ञान और दर्शन, जिन्होंने एक बार विशाल कजाख कदमों पर विजय प्राप्त की थी, अभी भी आगे बढ़ाई जाती है।

अल फराबी कजाख राष्ट्रीय विश्वविद्यालय

घोड़े की सवारी करना खानाबदोश के जीवन का अभिन्न अंग है। इसलिए कजाखस्तान में घुड़सवारी के विभिन्न प्रकार के खेल लंबे समय से लोकप्रिय हैं, जहां सवार अपने कौशल दिखा सकते हैं और साथ ही अपने शानदार घोड़े को दिखा सकते हैं। घुड़सवारी का सबसे लोकप्रिय खेल" कोकपर" है, जो अन्य मध्य एशियाई देशों में भी लोकप्रिय है। इस खेल में बकरे के शव के लिए दो दलों के बीच संघर्ष किया जाता है। इस खेल में बकरे के शव को एक झटके से जमीन से उठाना होता है और प्रतिद्वंद्वियों द्वारा छीने जाने से बचाते हुए सीमा रेखा के पार पहुँचाना होता है। इस खेल में भरपूर शारीरिक ताकत की आवश्यकता होती है।

बदलते विश्व में बदलता भारत

- अब्दुल्ला अली अलकुदारी

भारत को स्वतंत्र होने पर अपने दम पर खड़ा होना पड़ा और बाकी दुनिया के सामने अपनी स्वतंत्रता का प्रदर्शन किया। उस समय के अधिकांश राष्ट्र पश्चिमी देशों से प्रभावित थे। भले ही भारत कई क्षेत्रों में अत्यधिक विकसित संस्कृतियों के लिए जाना जाता है, लेकिन इसके लिए पश्चिमी विश्व व्यवस्था के नियमों को अपनाना बेहद कठिन था। फिर भी, यह उससे प्रभावित था। भारत ने इन बाहरी दबावों के बावजूद दुनिया में सबसे बड़ा लोकतंत्र बनने के लिए अपनी खुद की आर्थिक व्यवस्था बनाने के लिए काम किया। पूरे एशिया और शेष विश्व में, भारतीय संस्कृति, दर्शन, धार्मिक विश्वास और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व लंबे समय से चर्चा का विषय रहे हैं। भारतीय दीर्घकालीन परम्पराओं ने विश्व के लिए ज्ञान को प्रकट किया है।

समाज कितना भी उन्नत या अल्पविकसित क्यों न हो, परिवर्तन एक सार्वभौमिक विशेषता है। कोई भी समाज विकसित होना बंद नहीं करता। समाज वृद्धिशील या क्रांतिकारी परिवर्तन से गुजरता है या नहीं यह एक अलग मामला है। क्रांतिकारी परिवर्तन के दौर से गुजर रहा समाज अब वह नहीं रह सकता है जो एक बार कई संरचनाओं के प्रतिस्थापन के कारण था। यदि यह किसी अन्य सभ्यता के साथ विलीन हो जाता है। तो यह एक सबसिस्टम बन सकता है। एक जीव और एक जीवित मानव समुदाय दोनों कुछ मायनों में समानांतर हो सकते हैं। एक समाज एक जीवित वस्तु की तरह विकसित होता है। हालांकि इस प्रक्रिया के दौरान इसका स्वरूप बदल जाता है, लेकिन इसकी पहचान बरकरार रहती है।

किसी समाज की पहचान उसके आकार, जनसांख्यिकीय संरचना, या यहां तक कि भौगोलिक सीमाओं में परिवर्तन से अप्रभावित रहती है। समाज विकसित या सिकुड़ सकते हैं, अपनी जनसांख्यिकीय सीमाओं को बदल सकते हैं, या यहाँ तक कि स्थानांतरित भी हो सकते हैं। एक जीवित समाज समय के साथ सामाजिक और पर्यावरणीय वातावरण में परिवर्तन के साथ-साथ अपने व्यक्तियों के कार्यों से विकसित होता है। जब यूरोपीय लोगों ने भारत के समाज को "पारंपरिक" के रूप में संदर्भित किया, तो उनका अर्थ यह था कि यह एक ऐसा समाज था जो अपने रीति-रिवाजों का पालन करता था और परिवर्तन का विरोध करता था। लेकिन यह केवल कहानी का एक हिस्सा बताता है।

किसी समाज को परिवर्तन को केवल इसलिए अस्वीकार नहीं करना है क्योंकि वह किसी विशेष परिवर्तन को अस्वीकार करता है जो बाहर से थोपा गया है। इसके अपने सांस्कृतिक मापदंड हैं जो सभी प्रस्तुतियों का मूल्यांकन करते हैं और उन्हें स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करते हैं। इसी तरह, प्रत्येक समाज प्रस्थान की अनुमति देने या रोकने के लिए अपने निकास बिंदुओं पर बाधाएँ डालता है। इन्हें एक समाज के एपर्चर और इंसुलेटर के रूप में जाना जाता है। हर जीवित सभ्यता में परंपरा और आधुनिकता का मेल होता है।

सभी संस्कृतियों में, सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति और बढ़ते वैश्वीकरण द्वारा लाए गए त्वरित परिवर्तनों के बीच एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन हो रहा है। भारत का भी यही हाल है। स्वतंत्र होने पर भारत ने अपना कुछ क्षेत्र और अपनी आबादी का एक बड़ा हिस्सा खो दिया, लेकिन यह कई रियासतों के विलय के परिणामस्वरूप एक संघ भी बन गया, जिसका ब्रिटिश भारत के साथ एक विशेष संबंध था। विभाजन की वास्तविकता का भारत की भौगोलिक और जनसांख्यिकीय सीमाओं दोनों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा।

विश्व व्यवस्था को बदलने में भारत का योगदान

एकतरफा बाजारों के संचालन, प्रत्येक के अपने सख्त नियमों के साथ इक्कीसवीं सदी की शुरुआत तक पूरी दुनिया पर प्रभाव पड़ा। बहुपक्षीय बाजारों के आगमन के साथ, जिसने वैश्विक व्यवस्था को एक नया आयाम दिया, इस कार्यप्रणाली को बाद में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सामना करना पड़ा। इस नई प्रणाली में, विकासशील देशों, विशेष रूप से एशिया के विभिन्न क्षेत्रों के देशों को कई लाभ प्राप्त हुए। यह मुक्त- उत्साही होने और विदेशी बाजारों और व्यापार का स्वागत करने के लिए संदर्भित है। 1992 की शुरुआत में, भारत ने कई संरचनात्मक और राजनीतिक रूप से प्रभावित आर्थिक सुधारों का अनुभव किया, तत्कालीन प्रधान मंत्री नरसिम्हा राव के नेतृत्व के लिए धन्यवाद, जिन्हें हमारे देश की समकालीन आर्थिक प्रणाली को डिजाइन करने का श्रेय भी दिया जाता है।

ब्रिटिश प्रभुत्व के लगभग एक शताब्दी के बाद, भारत को स्वतंत्र

होने पर अपने दम पर खड़ा होना पड़ा और बाकी दुनिया के सामने अपनी स्वतंत्रता का प्रदर्शन किया। उस समय के अधिकांश राष्ट्र पश्चिमी देशों से प्रभावित थे। भले ही भारत कई क्षेत्रों में अत्यधिक विकसित संस्कृतियों के लिए जाना जाता है, लेकिन इसके लिए पश्चिमी विश्व व्यवस्था के नियमों को अपनाना बेहद कठिन था। फिर भी, यह उससे प्रभावित था। भारत ने इन बाहरी दबावों के बावजूद दुनिया में सबसे बड़ा लोकतंत्र बनने के लिए अपनी खुद की आर्थिक व्यवस्था बनाने के लिए काम किया। पूरे एशिया और शेष विश्व में, भारतीय संस्कृति, दर्शन, धार्मिक विश्वास और सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व लंबे समय से चर्चा का विषय रहे हैं। भारतीय दीर्घकालीन परम्पराओं ने विश्व के लिए ज्ञान को प्रकट किया है।

आर्यभट द्वारा मानवता को शून्य के मूल्य से परिचित कराया गया था। सुश्रुत की बदौलत सर्जरी एक विज्ञान बन गई। भारतीय संस्कृति और समृद्ध विरासत के शानदार शासकों और शख्सियतों के किस्से लोगों को जीवन को विभिन्न कोणों से देखना सिखाते हैं। पूरे इतिहास में भारतीय राष्ट्र का हर संभव क्षेत्र में लगातार प्रभुत्व रहा है, चाहे वह राजा रवि वर्मा की प्रसिद्ध पेंटिंग हो, अजंता एलोरा में पत्थर की नक्काशी, ताजमहल, या अन्य अति विशिष्ट वास्तुशिल्प चमत्कार। दुनिया भर के उत्कृष्ट वैज्ञानिकों, सर सीवी रमन और जेसी बोस जैसे कुछ लोगों की मदद से, विज्ञान में भारतीय योगदान वास्तव में असाधारण हो गया है। दुनिया के सबसे प्रभावशाली धर्मों की जड़ें भारत में हैं। भारतीयों का अस्तित्व हमेशा शांति, सांप्रदायिक सद्भाव और बंधुत्व के सिद्धांतों पर बना है।

बाकी अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था के साथ व्यापार और व्यापार संबंधों को बेहतर बनाने के लिए, भारत वर्तमान में अन्य विकासशील देशों के लिए उदाहरण पेश कर रहा है। चीन, भारत और रूस की तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं के कारण अब जोर पश्चिम से पूर्व की ओर चला गया है। कई एशियाई देशों, विशेष रूप से भारत ने हर साल लगातार सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि का अनुमान लगाया है और उन्हें बदलते वैश्विक क्रम में परिवर्तन और सुधार के अग्रदूत के रूप में माना जाता है। हम व्यवसाय के नकारात्मक पक्ष को भी देख सकते हैं, जो कि भारत जैसे विकासशील देशों के लिए अप्रवासन नियमों को सख्त करना है।

भारत और आने वाली नई व्यवस्था

भारत में तकनीकी क्रांति, विशेष रूप से व्यापार आउटसोर्सिंग घटक, ने महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया कि बाकी दुनिया भारत को तकनीकी क्षेत्र में कैसे देखती है। वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप, भारत ने प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) में वृद्धि देखी, एक नया मार्ग जिसने व्यापार करना आसान बना दिया, और एक दुर्जेय प्रतिद्वंद्वी चीन की तुलना में अधिक लाभप्रद रणनीतिक और प्रतिस्पर्धी स्थिति तकनीकी और आर्थिक सहयोग ने वाणिज्यिक संबंधों में सुधार किया है और बाजार का विस्तार किया है। वैश्वीकरण, डिजिटल प्रौद्योगिकी और आर्थिक उदारीकरण के उद्भव के कारण, भारत वर्तमान में तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। इन परिवर्तनों से राष्ट्र का अर्थशास्त्र, समाज और संस्कृति सभी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित हुए हैं।

विश्व स्तर पर व्यापार करने से जुड़ी विभिन्न चिंताओं के बीच एक वैश्विक नेता के रूप में अपनी भूमिका के लिए भारत की तैयारी के बारे में एक बहुत ही वैध प्रश्न उभरता है। भारत कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलनों और व्यापार सम्मेलनों में अंतर्राष्ट्रीय मानचित्र पर एक प्रमुख और उन्नत स्थिति में दिखाई देता है। भारत ने अपने व्यापारिक व्यवहारों में महत्वपूर्ण प्रगति की है और नेतृत्व की भूमिका निभाने की अपनी क्षमता का लगातार प्रदर्शन किया है। हालांकि, सुरक्षा, आतंकवाद और सीमाओं के पार संघर्ष के खतरे हमारे देश की तत्परता और अपनी रणनीतियों को कुशल तरीके से नियोजित करने की क्षमता के बारे में चिंताएँ बढ़ाते रहते हैं।

फास्ट चेंज और एआई के युग में शिक्षा

भारत की शिक्षा प्रणाली तेजी से संक्रमण के दौर से गुजर रही है। प्रौद्योगिकी के विकास के कारण अब देश भर के छात्रों के पास अवसरों और उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा तक अधिक पहुंच है। नतीजतन, बोर्ड भर में नामांकन दर में वृद्धि हुई है, और माध्यमिक विद्यालय स्नातक दर रिकॉर्ड ऊंचाई पर है। भारत नए विश्वविद्यालयों और कॉलेजों की स्थापना के साथ-साथ ट्यूशन का भुगतान करने में असमर्थ प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्ति और फेलोशिप प्रदान करके उच्च शिक्षा में भी महत्वपूर्ण निवेश कर रहा है। इसके अतिरिक्त, सरकार ने डिजिटल इंडिया और स्किल इंडिया जैसे कई कार्यक्रम शुरू किए हैं, जिनका उद्देश्य देश भर के युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार की संभावनाएं प्रदान करना है। भारत में शिक्षा प्रणाली एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रही है।

प्रौद्योगिकी का उपयोग भारत में बदलती दुनिया द्वारा लाए गए कई परिवर्तनों में से एक है। प्रौद्योगिकी का उपयोग करके लोगों, निगमों

और सरकारों के सामने आने वाली चुनौतियों का अभिनव समाधान विकसित किया गया है। इसमें सॉफ्टवेयर बनाना, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI), मशीन लर्निंग और मोबाइल एप्लिकेशन (ML) शामिल हैं। एआई की बदौलत ग्राहक सेवा, चिकित्सा निदान, वित्तीय विश्लेषण और सुरक्षा निगरानी सहित प्रक्रियाओं को स्वचालित किया जा रहा है। डेटा में पैटर्न खोजने में सहायता के लिए एमएल का उपयोग करके पूर्वानुमानित मॉडल बनाए जाते हैं जिनका उपयोग निर्णयों को सूचित करने के लिए किया जा सकता है। इसने स्वास्थ्य सेवा, वित्त और खुदरा सहित कई उद्योगों में उत्पादकता बढ़ाने में सहायता की है।

पिछले कुछ वर्षों में, भारत ने अपनी शैक्षिक प्रणाली में कई बदलाव किए हैं। सरकार ने सभी सामाजिक समूहों, विशेष रूप से कम समृद्ध मूल के लोगों के लिए उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुंच और वहनीयता बढ़ाने के लिए कई कार्यक्रम शुरू किए हैं। भारत में एक मजबूत शैक्षिक प्रणाली भी अत्याधुनिक तकनीकों के ज्ञान के साथ अत्यधिक योग्य पेशेवरों का उत्पादन कर रही है, जो वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए आवश्यक है। उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा को सभी के लिए उपलब्ध कराने के लिए सरकार द्वारा कई उपाय शुरू करने के साथ, भारत शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से प्रगति कर रहा है। अविकसित देशों के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति प्रदान करना एक ऐसा ही कार्यक्रम है। इन छात्रवृत्तियों को ऐसे लोगों की मदद करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, जो वित्तीय प्रतिबंधों के कारण कॉलेज के लिए भुगतान नहीं कर सकते। छात्रवृत्ति की राशि एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न होती है और अक्सर संबंधित सरकारी प्राधिकरण द्वारा स्थापित साधन परीक्षण या अन्य मानकों द्वारा तय की जाती है। ये स्कॉलरशिप स्कूल और कॉलेज दोनों स्तर की पढ़ाई के लिए प्रदान की जाती है, जिसमें ट्यूशन फीस, किताबें, पुनिफॉर्म और अन्य संबंधित खर्च शामिल हैं।

ऑनलाइन सीखने का माहोल और आभासी कथाएँ अत्याधुनिक तकनीक के दो उदाहरण है जिन्हें भारत अपनी शैक्षिक प्रणाली में एकीकृत कर रहा है। ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोगों की पहुंच अच्छे शिक्षकों या भौतिक संस्थानों तक नहीं हो सकती है; इसलिए इसने शिक्षा को उनके लिए अधिक सुलभ बनाने में मदद की है। सक्षम शिक्षकों की संख्या में वृद्धि करके, सुविधाओं और उपकरणों का आधुनिकीकरण करके, और अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नए पाठ्यक्रम को अपनाकर भारत शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण निवेश कर रहा है। इन पहलों की बदौलत सभी भारतीय व्यक्तियों की अब अधिक समतावादी शिक्षा प्रणाली तक पहुंच है।

पिछले कुछ दशकों में भारतीय विश्वविद्यालयों का विकास हुआ है, जिससे यह विस्तार की सबसे तेज दर के साथ दुनिया के उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक बन गया है। 2020 तक भारत के 1070 विश्वविद्यालयों के टूटने से पता चलता है कि 54 केंद्रीय विश्वविद्यालय 369 राज्य विश्वविद्यालय, 123] [डीम्ड-टू- दी विश्वविद्यालय और 504 निजी विश्वविद्यालय है। भारत में 200 से अधिक अंग्रेजी भाषी विश्वविद्यालय है जो विद्यार्थियों को उच्च स्तरीय शिक्षा प्रदान करते हैं। ये अंग्रेजी माध्यम के विश्वविद्यालय प्रबंधन, इंजीनियरिंग और अन्य पेशेवर क्षेत्रों में उच्च शिक्षा प्रदान करते हैं।**संस्कृति, धर्म, भोजन और भाषा**

संस्कृति और धर्म के मामले में, भारत एक बहुत ही विविध राष्ट्र है वहां कई धर्म प्रचलित है, जिनमें हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, जैन धर्म, ईसाई और इस्लाम शामिल हैं। जो लोग इन धर्मों का पालन करते हैं, उनमें से प्रत्येक की अपनी अलग-अलग मान्यताएं और प्रथाएं होती हैं जिनका वे पालन करते हैं। पूरे भारत में प्रतिवर्ष मनाए जाने वाले कई त्यौहार धार्मिक विश्वासों की विविधता को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए, दीवाली सबसे प्रसिद्ध हिंदू छुट्टियों में से एक है, जबकि ईद-उल-फितर एक महत्वपूर्ण मुस्लिम अवकाश है। इसके अलावा, स्थानीय परंपराओं के कई क्षेत्रीय उत्सव हैं, जैसे उत्तर भारत में होली और दक्षिण भारत में ओणम। भारत उत्सवों और त्योहारों का देश है। दीवाली, होली, दुर्गा पूजा और नवरात्रि जैसे त्यौहार हिंदुओं द्वारा मनाए जाते हैं। मुसलमान बकरीद और ईद-उल-फितर जैसी छुट्टियां मनाते हैं सिखों ने मनाया गुरुपर्व जबकि ईसाई क्रिसमस और ईस्टर मनाते हैं। इसके अलावा, देश भर में क्षेत्रीय उत्सव है, जैसे केरल में ओणम, असम में बिहू और तमिलनाडु में पोंगल उनकी जाति या धर्म के बावजूद, ये सभी त्यौहार लोगों को अपनी खुशियाँ और खुशियाँ साझा करने के लिए एक

साथ लाते हैं।

भारतीय परंपरा और संस्कृति विदेशी छात्रों द्वारा अपने देश में निर्यात की जाती है। अंतर्राष्ट्रीय छात्र भारत के सर्वश्रेष्ठ ब्रांड अधिवक्ता है। वे अपने स्वयं के राष्ट्रों में भारतीय वंश और संस्कृति को बढ़ावा देने में सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त, वे भारतीयों के साथ उनके ज्ञान और अनुभवों के बारे में बातचीत करते हैं, जो सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देता है। नई अवधारणाओं, विदेशी तकनीकों और विदेशी प्रतिभाओं को पेश करके, अंतर्राष्ट्रीय छात्र भारतीय समाज को बेहतर बनाने में मदद कर सकते हैं। भारतीयों के जीवन स्तर को बढ़ाने के अलावा, यह उन्हें विश्व मंच पर अधिक प्रतिस्पर्धी भी बनाता है।

भारत एक समृद्ध और विविध संस्कृति वाला देश है, और दुनिया भर के लोग इसकी परंपराओं से प्यार करते हैं। बहुत से लोग भारत की सांस्कृतिक विरासत से रूबरू हुए हैं, जिसमें होली के चमकीले रंग और मेहंदी के उत्कृष्ट डिजाइन शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, अपने विशिष्ट स्वाद और मसालों के कारण, भारतीय व्यंजनों ने दुनिया भर में लोकप्रियता हासिल की है। फिल्मों, टेलीविजन प्रस्तुतियों और सजीव प्रदर्शनों के माध्यम से, देश के पारंपरिक संगीत और नृत्य शैली भी अन्य देशों में फैल गई हैं। भारत इन चैनलों के माध्यम से अपनी संस्कृति का प्रसार करने में सक्षम है और आने वाली पीढ़ियों के आनंद लेने के लिए इसे संरक्षित भी कर रहा है।

भारतीय भोजन की एक विस्तृत विविधता उपलब्ध है। कुछ सबसे लोकप्रिय व्यंजनों में तंदूरी चिकन, मसाला डोसा, बिरयानी, समोसा, नान ब्रेड, पालक पनीर और बहुत कुछ शामिल हैं। भारत अपने मसालेदार करी और स्वादिष्ट स्ट्रीट फूड जैसे चाट और वड़ा पाव के लिए भी जाना जाता है। भारतीय मिठाई जैसे गुलाब जामुन और रसगुल्ला भी दुनिया भर में लोकप्रिय हैं। हम विदेशी छात्रों के रूप में भारतीय भोजन पसंद करते हैं। भारतीय व्यंजन अपने विविध प्रकार के स्वादों और मसालों के लिए जाना जाता है जो इसे अद्वितीय और आनंददायक बनाते हैं लोकप्रिय व्यंजनों में तंदूरी चिकन, नान ब्रेड, पालक पनीर, समोसा, बिरयानी, और बहुत कुछ शामिल हैं। भारत अपने मसालेदार करी और स्वादिष्ट स्ट्रीट फूड जैसे चाट और वड़ा पाव के लिए भी जाना जाता है। गुलाब जामुन और रसगुल्ला जैसी भारतीय मिठाइयों को चखने वाले विदेशी छात्र भी उन्हें बहुत पसंद कर रहे हैं।

भारत में कई भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनमें मराठी, बंगाली, तमिल, तेलुगु और हिंदी शामिल हैं। इनमें से प्रत्येक भाषा की अलग-अलग संस्कृतियां और इतिहास भारत की कुल विविधता में इजाफा करते हैं। इसके अतिरिक्त, अन्य बोलियाँ भी है जो देश के विभिन्न भागों में बोली जाती हैं। देश की भाषाई विविधता के कारण पूरे भारत के लोग एक दूसरे से बात कर सकते हैं और रीति-रिवाजों का आदान-प्रदान कर सकते है।

भारत अंग्रेजी भाषा को बहुत अधिक महत्व देता है क्योंकि इसका उपयोग आधिकारिक पत्राचार और आर्थिक व्यवहार के लिए किया जाता है। भारत में, अधिकांश विश्वविद्यालय अपने पाठ्यक्रम अंग्रेजी में प्रदान करते हैं, जिससे अंग्रेजी भी उच्च शिक्षा की भाषा बन जाती है। राष्ट्रव्यापी प्राथमिक विद्यालयों में अंग्रेजी को एकीकृत करके, भारत सरकार भाषा के उपयोग को प्रोत्साहित करने का प्रयास कर रही है। कई निजी स्कूलों ने हाल के वर्षों में अंग्रेजी शिक्षा की पेशकश शुरू कर दी है।

निष्कर्ष

भारत दुनिया की उन अर्थव्यवस्थाओं में से एक है जो सबसे तेजी से बढ़ रही है। यह उपनिवेश होने के बाद से एक लंबा सफर तय कर चुका है। सुधारों, बाजार उदारीकरण और बुनियादी ढांचे के आधुनिकीकरण के लिए भारत का समर्पण देश की सफलता का एक प्रमुख कारक रहा है। उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में सबसे बड़ी विकास दर के साथ, इसने इसे वैश्विक अर्थव्यवस्था में नेतृत्व करने की अनुमति दी है। इसके अतिरिक्त, भारत जलवायु परिवर्तन से निपटने और सतत विकास को आगे बढ़ाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय पहलों का नेतृत्व कर रहा है। भारत अपने आकार, संस्कृति की विविधता और समृद्ध विरासत के कारण गरीबी उन्मूलन, खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण संरक्षण सहित वैश्विक चिंताओं से निपटने में दुनिया भर के कई देशों के लिए एक मूल्यवान भागीदार है।

पीएचडी विदेशी छात्र, बीएएम विश्वविद्यालय (एमएस)

कश्मीर का गौरव ग्रंथ राजतरंगिणी

– गौरीशंकर वैश्य विनम्र

वस्तुतः राजतरंगिणी महाकवि कल्हण द्वारा रचित कश्मीर की ऐतिहासिक गौरव गाथा के रूप में चिरस्मरणीय एवं अभिनंदनीय कृति है। समूचे भारतीय इतिहास में जो एक मात्र मनोवैज्ञानिक इतिहास प्रस्तुत करने का काव्यमय प्रयास हुआ है. वह है कल्हण की राजतरंगिणी। 19वीं शताब्दी में औरेल स्टीन ने पंडित गोविंद कौल के सहयोग से राजतरंगिणी का अनुवाद कराया था। विद्वान ए ०एल वैशम के अनुसार - 'कल्हण की राजतरंगिणी तथ्यों से कम, नैतिकता से अधिक संबंधित है। वस्तुतः राजतरंगिणी भारतीय इतिहास का प्रस्थान विंदु है'।

कहा जाता है कि धरती पर कहीं स्वर्ग है तो कश्मीर की भूमि पर है। गगनचुंबी हिमशिखरों, हरे - भरे चारागाहों, विस्तृत वन प्रदेशों में झर - झर झरते झरने, झिलमिलाती झीलों, उमगती - इठलाती सरिताओं, महकते फूलों से भरे उद्यानों, केसर के सुगंधित खेतों, सेब से लदे सुंदर बगीचों और धान की लहलहाती फसल से भरा यह प्रदेश, सचमुच मोतियों की माला में मरकत मणि के समान सुशोभित है। यह तथ्य भी कम लोगों को ज्ञात होगा कि हमारे नामों के पूर्व 'श्री' लगाने की परंपरा वस्तुतः कश्मीर और श्रीनगर की ही देन है।

कश्मीर की भूमि भारतीय संस्कृति की क्रीड़ास्थली रही है। पूरे विश्व में फैली भारतीय जीवन पद्धति के प्रचार - प्रसार में कश्मीर का विशेष योगदान है। किंवदंती है कि देवताओं और दैत्यों के पिता कश्यप ऋषि ने यहाँ तप किया था, उन्हीं के नाम पर यह 'कश्यप मेरू' कहलाया जो 'काश्यपी' के अपभ्रंश के रूप में 'कश्मीर' कहा जाने लगा। संस्कृत के महाकवि कालिदास का नाम देश में अपार श्रद्धा से लिया जाता है, उनका नाम भी इस प्रदेश से जुड़ा हुआ है। साथ ही 12वीं शती के विलक्षण काव्य प्रतिभा के धनी पंडित कल्हण ने कश्मीर के गौरव ग्रंथ के रूप में 'राजतरंगिणी' नामक कालजयी रचना का जो अनमोल उपहार दिया, वह वर्णनातीत है। राजतरंगिणी का शाब्दिक अर्थ है - राजाओं का इतिहास या समय प्रवाह।

संस्कृत के महान कवि पंडित कल्हण कश्मीर के महाराजा हर्षदेव के महामात्य चंपक के पुत्र थे। वे सुसंस्कृत शिक्षित कश्मीरी माहेश्वर ब्राह्मण थे। उनका वास्तविक नाम 'कल्याण' था, किंतु स्थानीय बोलचाल में उन्हें 'कल्हण 'नाम से जाना गया। महान रचनाकार मंखक ने अपनी पुस्तक 'श्रीकंठ चरित' में कल्हण नाम के कवि को सराहा है तथा उन्हें 'बहुकथाकेलि' परिश्रम निरंकुश कवि घोषित किया है। कल्हण ने बारहवीं शताब्दी में (1148 ई० से 1150 ई० के मध्य) राजतरंगिणी नामक विलक्षण महाकाव्य की रचना की। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना में ग्यारह अन्य ग्रंथों का सहयोग लिया है, जिसमें अब केवल नीलमुनि कृत 'नीलमत पुराण' ही उपलब्ध है। अन्य तीन इतिहास ग्रथों में सुवृतकृत 'कश्मीर का इतिहास', क्षेमेन्द्र रचित 'नृपावली' तथा हेलाराज द्वारा प्रणीत 'पार्थिवावली' के नामों का उल्लेख मिलता है। कवि कल्हण के समक्ष उस समय राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। रचना के आरंभिक भाग में यद्यपि पुराणों के ढंग का वर्णन अधिक मिलता है परंतु बाद की अवधि का विवरण पूर्णतया ईमानदारी से दिया गया है। प्रसंगानुसार उन्होंने रामायण और महाभारत के प्रसंगों से भी सहायता ली है।

ग्रंथ के आरंभ में ही उन्होंने रचना में 'ईमानदारी' का होना आवश्यक गुण माना है -

श्लाध्यः स एव गुणवान, रागद्वेषबहिष्कृता,
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येन सरस्वती।

अर्थात वही श्रेष्ठ कवि प्रशंसा का अधिकारी है, जिसके शब्द एक न्यायाधीश के निष्पक्ष निर्णय भाँति, अतीत का चित्रण करने में घृणा अथवा प्रेम की भावना से मुक्त होते हैं।

कल्हण अत्यंत चतुर कलाकार थे। वे मानव स्वभाव के अद्भुत पारखी होने के साथ-साथ, देश की नैतिक, भौतिक. सामाजिक और

आर्थिक परिस्थितियों से भलीभांति परिचित थे। उन्हें राजनीतिक विषयों की भी अच्छी सूझबूझ थी, क्योंकि उनके पिता कश्मीर के राजा हर्षदेव के दरबार में मंत्री थे। कल्हण स्वाभिमानी काव्यशिल्पी थे। अतः अपने ऐतिहासिक महाकाव्य में किसी राजा से सम्मान - पुरस्कार प्राप्त करने के निमित्त उसकी चाटुकारिता के गीत नहीं गाये, अपितु तत्कालीन ऐतिहासिक सत्य तथ्य विश्व के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए काव्य साधना किया।

राजतरंगिणी में कुल आठ तरंग (सोपान), लगभग 8000(कुल 7826) श्लोकों में हैं। विद्वान ब्राह्मण होने के कारण उन्हें संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह बात कम लोगों को ज्ञात होगी कि ग्यारहवीं शती में जब कल्हण ने अपनी अमरकृति राजतरंगिणी की रचना की तो वह शारदा लिपि में थी। इसका मूल संस्कृत था। यह कुछ ऐसी है, जैसे कश्मीरी को रोमन लिपि में लिखा जाए। कवि ने अपने ग्रंथ में अन्य योग्य तपस्वी तथा ज्ञानमर्मज्ञ ब्राह्मणों का भी गुणगान किया है, जिनके सानिध्य में उन्हें उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्ति में योगदान मिला था।

राजतरंगिणी के पहले तीन तरंगों में कश्मीर के प्राचीन इतिहास की जानकारी, चौथे से लेकर छठवें तरंग में कार्कोट एवं उत्थल वंश का इतिहास वर्णित है। सातवें - आठवें तरंग में लोहारवंश का इतिहास उल्लिखित है। कल्हण ने तत्कालीन इतिहास का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है जो अत्यंत दुःखद एवं निराशाजनक है। उसकी एक झलक प्रस्तुत है -

कश्मीर के इतिहास की उत्कलवंशी सबसे सशक्त महिला, शासक दिद्दा थी। वह 950-958 ई० में राजा क्षेमेन्द्र गुप्त की पत्नी थी। उसने शारीरिक रूप से अक्षम पति के कारण शासन सत्ता का पूरी तरह उपयोग किया। वह पति की मृत्यु के बाद 980 ई० में सिंहासन पर बैठी और उसने साफ - सुथरा शासन देने का प्रयास किया। उसने भ्रष्ट मंत्रियों, यहाँ तक कि अपने प्रधानमंत्री तक को भी बर्खास्त कर दिया, परंतु सत्ता और वासना की भूख ऐसी थी कि अपने ही पुत्रों को मरवा दिया। वह पुंछ के एक ग्वाले तुंगा से प्रेम करती थी, जिसको प्रधानमंत्री बना दिया। उस समय का इतिहास का ऐसा सत्यतापूर्ण वर्णन कल्हण के अतिरिक्त किसी अन्य संस्कृत विद्वान कवि ने नहीं किया। जयसिंह लोहार वंश का अंतिम शासक था, जिसने 1128 ई० से1155 ई० तक शासन किया। जयसिंह के शासन के साथ ही कल्हण की राजतरंगिणी का विवरण समाप्त हो जाता है।

कल्हण की इस पुस्तिका के तीन प्रमुख उद्देश्य हैं - पुराने राजवंशों की जानकारी देना, पाठकों का मनोरंजन करना और अतीत से शिक्षा लेना। कुल 120 छंदों में लिखि 'राजतरंगिणी' में महाभारत काल से लेकर कल्हण के काल तक का इतिहास है, लेकिन मुख्य रूप से राजा अनंतदेव के पुत्र राजा कैलाश के कुशासन का वर्णन है। वे बताते हैं कि कश्मीर काफी पहले एक विशाल झील थी, जिसे कश्यप ऋषि ने बारामूला की पहाड़ियाँ काटकर खाली किया। श्रीनगर शहर सम्राट अशोक ने बसाया था और यहीं से बौद्ध धर्म पहले कश्मीर में और बाद में मध्य एशिया, तिब्बत और चीन पहुँच गया। उन्होंने बौद्ध धर्म की उदात्त परंपराओं को सराहा है। पाखण्डी (शैव) तांत्रिकों को आड़े हाथों लिया है। सच्चे देशभक्त की भाँति कवि ने अपने देशवासियों की आँखों से बुराइयों का पर्दा हटाया है। उन्होंने सहृदय कवि के सदृश देशकाल की सीमाओं से ऊपर उठकर 'सत्य शिव सुंदर' भाव का अभिनंदन एवं प्रतिपादन किया है।

कल्हण ने राजा हर्षदेव के उत्थान और पतन का जो विशद वर्णन किया है, वह भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अध्याय है। किशोरावस्था में हर्ष बड़ा गुणानुरागी, कई भाषाओं का ज्ञाता, सदाचारी तथा काव्यात्मक प्रवृत्ति का था। उसका लोभी पिता कलश विद्वानों से द्वेष रखता था परंतु हर्ष भूखा रहकर अपने व्यय से पंडितों और कवियों की सहायता करता था। कर्नाटक राज्य के विद्यापति उपाधि पाने वाले कवि विल्हण भी हर्ष के काव्य और कला के प्रति अनुराग की कथा सुनकर स्पृहा करता था। पर इसी हर्ष को चाटुकारों ने घेर लिया। उसका अंतःपुर सुंदरियों से भर गया। वह विलासी बन गया और अविवेकी अमात्यों के परामर्श पर जनता को लूटने लगा। उसने योग्य तथा विश्वसनीय मंत्री को ही बंदी बनाने का प्रयास किया, अपने ही भतीजों की हत्या करवायी, देवालयों से स्वर्ण - रत्न भी लूटे। अंत में बड़ी कारुणिक और विडंबना दशा में हर्ष की जीवन लीला समाप्त हुई। कल्हण का देव की प्रतिमा पर अटूट विश्वास था। कवि की दृष्टि से हर्षदेव जैसे गुणज्ञ राजा का दुःखद पतन दैव की प्रतिकूलता का परिणाम था। शुभाशुभ, शकुनों तथा उत्पातों के विषय में भी उनकी यही अविचल धारणा थी।

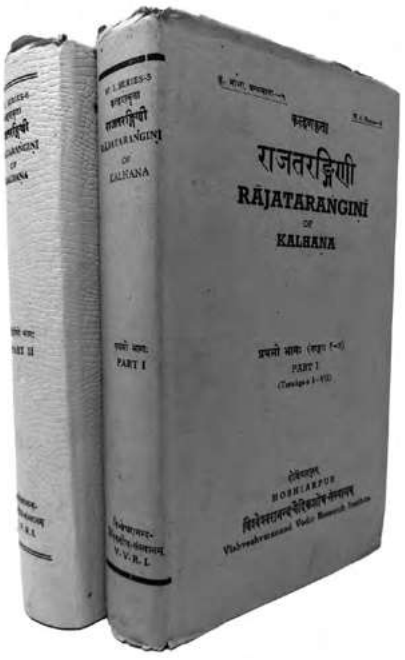

कल्हण की प्रतिभा 'राजतरंगिणी' में उत्कृष्ट काव्य सौष्ठव, महाकाव्यत्मकता के साथ प्रकट हुई है। वे उत्कृष्ट कवि और साहित्यकार दोनों हैं।

राजतरंगिणी भावभूमि, भाषा, छंद, रस तथा अलंकार की दृष्टि से भी अनूठी कृति

है। अपनी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी अधिक सुंदर निरूपित करते हुए वे कहते हैं -

विद्यावेश्मानि तुंगानि कुंकुमं साहिमं पयः,
द्राक्षेति यत्र सामान्यमस्ति त्रिदिवदुर्लभं।

अर्थात ऊँचे - ऊँचे विद्याभवन, केसर, शीतल जल और द्राक्षा, ये सब स्वर्ग से भी दुर्लभ वस्तुएँ जिस कश्मीर में सामान्यतया प्राप्त हैं, उसकी तुलना भला और किससे की जा सकती है।

उनके अनुसार जिनकी भुजाओं की छत्रछाया में समुद्र सहित यह धरती सुरक्षित रहती है, बड़े - बड़े बलशाली राजागण जिसकी कृपा के बिना स्मरण भी नहीं किए जाते, यह प्रकृति का सर्वोत्कृष्ट कवि कर्म ही नमस्कार के योग्य है।

भुजवनतरुच्छाया येषां निषेव्य महौजसां
जलधिरशनामेदिन्यासीदसावकुतोभया।
स्मृतिमपति न ते यान्ति क्षमापा विना यदनुग्रहं
प्रकृतिमहते कुर्मस्तस्मै नमः कवि कर्मणे।

कृति इतिहास प्रधान होते हुए भी काव्यात्मक सौंदर्य से परिपूर्ण है। लक्षण ग्रंथों की प्रचलित परिभाषा के अनुसार कृति में 'महाकाव्यत्व' भले ही अनुपस्थित माना जाए, किंतु है वह

चित्ताकर्षक काव्य ही। महाकवि कल्हण सुकवि के गुणों की कल्पना करते हुए उसे अमर कर देने वाला रसायन स्वीकार करते हैं।

राजतरंगिणी का प्रमुख रस 'शांत' है। कल्हण एक दार्शनिक की भाँति संसार की क्षणभंगुरता पर विचार करते हुए काव्यशास्त्रीय दृढ़ता से शांत रस की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करते हैं -

क्षणभंगिनि जन्तूनां स्फुरिते परिचिंतते,
मूर्धाभिषेकःशास्त्रस्य रसस्यात्र विचार्यताम।

कवि ने रचना में वैदर्भी रीति तथाअनुष्टुप छंद का ही आश्रय लिया है। कहीं-कहीं पांचाली और गौड़ी रीति, वसंततिलका, शार्दूल, विक्रीडित, चंदवर्त्म, हरिणी आदि बड़े छंद भी हैं।

अलंकारों का प्रयोग सहज और अकृत्रिम रूप से हुआ है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, दीपक, अतिशयोक्ति, दृष्टांत आदि अर्थालंकार तथा अनुप्रास आदि शब्दालंकार प्रयुक्त हुए हैं। उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण देखिए -

असंतापार्हताम जानन यत्र पित्रा विनिर्मिते,
गौरवादिव तिग्मांशुर्धते ग्रीष्मेप्यतीव्रता।

अर्थात पिता कश्यप जी द्वारा स्थापित किए गए कश्मीर मंडल को ताप देना उचित नहीं है, मानों यह सोचकर वहाँ ग्रीष्म में भी सूर्य अपनी किरणों में तीखापन नहीं लाते।

कवि ने स्थान - स्थान पर सूक्तिवत पद्य पंक्तियाँ विखेर दी हैं, जिनमें कवि के संघर्षमय, प्रौढ़ जीवन का अनुभव आभा बनकर झांकता प्रतीत होता है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों से उद्धृत अनेक मार्मिक चित्र उपस्थित किए हैं, जिसमें अनुभूति और संवेदना की निश्छल अभिव्यक्ति हुई है। कृति की प्रबंध रचना में इतिहास को सच - सच बताया गया है।

वस्तुतः राजतरंगिणी महाकवि कल्हण द्वारा रचित कश्मीर की ऐतिहासिक गौरव गाथा के रूप में चिरस्मरणीय एवं अभिनंदनीय कृति है। समूचे भारतीय इतिहास में जो एक मात्र मनोवैज्ञानिक इतिहास प्रस्तुत करने का काव्यमय प्रयास हुआ है. वह है कल्हण की 'राजतरंगिणी '। 19 वीं शताब्दी में औरेल स्टीन ने पंडित गोविंद कौल के सहयोग से राजतरंगिणी का अनुवाद कराया था। विद्वान ए ०एल वैशम के अनुसार - '' कल्हण की राजतरंगिणी तथ्यों से कम, नैतिकता से अधिक संबंधित है। वस्तुतः राजतरंगिणी भारतीय इतिहास का प्रस्थान विंदु है ''।

अंत में, राजतरंगिणी की समाप्ति पर कल्हण ने उपसंहार रूप में अष्टम खंड में केवल एक छंद लिखा है, यह उद्धरणीय है -

गोदावरी सरिदेवोत्तुमुलैस्तरंगे,
र्वक्त्रः स्फुटं सपदि सप्तभिरापतन्ती।
श्रीकांतिराज विपुलामि जनाब्धिमध्यं,
विश्रान्तग्रे विशति राजतरंगिणीयं।

अर्थात जैसे गोदावरी नदी अपनी तुमुल तरंगों वाली सात धाराओं से बहती हुई विश्राम के लिए समुद्र में प्रवेश करती है, वैसे ही यह राजाओं की नदी रूपी कथा राजतरंगिणी अपने पूर्व की सात तरंगों के साथ श्री और कांति से युक्त राजाओं के विस्तृत कुल रूपी समुद्र में अथवा कांतिराज के कुल में विश्रांति हेतु प्रवेश कर रही है। कवि का भाव यह है कि उसकी राजतरंगिणी कश्मीर के राजकुल को समर्पित है।

117 आदिलनगर, विकासनगर

विक्रमादित्य की शासन पद्धति के विविध आयाम

- सौरभ जैन

> **राजा विक्रमादित्य बहुत पराक्रमी थे। उन्होंने शकों को परास्त किया था। ईसा पूर्व 56-57 में प्रारंभ किया गया विक्रम संवत राजा विक्रमादित्य ने चलाया था। भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य की महत्ता का दूसरा कारण उनके शासन में आदर्शवादिता थी। उनकी प्रेरणा सामान्य रूप से मानवता और मुख्य रूप से अपनी प्रजा की सेवा थी और उनका शासन उनके उनके आदर्श से ओतप्रोत था। जैन ग्रंथों के अनुसार पूर्ण शासन व्यवस्था का प्रतीक रामराज्य का आदर्श उनके सम्मुख था तथा उन्होंने अभिनव राम बनने का प्रयास किया था। यह आदर्श 'लोकरंजन' (लोगों को संतुष्ट रखना), प्रजापालन और प्रजारक्षण से अभिरंजित था। अतः इसके लिए शासक को अनवरत कर्मण्य तथा जागरूक बनने की आवश्यकता थी।**

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के परम प्रतीक महादानी सम्राट विक्रमादित्य थे। राजा विक्रमादित्य के विषय में जो साहित्यिक परंपराएं प्राप्त होती हैं, उनका विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम - कपोल कल्पनाओं पर आधारित श्रेणी, द्वितीय - वह श्रेणी जिन से कुछ ऐतिहासिक तत्व प्राप्त होते हैं। कपोल कल्पनाओं में राजा विक्रमादित्य का एक आदर्श राजा के रूप में कल्पित चित्र का वर्णन किया गया है। जैसे- **वेताल पंचविंशती** तथा **सिंहासनद्वात्रिंशिकापुत्तलिका** और दूसरी वह श्रेणी जिसमें कुछ ऐतिहासिक तत्व प्राप्त हो सकते हैं जैसे सोमदेव कृत **कथासरित्सागर** और महाकवि हाल की **गाथासप्तशती** परंतु इन दोनों ग्रंथों की रचना भी बहुत बाद में हुई थी।

विक्रमादित्य के समय में राज्य को सात अंगों में संघटित समझा जाता था। विक्रमादित्य के समकालीन **कालिदास** अपने **रघुवंश** में राज्य के अंगों का उल्लेख करते हैं। विक्रमादित्य के दूसरे समकालीन अमरसिंह अपने कोश में राज्य के अंगों को इस प्रकार गिनाते है : स्वामी, अमात्य, मित्र, कोश, राष्ट्र, दुर्ग, तथा बल। राज्यांगो की यह कल्पना **अर्थशास्त्र** तथा **मनुस्मृति** से ली गयी है, जिनकी रचना क्रमशः मौर्य और शुंगकाल में हुई थी। राज्य प्रमुख को साधारण तौर पर तीन काम करने पड़ते थे - **सैनिक, न्याय संबंधी तथा शासन संबंधी**। वह युद्धकाल में सैन्य संचालन, प्रशासन के विवरण का निरीक्षण, राज्य शासनों का प्रवर्तन और न्याय के अध्यक्ष पद को सुशोभित करता था। **कथासरित्सागर** में विक्रमादित्य के बहुविध कार्यों की परंपरा निम्नलिखित शब्दों में है -'तथा विक्रमादित्य समय पाकर उसी प्रकार प्रकाशमान हुए जिस प्रकार से सूर्य मध्याह्न में होता है। अहंकारी राजा भी जब उनके आनमित धनुष की डोरी कसी हुई देखता है। दैवी शक्ति की तरह वेतालों, राक्षसों तथा अन्य पिशाचों को अपने शासन में लाते और कुकर्मियों और कुपथगामियों को धर्मानुसार दंड देते थे। विक्रमादित्य की सेनाओं ने शांति फैलाते हुए उसी प्रकार पृथ्वी का भ्रमण किया जिस प्रकार रविरश्मियां प्रत्येक दिशा में प्रकाश फैलाती है।'

लोकप्रिय दंत कथाओं तथा लिखित साहित्यिक अनुश्रुतियों में भी विक्रमादित्य के आदर्श राजा एवं उत्तम शासन पद्धति के प्रमाण मिलते है।

1. विक्रमादित्य के पिता गंधर्वसेन उज्जयिनी के प्रशासक थे।
2. विक्रमादित्य ने भी उज्जयिनी में शासन किया तथा बड़े बड़े विजयी प्राप्त की।
3. विक्रमादित्य के समय म्लेच्छों ने भारत पर आक्रमण किया था और उनको हराकर विक्रमादित्य ने अपना संवत चलाया था।
4. विक्रमादित्य का जीवन साहसिक और प्रेमपूर्ण कार्यो से भरा था।

5. विक्रमादित्य एक आदर्शवादी राजा थे, जिन्होंने जनसेवा के लिए अपने को उत्सर्ग कर दिया था। 6. वे स्वयं शास्त्रों में पारंगत थे तथा कालिदास जैसे कवियों के रक्षक, पोषक और प्रेरक थे।

प्रबंधचिंतामणि, **प्रबंधकोश** और **पुरातनप्रबंधसंग्रह** में जिस राजा के लिए **विक्रमांक** का प्रयोग किया गया है, वह सम्राट विक्रमादित्य ही थे। राजा विक्रमादित्य का विवेचनात्मक वर्णन **प्रबंधकोश**, **प्रबंधचिंतामणि** आदि प्रबंध ग्रंथों में मिलता है। **स्कंदपुराण** के कुमारिकाखंड के अनुसार कलयुग के 3000 वर्ष के पश्चात विक्रमादित्य का जन्म हुआ था। इस समय 4030 कलिका वर्ष हो चुके हैं। इस प्रकार 2030 वर्ष पहले अर्थात 100 वर्ष ईसा पूर्व विक्रमादित्य का जन्म माना जाता है। **प्रबंधचिंतामणि** के अनुसार विक्रमादित्य का शासन स्वर्जित था। विक्रम ने अपने भुजबल से शक्ति का संचय कर राज्य की स्थापना की थी। विक्रम को पितृ राज्य उत्तराधिकार परंपरा से प्राप्त नहीं हुआ था।

कालिदास द्वारा दुष्यंत के निम्नलिखित चित्रण में **विक्रमादित्य का शासनादर्श** परिलक्षित होता है - अपने सुख के लिए निरभिलाषी होते हुए लोक के लिए तुम सर्वदा चिंतित रहते हो। प्रत्येक शासक की यही वृत्ति तथा विधि है।

इतिहास की प्रमाणिक पुस्तकों से ज्ञात होता है कि राजा विक्रमादित्य बहुत पराक्रमी थे। उन्होंने शकों को परास्त किया था। ईसा पूर्व 56-57 में प्रारंभ किया गया विक्रम संवत राजा विक्रमादित्य ने चलाया था। भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य की महत्ता का दूसरा कारण उनके शासन में आदर्शवादिता थी। उनकी प्रेरणा सामान्य रूप से मानवता और मुख्य रूप से अपनी प्रजा की सेवा थी और उनका शासन उनके उनके आदर्श से ओतप्रोत था। **जैन ग्रंथों** के अनुसार पूर्ण शासन व्यवस्था का प्रतीक रामराज्य का आदर्श उनके सम्मुख था तथा उन्होंने अभिनव राम बनने का प्रयास किया था। यह आदर्श 'लोकरंजन' (लोगों को संतुष्ट रखना), प्रजापालन और प्रजारक्षण से अभिरंजित था। अतः इसके लिए शासक को अनवरत कर्मण्य तथा जागरूक बनने की आवश्यकता थी। उन्होंने इस बात को पूर्णरूप से समझ लिया था कि उनका कर्तव्य विशेषत: लोकतंत्र के अंतर्गत विश्राम का पूर्ण त्याग है।

कथासरित्सागर में विक्रमादित्य के आदर्श का निम्नलिखित अंकन हुआ है : 'वे पितृहीनों के पिता, बंधुहीनों के बांधव, अनाथों के नाथ, निराशों के रक्षक और अपनी प्रजा के क्या नहीं थे?' विक्रमादित्य में लोगों को प्रसन्न करने वाले प्रचुर गुणों का सन्निवेश ही देश के इतिहास में उन्हें लोकप्रिय बना देता है। **विक्रमादित्य** (संवत प्रवर्तक) नामक पुस्तक में **डॉ. राजबली पांडे** ने विक्रमादित्य की शासन व्यवस्था का वर्णन किया है। जिसके अनुसार राज्यप्रमुख के कर्तव्य में सहायता पहुँचाने के लिए मंत्रीपरिषद की व्यवस्था होती थी। विक्रमादित्य सम्बंधी अनुश्रुतियों से ज्ञात होता है कि उनके सुमति नामक महामंत्री तथा वज्रायुध नामक प्रतिहार थे।

विक्रमादित्य के समकालीन तथा उनकी सभाओं में रहने वाले अमर सिंह ने निम्नलिखित मंत्रियों का उल्लेख किया है :

1. महामात्र अथवा प्रधान (प्रधानमंत्री)
2. मंत्री, धीसचिव अथवा अमात्य (परामर्शदाता मंत्री)
3. कर्म सचिव (शासन मंत्री)
4. पुरोधा अथवा पुरोहित (धर्म विभाग का मंत्री)
5. प्राड्डविवाक (विधिसम्बन्धी मंत्री)
6. अक्षदर्शक (प्रशासकीय लेखों का मंत्री)

प्राचीन भारतीय शासन पद्धति में **प्रो. अनंत सदाशिव अल्तेकर** ने प्राचीन भारत की शासन पद्धति का विवेचन किया है। इसमें उन्होने गणतंत्रों या प्रजासत्तात्मक राज्यों का विकास किस प्रकार हुआ, उनमें वास्तविक राज्य सत्ता सामान्य जनता के हाथ में किस अंश तक थी, उनके कौन- कौन से प्रकार थे जैसे विषयों पर चर्चा की है। साथ ही प्रान्तों, जिलों, नगरों और ग्रामों में शासन प्रबंध का वर्णन और इतिहास पर प्रकाश डाला है। **'विक्रम'** पत्रिका के अक्टूबर-नवंबर 1944 अंक (पेज 96-97) में **श्रीयुत कृष्णा जी** ने 'विक्रम के नवरत्न' लेख में विक्रमादित्य के नवरत्नों पर प्रकाश डाला है। यथा राजा तथा प्रजा की कहावत के अनुसार राजा विक्रमादित्य की भांति उनके ये प्रतिष्ठा प्राप्त नवरत्न भी अपने आस्तित्व को काल के विशाल उदर में छिपाए बैठे है, और इतिहासज्ञ तथा पुरातत्वविद उनकी खोज में कल्पनाएं दौड़ा कर उनके आस्तित्व भिन्न भिन्न शताब्दियों में स्थिर कर रहे हैं।

विक्रमादित्य की सभा में धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटखपरख, कालिदास, वराहमिहिर, वररुचि वे विद्वान थे। **आदि विक्रमादित्य** में **भगवतीलाल राजपुरोहित** ने विक्रमादित्य के शासन की विशेषताओं का वर्णन किया है। यूं तो विक्रमादित्य इतना लोकप्रिय बताया गया है कि विजित बहुधा राजा या राजकुमार उसके अपने थे, उससे अभिन्न थे और उनका पूरा सहयोग भी रहना ही चाहिए था और रहा भी परंतु शासन चलाने के लिए जो मंत्री परिषद थी वह भी अनुवांशिक होने से पूरी तरह विश्वसनीय थी। चाहे वह प्रतिहार हो या पुरोहित, सेनापति हो या प्रधानमंत्री, परामर्शदाता मंत्री धीसचिव हो या कर्मसचिव। **अमरकोष** के अनुसार महामात्र या प्रधान, अक्षदर्शक प्राड्डविवाक विधि संबंधी विभाग देखते थे। धर्म विभाग प्रमुख पुरोहित या पुरोधा होता था। अक्षदर्शक प्रशासकीय लेखों का मंत्री होता था। विक्रम के समकालीन अमर सिंह ने अपने कोश में इन समस्त पदाधिकारियों की चर्चा की है। विक्रमादित्य के युग के केंद्रीय संगठन, मंत्री परिषद, राजकर्तव्य, जनकर्तव्य, प्रादेशिक विभाग, राज्य कर, व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सैनिक व्यवस्था, सुरक्षा व्यवस्था, विदेश नीति, सामाजिक संगठन, समाज की आचार-व्यवस्था, स्त्री की स्थिति, धार्मिक परिस्थितियां और उनमें संतुलन, आर्थिक दशा, व्यापार एवं उद्योग, कृषि विनिमय आदि ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिसकी उस पुस्तक

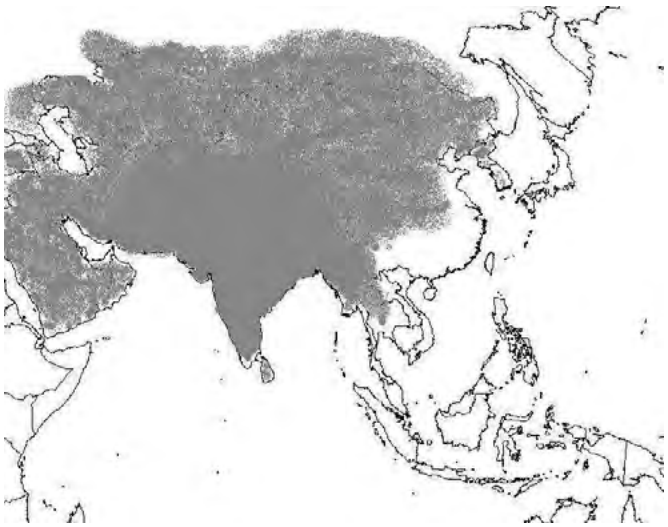

में गहराई से चर्चा न की गई हो। यही नहीं स्थापत्य, मूर्ति, चित्र, संगीत, नाट्य, काव्य, भाषा, लिपि आदि की गहन चर्चा भी की गई है। जब समाज होता है तो उसमें हर पक्ष होता है और समकालीन उन समस्त पक्षों की जैसी गहन पड़ताल अमरकोश में हुई है, वह आगे के लिए भी आदर्श बन गयी।

'विक्रम' पत्रिका के सिंहस्थ अंक (मार्च, 1945) में **सूर्यनारायण व्यास** ने 'महान विक्रमादित्य' के वैभव, यश और शौर्य का वर्णन किया है। प्रलय बाधा रहित अवंती नगरी जो सृष्टि के आदिम काल की पुराण प्रतिष्ठा का गुरु गौरव धारण कर रही है, अपने रजकण से विजय स्मृति सम्भूत काल गणना को अनेक क्रमों के भंग हो जाने पर भी चिरजीवी बनाये हुए है। भारतीय क्षतिज पर अपनी रश्मि-राशिको विस्तारित करने वाले पुण्य पराक्रम के प्रकाश पुंजशाली सुवर्ण सूर्य ने उदित होकर समस्त जग में विमल-आलोक प्रसारित किया है। वही हमारी सुविकसित संस्कृति का सर्वोच्च शिखर प्रकाश स्तम्भ विक्रमादित्य है।

कथासरित्सागर ग्रंथ की रचना 11वीं शती में सोमदेव नामक एक अन्य कश्मीरी पंडित द्वारा हुई थी। बृहत्कथा मंजरी में उपलब्ध विक्रमादित्य के जीवन तथा उनके कार्यों के बारे में प्राप्त सामग्री से भी विस्तृत सामग्री इस ग्रंथ में प्राप्त होती है। इस ग्रंथ की प्रामाणिकता तथा स्वरूप के संबंध में सोमदेव ग्रंथ के कथा पीठ (ग्रंथ भूमिका) में कहते हैं :'यह ग्रंथ गुणाढ्य रचित बृहत्कथा के ही ढांचे पर है, जहां से इसकी सामग्री प्राप्त की गई है। कहीं तनिक भी अतिक्रमण नहीं है केवल ऐसी भाषा का प्रयोग किया गया है जो ग्रंथ विस्तार के अनुरूप हो। औचित्य, स्वाभाविक संबंध तथा कवितांशो को इस प्रकार जोड़ने की ओर, जो कथा के प्रवाह में बाधक नहीं, जहां तक संभव था अधिक ध्यान रखा गया है। यह प्रयास अपनी चातुरी की प्रशंसा की इच्छा से नहीं, किंतु विभिन्न तथा अधिक कथानकों की स्मृति को आसान बनाने के लिए ही किया गया है।' सोमदेव ने विक्रमादित्य के जीवन से संबंधित कथाओं का उल्लेख अपने ग्रंथों के कई भागों में किया है। कथासरित्सागर में विक्रमादित्य के बारे में निम्नलिखित तथ्य सम्मुख आते हैं।

1. विक्रमादित्य के पिता का नाम महेंद्रादित्य तथा माता का नाम सौम्यदर्शना था।
2. महेंद्रादित्य तथा विक्रमादित्य दोनों ने अवंति की राजधानी उज्जयिनी पर शासन किया।
3. उस क्षेत्र का प्रचलित धर्म शैवधर्म था।
4. विक्रमादित्य के जन्म के अवसर पर देश में विदेशी आक्रमण हुआ था।
5. विक्रमादित्य ने अवस्था प्राप्त करके दुष्टों से देश को मुक्त किया। उन्होंने दिग्विजय की तथा देश को एकछत्र शासन में आबद्ध किया।
6. विक्रमादित्य अपनी वीरता तथा अन्य सद्गुणों से, जो आदर्श मानव तथा शासक के लिए अत्यावश्यक है, संपन्न थे।
7. वे बड़े शास्त्रविद तथा कला साहित्य के संरक्षक थे।

कुछ अन्य ग्रंथ भी विक्रमादित्य के साहस तथा प्रेम कथाओं के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन करते हैं। सिंहासनद्वात्रिंशक, वैतालपंचविंशति, शुक्र सप्तशती आदि बहुत ही लोकप्रिय ग्रंथ है। जिनका भिन्न-भिन्न नामों से भारत की लगभग सभी प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद हो गया है क्योंकि ये ग्रंथ बहुत ही लोकप्रिय थे और साधारण कोटि के लेखकों द्वारा लिखे गए थे। इनमें बहुत ही परिवर्तन तथा परिवर्धन होता गया, अतः इनका ऐतिहासिक मूल्य समाप्त हो गया है। इनमें विक्रमादित्य का वृतांत काल्पनिक बन जाता है, किंतु वे सभी एक स्वर से उज्जयिनीके विक्रमादित्य का अस्तित्व तथा उनके जीवन के विभिन्न अंगों में उनकी महत्ता सिद्ध करते हैं। इन ग्रंथों के विक्रमादित्य अस्पष्ट हो सकते हैं, किंतु अवास्तविक नहीं।

पुराणों का साक्ष्य

जैन परंपरा से पता चलता है कि विक्रमादित्य गर्दभिल्ल के वंशज थे। और पुराणों में गर्दभिल्ल का उल्लेख है तो स्पष्ट है कि वे विक्रमादित्य के अस्तित्व को भूल नहीं जाते। हम पुराणों में विक्रमादित्य के वंश के संकेत के अतिरिक्त कुछ और स्पष्ट उल्लेख भी पाते हैं। भविष्य पुराण में उनका दो बार उल्लेख है। एक स्थान पर विक्रमादित्य की निम्न लिखित कथा देते हैं।

'उस समय एक जयंत नामक ब्राह्मण रहता था। घोर तपस्या से इंद्र के यहां एक से एक फल प्राप्त हुआ। जिससे कोई भी अमर हो सकता था। फल को पाकर ब्राम्हण अपने घर चला गया। जयंत ने उसे भर्तहरि को बेच दिया, जिसे खाकर भर्तहरि योगासीन होकर वन में चले गए। तब विक्रमादित्य ने अपने राज्य पर शासन किया।'

विक्रमादित्य का उल्लेख **स्कंद पुराण** में हुआ है, जहां कहा

गया है कि वे कलि प्रारंभ होने के तीन सहस्त्र बाद राज्य कर रहे थे। भविष्य पुराण की तिथि में मतभेद है। पार्जिटर के अनुसार दूसरी शती में एक आंध्र राजा यज्ञश्री के समय में इसकी रचना हुई थी। इस प्रकार यह विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता के लिए प्रमाण हैं किंतु बहुत से विद्वान पार्जिटर द्वारा निश्चित तिथि में संदेह करते हैं तथा उनका मत है कि **भविष्य पुराण** की रचना में बहुत से अंशो को जोड़ा गया। यदि यह मान लिया जाए कि भविष्यपुराण में बहुत से परिवर्तन हुए, तब भी कहा जा सकता है कि पुराणों के परवर्ती संपादकों को विक्रमादित्य की परंपरा का स्मरण था। यद्यपि अतीत की घटनाओं के बारे में कभी-कभी भ्रांतियां हो जाती थी।

पट्टावलियों का साक्ष्य

पट्टावलियां तिथिपरख पोथियां है, जो अधिकतर प्राकृत में बड़ी ही सादीतथा तथ्यात्मक भाषा में लिखी गई है। उनमें महत्वपूर्ण व्यक्तियों का वर्णन अनुक्रम से मिलता है। यथा, संत, शासक आदि। इस प्रक्रिया में वे महावीर से निर्वाण से लेकर मध्य युग तक प्रसिद्ध राजवंशों तथा शासकों की श्रेणियों में विक्रमादित्य की तिथि मूलक स्थिति को स्पष्ट करते हैं। जब हम पट्टावलियों को साथ रखकर तुलना करते हैं तो अवंतिका का इतिहास सम्मुख आ जाता है।

जैन हरिवंश का साक्ष्य

एक महान जैन लेखक जिनसेन ने इसकी रचना शक संवत 705 में की थी, जिसमें अवंती के इतिहास का तिथि क्रमानुसार वर्णन किया गया है। जैन हरिवंश की तिथि क्रमिक सूची में विक्रमादित्य के नाम का उल्लेख नहीं है किंतु उसमें गर्दभिल्ल का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जिस जाति या वंश में विक्रमादित्य उत्पन्न हुए थे। पट्टावालियों तथा जैन हरिवंश दोनों में विचार पूर्ण प्रमाणिक ऐतिहासिक लेख हैं अतः उनमें काव्यात्मक अभिव्यक्ति तथा अत्युक्ति नहीं है। भिन्न-भिन्न राजाओं तथा राजवंशों के शासनकाल के लिए वे विभिन्न संख्याओं का प्रयोग करते हैं, परंपरागत गोलमोल संख्याओं का नहीं।

प्रभावक चरित्र

इसकी रचना प्रभाचंद्र सूरी के द्वारा हुई थी। पाटनसंघ के पुस्तकालय में इसकी सबसे प्राचीन हस्तलिपि है जिस की तिथि विक्रम की 14वीं शती निश्चित की जाती है। स्पष्टतया यह ग्रंथ बहुत बाद का है, किंतु इसका लेखक कहता है कि उसकी रचनाएं प्राचीन ग्रंथों ऐतिहासिक तथा जीवन वृत्तात्मक साहित्य तथा बहुश्रुत मुनियों द्वारा संचित परंपराओं पर ही आधारित है। यह हेमचंद्रसूरिकृत स्थविरावलीचरित का अनुकरण करता है। तथा प्रसिद्ध श्वेतांबर जैन संत विद्वानों तथा उसके पुत्रों तथा राजाओं की जीवन व्रतों का वर्णन करता है। जो प्रथम शती तथा तेरहवीं शती विक्रमी के बीच के हैं। इस ग्रंथ को अलंकृत करने वाले प्रसिद्ध शासकों में विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, आमराज, भोज देव, भीमदेव, सिद्धराज, कुमार पाल इत्यादि हैं। यह प्राचीन भारत के प्रसिद्ध शासक रहे हैं। उनके वंश का प्रभाव चरित में वर्णन उनके ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट रूप से प्रमाणित करता है।

विक्रमादित्य को बहुत बड़ा दानी, पृथ्वी को ऋणमुक्त करने वाला कहा जाता है। एक बार राजा विक्रमादित्य ने जैन आचार्य सिद्धसेनसूरी की कीर्ति से प्रभावित होकर अपने राज दरबार में बुलाया। संत को विक्रम ने स्वर्ण का उपहार प्राप्त करने के लिए कहा। इसके उत्तर में संत ने कहा कि "भोजन से संतुष्ट व्यक्ति को भोजन देना व्यर्थ है।" उन्हें अपने उस धन से ऋणग्रस्त पृथ्वी को ऋणमुक्त करना चाहिए। संत के उपदेश को सुनकर राजा ने संपूर्ण पृथ्वी को ऋण मुक्त कर दिया। **कथासरित्सागर** में भी विक्रमादित्य को पृथ्वी को ऋण मुक्त करने वाला बताया गया है। अतएव निःसंदेह सम्राट विक्रमादित्य एक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व थे।

संदर्भ-ग्रंथ -

1. अमरकोश 2,4,5,8,17
2. मनुस्मृति 9,294, 156
3. एपि. इंडिया जिल्द 27
4. विक्रमादित्यप्रबंध नम्बर 17
5. ए. बी. कीथ : ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर
6. विक्रमोर्वशी
7. कथासरित्सागर 18, 1, 14।
8. अलतेकर प्रो. अनंत सदाशिव, प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, भारती भंडार, 1959
9. पांडेय डॉ. राजबली, विक्रमादित्य, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1960
10. विक्रम, पृ 7-8, मार्च 1945
11. राजपुरोहित डॉ. भगवतीलाल, आदि विक्रमादित्य, स्वराज संस्थान संचालनालय, 2008
12. बॉम्बे गेजेटियर भाग-1, खंड 2, पृ. 17
13. कथासरितसागर, लंबक 20 पृष्ठ 563-7, सी. एच. टानी
14. जिनविजय मुनि द्वारा संपादित प्रभावक चरित्र की भूमिका पृष्ठ 2
15. काशी प्रसाद जायसवाल, हिन्दू पोलिटी
16. वी. ए. स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया चतुर्थ संस्करण
17. विक्रम स्मृति ग्रंथ, वि.स. 2001, ग्वालियर
18. विक्रम अंक 1944, ग्वालियर
19. नागिरी प्रकारिणी पत्रिका: विक्रमांक 2000
20. जैन हरिवंश

शोधार्थी - राजनीति विज्ञान,
देवी अहिल्या विश्व विद्यालय, इंदौर (मप्र)

असम के वीर नायक महाराज पृथु

– डॉ. राजश्री देवी और डॉ. रक्किम पाटर

राजा पृथु ने कामरूप की तत्कालीन राजनीति को एक नयी दिशा दी जिसके फलस्वरूप कामरूप पर हुए तीन में से दो आक्रमणों को सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर कामरूप को विधर्मी शासन से बचाए रखने में वे सक्षम हुए। महाराजा पृथु जैसे भारत के इतिहास की कई महत्वपूर्ण व्यक्तित्व तथा घटनाएँ जनमानस से छुपाकर रखी गयी। औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारत का इतिहास विकृत कर बहुत सी गलत व बनावटी जानकारियों की सहायता से इसे केवल पराजय और गुलामी के इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया। इसके विपरीत भारतीय राजाओं की महान गौरवशाली विजय गाथाओं को पाठ्यपुस्तकों में स्थान ही नहीं दिया गया। बख्तियार खिलजी के आक्रमण के विरुद्ध कामरूप के राजा पृथु द्वारा प्रदर्शित वीरता को छुपाकर रखना इसका ही एक बड़ा उदाहरण है।

बारहवीं शताब्दी का भारतीय इतिहास विदेशी आक्रांताओं विशेषकर आफगानिस्तान से आनेवाले आक्रांताओं के संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। इस दौरान भारतवर्ष पर कई आक्रमण हुए। उत्तर भारत के अस्थिर राजनीतिक वातावरण और मुसलमान आक्रांताओं के नरसंहार तथा उत्पीड़न के समय कामरूप में महाराज पृथु ने राज्य का शासनभार ग्रहण किया। इसी के साथ 12वीं शताब्दी में कामरूप की राजनीति में एक सशक्त और प्रभावशाली नाम जुड़ जाता है। किन्हीं इतिहासकारों के अनुसार राजा पृथु किरात जाति के व्यक्ति थे। यहां उल्लेखनीय है कि वर्तमान समय के असम के बोड़ो, राभा, कोच, डिमासा, तिवा, गारो आदि जनजातियों को ही उस समय किरात नाम से संबोधित किया जाता था। इतिहासकार सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय के अनुसार महाराज पृथु हिंदू बोड़ो जनजाति के व्यक्ति थे। यहाँ बोड़ो शब्द समग्र तिब्बत-बर्मी लोगों के लिये प्रयोग किया गया है। उन्होंने लिखा है - 'When Bakhtiyar Khalji the Turki leader who conquered western Bengal in 1203, came to Assam/ Kamrupa with an invading army suffered defeat at the hands of the Assam's ruling house which was evidently a Hindu Boro house'. दूसरी ओर इतिहासकार राजमोहन नाथ के अनुसार राजा पृथु वैद्यदेव द्वारा स्थापित देव वंश के शासक थे। वैद्यदेव कामरूप के सिंहासन पर सन 1130 से सन 1150 तक अधिष्ठित थे। उनके परवर्ती राजाओं के क्रमानुसार नाम थे - राइरीदेव, भास्करदेव, बल्लवदेव और पृथुदेव।

इतिहासकार राजमोहन नाथ के अनुसार महाराज पृथु सन 1185 से सन 1227 तक के लंबे समय के लिये कामरूप की राजगद्दी पर विराजमान थे। उत्तर गुवाहाटी की बेतना नामक जगह पर उनकी राजधानी थी। महाराज पृथु के शासनकाल में कामरूप की सीमा पूर्व में वर्तमानके दरंग जिला और पश्चिम में वर्तमान के बांग्लादेश की दिनाजपुर नामक शहर तक विस्तृत थी। राजमोहन नाथ के इस मत का समर्थन नगेंद्र नारायण आचार्य भी करते हैं। आचार्य जी के अनुसार महाराज पृथु संभवतः वैद्यदेव अथवा बल्लवदेव के वंशज थे और 12वीं शताब्दी के अंतिम समय में उन्होंने कामरूप का शासनभार संभाला। हालाँकि विख्यात इतिहासकार कनकलाल बरुआ कहते हैं कि वैद्यदेव के साथ महाराज पृथु का कोई संबंध नहीं था और अनुमान है कि सन 1200 से सन 1228 के बीच वे कामरूप के राजा थे। इन दोनों ही मतों को ध्यान में रखें तो महाराजा पृथु के वंश का विषय थोड़ विवादित भले ही हो, परंतु उनके शासनकाल को सभी इतिहासकार निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हैं। उनके शासनकाल में कुल तीन बार कामरूप पर मुसलमानों ने आक्रमण किया था।

विद्वान तथा इतिहासकार एम.एम.शर्मा के अनुसार बख्तियार खिलजी के कामरूप आक्रमण के समय पृथु यहाँ के राजा थे। इन्हें विश्वसुंदरदेव के नाम से भी जाना जाता था। इस आक्रमण के समय महाराज पृथु ने खिलजी की सेना को पूरी तरह से रौंद डाला था और उत्तर गुवाहाटी स्थित 'कानाई बोरोशी बोवा' शिलालेखों में उन्होंने यह विजय गाथा लिपिबद्ध भी करवायी।

राजा पृथु ने कामरूप की तत्कालीन राजनीति को एक नयी दिशा दी जिसके फलस्वरूप कामरूप पर हुए तीन में से दो आक्रमणों को सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर कामरूप को विधर्मी शासन से बचाए रखने में वे सक्षम हुए। महाराजा पृथु जैसे भारत के इतिहास की कई महत्वपूर्ण व्यक्तित्व तथा घटनाएँ जनमानस से छुपाकर रखी गयी। औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारत का इतिहास विकृत कर बहुत सी गलत व बनावटी जानकारियों की सहायता से इसे केवल पराजय और गुलामी के इतिहास के रूप में प्रस्तुत किया। इसके विपरीत भारतीय राजाओं की महान गौरवशाली विजय गाथाओं को पाठ्यपुस्तकों में स्थान ही नहीं दिया गया। बख्तियार खिलजी के आक्रमण के विरुद्ध कामरूप के राजा पृथु द्वारा प्रदर्शित वीरता को छुपाकर रखना इसका ही एक बड़ा उदाहरण है।

उल्लेखनीय है कि सातवीं शताब्दी में मोहम्मद बिन कासिम द्वारा भारत में आक्रमण और लूटपाट की जो शुरुआत हुई थी, वह 12वीं शताब्दी तक आते-आते तीव्रतर हो चुकी थी। मोहम्मद गोरी और कुतुबुद्दीन ऐबक ने इन आक्रमणों का नेतृत्व किया था। इसके बाद सन 1192 में तराइन के द्वितीय युद्ध में दिल्ली के चौहान वंश के राजा पृथ्वीराज चौहान को परास्त कर विधर्मी आक्रांताओं ने नरसंहार, बलात्कार, मठ-मंदिरों के ध्वंस आदि के द्वारा पूरे उत्तर भारत में अपना आतंक फैलाया। इस आतंक को फैलाने में एक प्रमुख नाम था इख्तियारउद्दीन बख्तियार खिलजी, जिसका जन्म अफगानिस्तान के गरमशिर नामक जगह पर हुआथा।

तराइन के द्वितीय युद्ध के कुछ वर्षों के बाद मोहम्मद गोरी की मृत्यु हुई और फिर उसका ही एक गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्ली का शासक बन बैठा। उस समय भारत के विभिन्न स्थानों पर लूटपाट मचाने वाला बख्तियार खिलजी कुतुबुद्दीन ऐबक का खास आदमी बन गया और इसी के फलस्वरूप उसे बिहार और बंगाल विजय अभियान का दायित्वभार मिला। इसके कुछ दिन बाद सन 1196 में बख्तियार खिलजी ने बिहार पर विजय प्राप्त कर वहाँ स्थित उदंतपुरी, विक्रमशिला और विश्वविख्यात नालंदा विश्वविद्यालय को जलाकर मलबे में बदल दिया। इन विश्वविद्यालयों के परिसर में स्थित बौद्ध विहार और ग्रंथागारों को तो जलाया ही साथ-ही-साथ वहाँ पढ़ रहे छात्र और अध्यापकों की भी हत्या की। इस घटना का उल्लेख मिनहाज सिराज ने अपने ग्रंथ तबाकत-ए-नासिरी में किया है। इस तरह नालंदा और अन्य जगहों पर ध्वंसलीला करने के बाद खिलजी और उसकी सेना सन 1203 में बंग प्रदेश विजय अभियान के उद्देश्य से निकली। बंग प्रदेश के तत्कालीन सेनवंशीय राजा लक्ष्मणसेन को आसानी से परास्त कर वहाँ मुसलमान शासन की शुरुआत की गयी। इस विजय के बाद खिलजी ने वहाँ बहुत बड़ी मात्रा में मठ-मंदिरों को तोड़ा। बंग प्रदेश में आतंक फैलाने के बाद सन 1205 के अंतिम चरण में खिलजी ने बारह हजार अश्वारोही और कई हजार पदातिक सैन्य को साथ लेकर कामरूप के बीच में से होकर तिब्बत तथा दक्षिण-पूर्व एशिया विजय के उद्देश्य से कूच किया। बंग प्रदेश की तत्कालीन राजधानी लक्ष्मणावती के वर्धनकोट होकर खिलजी ने कामरूप में प्रवेश किया।

इस आक्रमण का पता चलते ही कामरूप के तत्कालीन राजा पृथु ने काफी बुद्धि लगाकर खिलजी और उसकी सेना को कामरूप के बीच में से होकर पूर्व की ओर स्थित अरुणाचल प्रदेश की पहाड़ियों की ओर चले जाने के लिये रास्ता बना दिया। उस तरफ जाते हुए रास्ते में बोर नदी पर पत्थरों से बने एक पुल को पार करना होता था। इस पुल की सुरक्षा के लिये खिलजी दो सेनापतियों के नेतृत्व में सेना की एक टोली को वही छोड़ गया। हमारे व्यक्तिगत रूप से किये गये क्षेत्र अध्ययन के अनुसार पत्थर का यह पुल बोर नदी पर कामरूप ज़िले के सांगसारी-मानेरी पथ पर था। अंग्रेज अधिकारी हानेइ ने अपने आलेख में इस विषय पर विस्तृत रूप से लिखा है। स्थानीय लोगों में यह भी किंवदंती प्रचलित है कि पत्थर के पुलवाले रास्ते का निर्माण प्राचीन काल में कामरूप के राजा नरकासुर ने उनकी राजधानी तक आने-जाने के लिये करवाया था। हम अपने अध्ययन के दौरान उस जगह के पास पत्थरवाले पुल के कई शिला व पत्थरों के अवशेष प्राप्त करने में भी सक्षम हुए।

मिनहाज सिराज के अनुसार पुल पार करके 15 दिनों की यात्रा के बाद उन लोगों ने एक पहाड़ के बीच स्थित एक नगर में प्रवेश किया। लंबी यात्रा से थकान से भरी खिलजी की सेना अपने पुराने अभ्यासानुसार वहाँ के स्थानीय निर्दोष लोगों पर टूट पड़ी और मार-काट, बलात्कार, लूट-पाट मचाना शुरू कर दिया। पहले से तैयार स्थानीय जनजातीय लोगों ने भी प्रत्याक्रमण करते हुए उन लोगों पर हमला बोल दिया। अचानक हुए ऐसे हमले के लिये वे तैयार नहीं थे और फलस्वरुप कई हजार सैनिकों की जान चली गयी। इस युद्ध में जान-माल की इतनी क्षति हुई कि खिलजी और उसकी सेना के अधिकारियों का मानसिक बल पूरी तरह से टूट गया।

इशके बाद खिलजी ने एक स्थानीय व्यक्ति को बंदी बनाकर पूछताछ की और पता चला कि दूसरे दिन फिर तलहटी के कर्मपर्तम (कुमारीकाटा) से पचास हजार लोग आकर सेना में भर्ती होने वाले हैं। पहले से ही डरी हुई खिलजी की सेना यह खबर सुनकर सुन्न पड़ गयी और अपनी हार स्वीकार करते हुए रातोंरात लौटने का उपक्रम करने लगी। उल्लेखनीय है कि जिन जनजातीय योद्धाओं ने खिलजी की सेना

को धूल चटाकर वापस लौटने के लिये मजबूर कर दिया, उन्हें महाराज पृथु ने ही अपनी युद्धनीति के तहत पहले से तैयार करके भेजा था। पराजित खिलजी सेना ने वापस आते हुए चारों तरफ नज़र दौड़ाया तो देखा कि रास्ते की दोनों तरफ जहाँ जाते समय पेड़-पौधे लगे हुए थे अब नहीं रहे, सब जला दिए गए। आस-पास के सारे गाँव भी खाली किए जा चुके थे। खिलजी की सेना को कमज़ोर करने के लिये महाराज पृथु ने यह तरीका अपनाया था, ताकि उनके तथा उनके घोड़ों के लिये खाने की कमी हो जाए और सैनिक भी भूख-प्यास से बेहाल होकर मर जाए। इस तरह महाराज पृथु के विचक्षण युद्ध कौशल के कारण खिलजी की सेना के अधिकतर घोड़ों के साथ-साथ सारे काबिल सैनिक तिल-तिल मरने लगे।

मिनहाज सिराज ने अपने ग्रंथ में उल्लेख किया है कि भूखे और थके हुए सैनिक घोड़े का कच्चा मांस खाकर खुद को जीवित रखने की कोशिश करते हुए बंगप्रदेश की ओर लौटने लगे। किंतु कामरूप पार करते हुए जगह-जगह पर बारी-बारी से कामरूपी सेना हमला बोलकर उनका वध करती रही। इस तरह खिलजी की सेना के बहुत-से सैनिकों ने अपनी जान गँवायी। बचे हुए लोग पत्थर के पुल तक पहुँचे तो देखा वहाँ सुरक्षा में तैनात गुट को महाराज पृथु की सेना ने मार डाला है और पुल भी तोड़ दिया है। बोर नदी की तेज धार को बिना पुल के पार करना संभव नहीं था। किंकर्तव्यविमूढ़ खिलजी की सेना नाव आदि के प्रबंध के बारे में सोच ही रही थी कि फिर से महाराज पृथु की दक्ष सेना का आक्रमण आरंभ हो गया जो कि पहले से भी और अधिक तीव्र था। मजबूर होकर खिलजी को फिर से भागना पड़ा। इस बार प्राणों की रक्षा के लिये उसने अपनी सेना सहित पुल की पूर्व दिशा की ओर स्थित एक बड़े मंदिर में आश्रय ग्रहण किया। हमारे द्वारा किये गये क्षेत्र अध्ययन से पता चला है कि जिस मंदिर में खिलजी ने शरण लिया था, वह बायहाटा चारिआलि में स्थित मदन कामदेव मंदिर ही था। उल्लेखनीय है कि अपने जीवनकाल में अनगिनत मठ-मंदिर तोड़ने वाला खिलजी अपनी प्राण रक्षा के लिये आखिरकार एक मंदिर में ही आश्रय लेता है। पर स्थानीय लोगों ने महाराज पृथु को इस बात की जानकारी दे दी। पता चलते ही उन्होंने अपने सैनिकों को मंदिर परिसर के अंदर खिलजी वाहिनी को न मारने का आदेश जारी किया। बल्कि मंदिर की चारों ओर बाँस के खूँटें से एक दीवार-सा बनाकर घेरे रखने का आदेश दिया और वे स्वयं ही उसकी देखरेख में लग गए। संभवतः वे मंदिर के अंदर शत्रु का वध करके मंदिर की पवित्रता नष्ट नहीं करना चाहते थे। आखिरकार भूख और प्यास से खिलजी और उसके बचे हुए सैनिक बेहाल होने लगे। निश्चित मृत्यु को सामने देखकर सैनिकों के बीच लड़ाई-झगड़े होने लगे। कुछ लोग मंदिर परिसर में ही रहना चाहते थे और कुछ वहाँ से भागना चाहते थे। इसी बीच खिलजी सेना की एक टोली तीव्र गति से आकर बाँस की दीवार तोड़कर बोर नदी की ओर बढ़ गयी और बाकी बचे सैनिक भी उनके पीछे भागने लगे। सभी लोग जाकर नदी किनारे इकट्ठे हुए और नदी पार करने के बारे में सोचने लगे। तभी पीछे से कामरूपी सेना का आक्रमण आरंभ हो गया। वीर योद्धाओं के धनुष से निकले अचूक बाण मुसलमान सेना की छाती छलनी करने लगे। यह आक्रमण वे रोक नहीं पाए।कोई उपाय न देखकर सैनिक घोड़े सहित नदी में कूद गये। कई तो डूबकर मर भी गये। कठिनाई से सौ सैनिक ही अपने सेनापति के साथ दूसरे किनारे पर पहुँचे। भारतीयों के लिये आतंक का कारण रह चुका शक्तिशाली बख्तियार खिलजी जैसे-तैसे खुद को बचाकर अधमरे हालत में देवकोट पहुँचा। पूरी घटनाक्रम में उसने जो भोगा उसकी याद और पराजय की ग्लानि ने उसको मानसिक रूप से पूरी तरह झकझोर दिया। कुछ दिन वह जीवित तो रहा पर बीमार पड़ गया।

इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने लिखा है कि कामरूप अभियान में हुए नुकसान और हार से खिलजी मानसिक रूप से टूट गया था। बीमारी की हालत में जब भी वह नगर की ओर निकलता था तो सैनिकों के परिवार के लोग उससे गाली-गलौज करने लगते थे और डरपोक कह कर उस पर व्यंग्य भी कसते थे। कुछ महीने के बाद सन 1206 के अंतिम भाग में अली मर्दानी खिलजी नामक एक व्यक्ति ने बख्तियार खिलजी की हत्या कर दी और बंग प्रदेश की राजगद्दी पर कब्जा कर लिया।

शक्तिशाली बख्तियार खिलजी को कामरूप में परास्त कर भारत में मुसलमान विजय अभियान की गति को रोकने में सक्षम होने के साथ-साथ महाराज पृथु ने कामरूप अथवा वर्तमान असम और पूर्वोत्तर को मुसलमान शासन के अंतर्गत शामिल होने से बचा लिया था। इसके अलावा उन्होंने पराक्रम व विचक्षण युद्ध कौशल से संपूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया तथा तिब्बत और चीन तक को इस्लामिक साम्राज्य के अंग होने से रक्षा की थी। हालाँकि ऐसा भी नहीं है कि बख्तियार खिलजी की हार देखकर दिल्ली और बंग प्रदेश के अन्य शासक ज्यादा दिनों तक असम पर आक्रमण करने से रुक गये हो। इस पर उनकी आँख बराबर लगी हुई थी क्योंकि कामरूप यानी असम से होकर हिमालय की दूसरी ओर स्थित देशों को जीता जा सकता था, जो कि उनलोगों का प्रधान उद्देश्य था। इसी के फलस्वरूप सन 1227 को एक बार फिर बंग सुलतान गियासुद्दीन इवाज ने अपनी विशाल सेना के साथ कामरूप पर आक्रमण कर दिया। इस बार मुसलमानआक्रांता नगाँव तक पहुँच गये और वहाँ के मठ-मंदिर तोड़ने लगे। एक बार फिर महाराज पृथु ने अपनी सेना के साथ शत्रु को चारों ओर से घेरकर आक्रमण कर दिया और इससे शत्रु के सैन्य बल का काफी नुकसान हुआ। बख्तियार खिलजी की ही तरह गियासुद्दीन ने भी कामरूप में अपने सैनिकों को खोया और जैसे-तैसे अपनी जान बचाकर बंग प्रदेश की ओर भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार महाराज पृथु ने कामरूप पर होनेवाले दूसरे आक्रमण को भी रोका और इतिहास के पन्नों पर अपना नाम स्वर्णाक्षरों से लिखकर अमर हो गये।

कामरूप में हुए बारंबार पराजय से चिढ़कर उसका बदला लेने

के लिये दिल्ली के सुलतान इल्तुतमिश के बेटे नसीरुद्दीन ने फिर सन 1228 में कामरूप पर आक्रमण किया। वर्तमान के पश्चिम बंगाल की जलपाईगुड़ी और बांग्लादेश के रंगपुर जिले के विभिन्न स्थानों पर मुसलमान आक्रांताओं और महाराज पृथु की सेना की भीषण लड़ाई हुई। इस लड़ाई में दोनों पक्षों को काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा। अंत तक आते-आते कामरूपी सेना कमज़ोर पड़ने लगी। सामने अपनी निश्चित हार जानकर महाराज पृथु ने आत्मसमर्पण करने से अच्छा अपनी मृत्यु को चुना। मुसलमान सेना के दुर्ग में प्रवेश कर बंदी बनाने से पहले ही कामरूप के इस महान वीर योद्धा ने राजप्रासाद के पास स्थित एक विशाल जलाशय में छलांग लगाकर जल समाधि ले ली। उनके साथ और भी कई सैनिकों ने अपने प्राणों कीआहूति दे दी।

मिनहाज सिराज ने उल्लेख किया है कि कामरूप के राजा पृथु ने एक लाख बीस हजार शत्रु सैनिकों का वध किया था। इस तथ्य से निश्चित हुआ जा सकता है कि वे एक पराक्रमी योद्धा होने के साथ-साथ एक बुद्धिमान व्यक्ति भी थे। उनकी वीरता का यह इतिहास असम के लोगों को सदैव उत्साहित करता आया था। तभी तो इससे प्रेरणा लेकर बाद के समय में कामरूप पर हुए अनेक विदेशी आक्रमणों का कामरूपी सेना ने अत्यंत साहस के साथ सामना किया और उसमें विजय पाने में सफल भी हुए।

शक्तिशाली विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिये उस समय असम की जनसंख्या तथा सामरिक शक्ति काफी नहीं थी। किंतु फिर भी महाराज पृथु की युद्ध निपुणता और लोगों को उत्साहित कर सकने की नेतृत्वशक्ति के कारण ही बख्तियार खिलजी के बारह हजार से भी अधिक अश्वारोही सैनिक कामरूप आकर धूल में मिला दिये गये थे। अपने क्षेत्र अध्ययन के दौरान कानाई बोरोशी बोवा शिलालेख के एकदम नजदीक वहाँ उकेरे हुए एक चक्रव्यूह पर हमारी नजर पड़ी थी। इस चक्रव्यूह के साथ निश्चय ही उस शिलालेख का कोई संबंध होगा। संभव है कि बख्तियार खिलजी को परास्त करने के लिये राजा पृथु तथा कामरूप के लोगों ने चक्रव्यूह की तरह कोई अनोखे युद्ध कौशल का उपयोग किया हो। मिनहाज सिराज के ग्रंथ 'तबाकत-ए-नासिरी' में उल्लेखित बख्तियार खिलजी का कामरूप अभियान और भयंकर पराजय के वर्णन के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि तत्कालीन कामरूपी राजा पृथु और उनकी सेना ने आजकल की भाषा में गुरिल्ला युद्ध कौशल अपनाया था। यही कारण था कि खिलजी सेना संख्या में अधिक और अधिक शक्तिशाली होने के बाद भी मात खा गयी थी और कामरूपी सेना की जीत हुई थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य,एन.एन.,द हिस्ट्री ऑफ मेडिवल आसाम (पुनर्मुद्रण), ऑमसन प्रकाशन, गुवाहाटी,1992
2. खान, एम.एम., द मुस्लिम हेरिटेज ऑफ बंगाल. कूब प्रकाशन लिमिटेड, यूनाइटेड किंगडम, 2013
3. गेट, ई.ए., ए हिस्ट्री ऑफ आसाम (पुनर्मुद्रण), लॉयर्स बुकस्टॉल, गुवाहाटी, 1997
4. ग्रूनिंग, जे.एफ., ईस्टर्न बेंगाल एंड आसाम डिस्ट्रिक्ट गैज़ेटर्स: जलपाईगुड़ी, पायोनियर प्रेस, इलाहाबाद, 1911
5. ग्लेज़ियर, ई.जी., ए रिपोर्ट ऑन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ रंगपुर, कलकत्ता सेंट्रल प्रेस कों, कलकत्ता, 1873
6. चौधुरी, पी.सी., द हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन ऑफ द पीपल ऑफ आसाम टू द ट्वेल्व सेंचुरी ए.डी. (संस्करण-3), स्पेक्ट्रम प्रकाशन, गुवाहाटी,1987
7. डॉमेंट, जी. एच.," नोट्स ऑन शाह इस्माइल ग़ाज़ी, विथ एस्कैट्स ऑफ द कॉटेंस ऑफ एपर्शियन मैनुस्क्रिप्ट 'रसातल-उश-शुहादा' फाउंड एट कांता दुवाररंगपुर". जर्नल ऑफ द एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बेंगाल, वोल्यूम-XLII, सी.बी. लेविस बैप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, 1874
8. दवसन, जे., हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्डबायइट्स ओन हिस्टोरियन्स. ट्रबनयर एंडकों, लंदन, 1869
9. दिवाकर, आर,आर., बिहार थ्रूदऐजेस, ओरियंटलोंगमेंस, नई दिल्ली,1959
10. बरपुजारी, एच.के., कॉम्प्रिहेंसिव हिस्ट्री ऑफ आसाम, वोल्यूम : I, पब्लिकेशन बोर्ड, गुवाहाटी, 1990
11. बरूआ, बी.के., एकल्चरल हिस्ट्री ऑफ आसाम (अर्लीपीरियड), संस्करण-दूसरा, लोयर्स बुकस्टॉल, गुवाहाटी, 1969
12. भट्टाचार्य, एस.एन., मुगल नोर्थ ईस्ट फ्रंटियर पॉलिसी. डी.बी. टैराप्रिवालासन्सकों, बॉम्बे (मुम्बाई), 1929
13. मिनहाज-ए-सिराज, तबाकत-ए-नासिरी. गिल्बर्ट एंडरॉविंगटोन, लंदन, 1881, (मौलिक पर्शियन लेख सन 1864 में कलकत्ता से छपा था और मेजर एच.जी. रॉबर्टी द्वारा सन 1881 में अंग्रेजी में अनुवाद किया गया था)
14. मोंगमोरी, मार्टिन. द हिस्ट्री, एंटिक्यूटिज, टॉपोग्राफी एंड स्टेटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इंडिया. वोल्यूम-III, डब्ल्यू.एच. एलेन एंडकों, लंदन, 1838

एसिस्टेंट प्रो. हिन्दी विभाग, हैंडिक बालिका महाविद्यालय, गुआहाटी
एसोसिएट प्रो. इतिहास विभाग, गड़गाँव महाविद्यालय, गुआहाटी

भारतीयता का प्राणतत्व : रामभक्ति काव्य

- डॉ. चंदन कुमारी

"राम ब्रह्म हैं, अवतार हैं और मनुष्य रूप में भी हैं। राम एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति का नाम है जिसकी छत्रछाया में कोई प्राणी कभी भी नहीं अकुलाता है, सभी एक असीम निश्चिंतता के अहसास में डूबे रहते हैं। जब जब अनीति का कोहराम मचता है, मर्यादा का हनन होता है, तब तब धर्म और नीति की स्थापना के लिए वही आध्यात्मिक शक्ति मनुष्यों के बीच मनुष्य रूप में उनके हितार्थ आती है। तुलसी के राम धरती पर आते हैं और मनुजत्व को आत्मसात कर लौकिकता के संपादन में निमग्न हो जाते हैं।"

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समादृत कालजयी रामकथा जो साहित्य की विविध विधाओं में, लोक के अंग-प्रत्यंग में, शिक्षण के सभी स्रोतों और माध्यमों में तनिक फेर बदल के साथ समाकर निरंतर गतिमान है। जिससे चिरंतन सत्य को आत्मसात करने की ओर जनमानस का रुझान बढ़ा है। राम भक्तिकाव्य में भारतीयता का प्राणतत्व समाया हुआ है जो समाज में इसकी अनिवार्यता को स्थापित करते हुए, इसके प्रति सामाजिक-सांस्कृतिक जागरूकता एवं वैचारिक प्रगतिशीलता के उन्नयन का मार्ग भी प्रशस्त करता है। यह वह काव्य है जिसमें भूमिजा को जानकी बनाकर हृदयासन पर विराजित किया जाता है। जानकी के शुभागमन से जनकपुर में उल्लास छा जाता है। भूमिजा आत्मजा-सा मान पाती है। पुत्र जन्म पर ब्रह्मानंद की अनुभूति करने वाले समाज में एक रामभक्त कवि हुए 'नाभादास' जिन्होंने जानकी के जन्म की बधाई गाई है। "जानकी जन्म बधाई पद संग्रह" के नाम से इनकी एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास खंड-5 में किया गया है। पुत्र जन्म पर थाल बजाकर नृत्य करनेवाले समाज में पुत्री के जन्म की बधाई गाना, भूमिजा के जन्म की बधाई गाना कितना अद्भुत है। ऐसी और बहुत सारी अद्भुतताओं को अपने में समेटे हुए है यह राम भक्तिकव्य जिन्हें जानना और समझना सफल जीवन के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। रामभक्त कवि कहते ही आँखों के आगे गोस्वामी तुलसीदास की छवि साकार हो जाती है। इनकी कुल बारह रचनाओं में एक 'कृष्ण गीतावली' को छोड़कर सभी रचनाएँ राम चरित केंद्रित हैं जिनमे सर्वाधिक प्रभावशाली और व्यापक प्रसार वाला ग्रंथ 'रामचरितमानस' है। इनकी सभी कृतियों का उल्लेख करते हुए पं रामगुलाम द्विवेदी ने एक छंद बनाया था जो यहाँ उद्धृत है, देखें–

"रामललानहछू त्यों विराग संदीपनी हूँ,
बरवै बने बिरमाई मति साई की।
पारबती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाई की।।
दोहा औ कवित्त गीतबंध कृष्ण राम कथा,
रामायन बिनै मांहि बात सब ठाई की।
जग में सोहानी जगदीश हू के मनमानी,
संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाई की।।"[1]

गोस्वामी तुलसीदास रामभक्त कवियों के सिरमौर हैं और रामचरितमानस राम भक्तिकाव्य के रूप में विश्वव्यापी है। तुलसीदास के समकालीन रामकथा को केंद्र में रखकर साहित्य सृजन करनेवाले कुछ और कवि हुए जिनमें मुख्य हैं अग्रदास, सेनापति, नाभादास, ईश्वरदास,

हृदयराम, प्राणचंद चौहान, केशवदास इत्यादि। कुछ कृष्णभक्त कवियों की भी रामकथा केंद्रित रचनाएँ मिलती हैं, जैसे– विद्यापति, सूरदास, नंददास, परमानंददास, गोविंदस्वामी, हितहरिवंश, रहीम इत्यादि। यहाँ तक कि मीराबाई जो कृष्ण विग्रह में प्रेममग्न होकर विलीन हो गईं थी उनके राम नाम वाले कई पद प्राप्त होते है। यह केवल मीरा द्वारा कृष्ण रूप में राम तत्व की उपासना का सूचक भर नहीं है वरन परमशक्ति के वैविध्यपूर्ण नाम–रूपों की तात्विक एकता का द्योतक भी है।

"राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ बाटडियां।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पडत हैं आँखडियाँ।
तलफत-तलफत बहु दिन बीता, पड़ी विरह की पासडियाँ।
अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुम्हारी दासडियाँ।"

सावित्री सिन्हा ने अपने ग्रंथ 'मध्यकालीन हिंदी कवयित्रियाँ' में रामकथा संबंधी सृजन करनेवाली कवयित्रियों का भी विवरण देकर इस क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति दर्ज कराई है।

इस लोक की आत्मा भक्ति और भजन में बसती जान पड़ती है। अतः इन्हें तो नकारा नहीं जा सकता है। तभी भक्ति की प्रतिष्ठा करते हुए शंकराचार्य ने कहा-

"भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढ़मते।
संप्राप्ति सन्निहिते काले नहिं नहिं रक्षति डुकृञ करणे ।।"

स्वामी रामानंद कहते हैं-

"नारी सेती नेह लगायौ। कबहुँ हिरदै राम नहिं आयौ ।।
स्वारथ माहिं चहूँ दिसि धायौ। गोविंद कूं गुण कबहुँ न गायो।।"

भजन की महत्ता प्रतिष्ठापित करनेवाली इन पंक्तियों में लोकव्यवहार की रीति के साथ ही लोकचित्त में समाई पारलौकिक कामना भी अभिव्यक्त हो रही है जिसकी प्राप्ति का सहज माध्यम भजन है। भजन लोक द्वारा लोक में संपादित सहज धार्मिक क्रिया है केवल जीभ से रटते रहना ही काफी नहीं है। भजन उसका सफल है जिसका अंतःकरण निर्मल है, जो बाहर और भीतर से एक हो, ऐसे ही निर्मल अन्तःकरण में राम का वास संभव है। इष्ट राम का निवास स्थान जब इन्सान का हृदय हो जाता है तब मनुष्य अपने भीतर के राम में ही रमा रहता है और सब राममय ही दिखता है। राम एक नितांत सादा शब्द जिसके उच्चारण मात्र से प्राणी दिव्यानुभूति से अभिभूत हो जाता है। सहसा ही अनेक छवियाँ मानस पटल पर उभर आती हैं और एक भ्रम उत्पन्न होता है। एक जिज्ञासा और कौतुहल से प्राणी भर जाता है। इस भ्रम की भी अपनी महत्ता है। इसी भ्रम के फेरे में पड़कर जगतजननी माँ पार्वती ने भोलेनाथ से कुछ प्रश्न पूछे थे जो निम्नवत हैं–

"प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुं ब्रह्म अनादी।
सेस सारदा बेद पुराना। सकल कहहिं रघुपति गुन गाना।
तुम्ह पुनि राम-राम दिन राती। सादर जपहुँ अनंग आराती।
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई।
जौ नृपतनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरी ।।"

माँ पार्वती कहती हैं, "ज्ञानी जन तो राम को ब्रह्म और अनादि मानते हैं। सभी उनका गुण गान करते हैं। आप भी उनका नाम रटते नहीं थकते। ये राम अगर राजा के पुत्र हैं तो अजन्मे कैसे और अगर ये अज हैं, ब्रह्म हैं तो फिर नारी विरह में व्याकुल सामान्य मनुष्य सा इनका आचरण क्यों है?"

उनके प्रश्न का उत्तर देते हुए भोलेनाथ कहते हैं, "इस तरह के भ्रम राम की कृपा के बिना नहीं मिटते हैं। राम वही हैं जिनका न आदि है न अंत है, जिनके सारे कार्य अलौकिक हैं जो बिना ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के भी समस्त कार्यों को संपादित करते हैं वही ब्रह्म राम अपने भक्तों के हितार्थ दशरथ पुत्र बनकर आए हैं।"

"जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोई कृपाल रघुराई ।।
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा।।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना।।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।
असि सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।
जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहिं धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान।।"

राम ब्रह्म हैं, अवतार हैं और मनुष्य रूप में भी हैं। राम एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति का नाम है जिसकी छत्रछाया में कोई प्राणी कभी भी नहीं अकुलाता है, सभी एक असीम निश्चिंतता के अहसास में डूबे रहते हैं। जब जब अनीति का कोहराम मचता है, मर्यादा का हनन होता है, तब तब धर्म और नीति की स्थापना के लिए वही आध्यात्मिक शक्ति मनुष्यों के बीच मनुष्य रूप में उनके हितार्थ आती है। तुलसी के राम धरती पर आते हैं और मनुजत्व को आत्मसात कर लौकिकता के संपादन में निमग्न हो जाते हैं।

"जब जब होइ धरम की हानि। बाढहिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहीं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीड़ा।।"

राम की दैवी अवधारणा एवं उनकी अलौकिकता को अनुभूत करनेवाले भक्तकवियों का अभीष्ट राम भक्तिकाव्य के माध्यम से लोकजीवन के गूढ़ एवं मार्मिक सत्यों का साक्षात्कार करने के साथ उन्हें उद्घाटित करना रहा है। राम भक्तिकाव्य एक साधना है- मनुष्यता की साधना, सहअस्तित्व की साधना, अपनत्व और प्रेम की साधना, अनाचार एवं अराजकता के अंत की साधना; जिसे राम ने साधा। उसे

उसकी पूर्णता में साधा। सबके सहयोग के साथ साधा। बाधाओं से लोहा लेते हुए साधा। विधर्मियों को संस्कारित करते हुए साधा या फिर उन्हें नाकों चने चबबाते हुए साधा। यह साधना इसलिए नहीं सध पाई कि वे अवतार है। भला अवतार को संघर्ष कहाँ करना पड़ता है! दुविधा कहाँ झेलनी पड़ती है! पीड़ा कहाँ सहना पड़ता है! वह तो चुटकियों में विषम परिस्थितियों से निकल सकता है। राम ने साधारण मानव के जीवन को स्वीकारा, संघर्ष को स्वीकारा, दुविधाओं को झेला और पीडाओं का वरण किया। ऐसा करते हुए उन्होंने 'अप्पदीपो भव' (अपना दीपक आप बनो) का मार्ग प्रशस्त किया और साधारण के लिए असाधारण की साधना सहजता से सर्व सुलभ हो गई।

इस संदर्भ में 'पथ के साथी' में उल्लिखित रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विचार बड़े सटीक लगते हैं। रवीन्द्र कहते हैं, "मैं उस पुरातन युग का स्मरण दिलाता हूँ जब प्रकृति भीमकाय जीवों (राक्षसों) को जन्म देती थी। उस समय कौन साहसी यह विश्वास कर सकता था कि उन भीषण दानवों का विनाश संभव है, किंतु उसके उपरांत एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। अचानक शारीरिक विशालता के निशोत्सव में मानव-निःशस्त्री, असहाय, नग्न और कोमलकाय मानव प्रकट हुआ। उसने अपनी शक्तियों को पहिचाना और बुद्धि बल से जड़ सत्ता का सामना किया। दुर्बल शरीर वाला मनुष्य भीमकाय दानवों पर विजयी हुआ।"[2] रवींद्रनाथ ठाकुर के ये विचार मानवीय आत्मा की जयघोष का सूचक हैं। इस सूरत में अप्राप्यता और अकर्मण्यता का अवकाश ही समाप्त हो जाता है। लोक में निहित आस्था, विश्वास, त्याग, समर्पण और प्रेम को उजागर करते हुए राम भक्तिकाव्य वसुधैव कुटुंबकम का प्रेरक और सर्वहिताय की भावना से परिपूर्ण नजर आता है। सर्वहित हेतु आत्मोत्सर्ग को तत्पर प्राणियों की अभिलाषा को गुप्त जी के शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं, "अर्पित हो मेरा मनुज काय / बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।" राम ब्रह्म हैं, आध्यात्मिक सत्ता भी हैं और इन सबसे इतर इस लोक के एक सामान्य प्राणी भी; जिन्होंने अपने जीवन काल में अनेकानेक महत्तर और लोकहितकारी उद्देश्यों की पूर्ति की और अंतिम समय में अयोध्या के गुप्तार घाट में जल समाधि लेकर पुनः अपने लोक में चले गए।

'राम' शब्द का स्पष्टीकरण करने के पश्चात् बारी आती है दूसरे शब्द 'लोक' की जिनसे राम का गहरा नाता रहा है और जो अनजाने ही हमसे छूटा जा रहा है। 'लोक' यह शब्द सबसे पहले पिछड़े समाज एवं संस्कृति का बोधक बना, उसके बाद यह आदिम जातियों के साथ जुड़ा पुनः कुछ समय पश्चात इसका अर्थ ग्रामीण जनसमुदाय हुआ। इनसाइकलोपीडिया ब्रिटैनिका में भी फोक (folk) का यही अर्थ दिया हुआ है परंतु त्रिलोचन पाण्डेय के अनुसार 'लोक मनोवृत्ति वाले समुदाय यदि एक ओर ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं तो दूसरी ओर वे नगरों में भी विद्यमान रहते हैं'। इस तथ्य का उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'लोकसाहित्य का अध्ययन' (पृ.103) पर किया है। यानी गाँव के बाहर भी एक लोक है। इसी संदर्भ में प्रो. एलेन डंडेस फोक को व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं, "The term folk can refer to any group of people whatsoever who share at least one common factor. It does not matter what the linking factor is – It could be a common occupation, language or religion. But what is important is that a group formed for whatever reason will have some traditions which it calls its own."[3] अर्थात फोक शब्द मनुष्यों के किसी भी ऐसे समूह का द्योतक हो सकता है जिसमें समानता का कम से कम एक आधार हो। वह समान आधार उसका कोई एक व्यवसाय हो सकता है, उसकी कोई एक भाषा हो सकती है, उसका कोई एक धर्म हो सकता है। परंतु अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समूह की कुछ अपनी निजी परंपराएँ हों।....ऐसे समूह में मनुष्यों का एक दूसरे से परिचित होना उतना आवश्यक नहीं है। जितना अपनी उन परंपराओं से परिचित होना जो समूह को एकता के सूत्र में बांधे रखती हैं। लोक को व्याख्यायित करते हुए डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, "लोक का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता-सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए आवश्यक वस्तुएं उत्पन्न करते हैं।"

आभिजात्य वर्ग को लोक से भिन्न रखनेवाली लोक की अवधारणा तनिक संकुचित प्रतीत हो रही है कारण कि आभिजात्य वर्ग भी लोकतत्वों से अछूते नहीं है। वे भी समय व परिस्थिति के अनुसार लोककथन, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। लोक विश्वासों में उनकी आस्था होती है और लोकरीति तथा लोक परंपराओं का निर्वाह भी उनके द्वारा बखूबी किया जाता है। अतः समस्त मानव समूह को यदि लोक का अंग मान लिया जाए तो भी कुछ अनुचित न होगा। त्रिलोचन पाण्डेय ने लोक को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखते हुए उसे "लोकमानस का प्रतिनिधि"[4] कहा है। उनके अनुसार लोकमानस वह मानसिक स्थिति है जो आज आदिम मानस की परंपरा में है, उसी का अवशेष है। आज के सभ्य समाज के मानसिक स्वरूप में इसे सबसे नीचे का धरातल माना जा सकता है। लोकमानस का स्तर प्रत्येक मनुष्य के भीतर विद्यमान रहा है, इस तथ्य को अब प्रायः सभी विद्वानों ने स्वीकार लिया है। केवल उसकी अभिव्यक्ति कहीं अधिक होती है तो कहीं कम होती है। आदिम जातियों में उसकी अभिव्यक्ति सर्वाधिक मानी जा सकती है। ग्रामीण समाजों में उसकी अभिव्यक्ति कम होती है तथा नागर समाजों में वह अभिव्यक्ति गौण हो जाती है।

अतः संपूर्ण मानव समाज को ही लोक कहना मान्य होगा। 'लोक'

शब्द की इस विशिष्ट स्थिति को भांपते हुए राबर्ट रेडफील्ड ने एक शब्द गढ़ा 'लोक समाज'। उनकी इस 'लोक समाज' की अवधारणा को कुछ विद्वानों ने एकांगी कहा तो कुछ लोगों ने आदर्श कल्पना मात्र फिर भी लोक विश्लेषण के संदर्भ में इस अवधारणा की अपनी महत्ता है। राबर्ट रेडफील्ड के शब्दों में इसकी निजी विशिष्टताएँ देखें- जातीय आचार-विचारों में समरूपता, उसके निर्माण तंतुओं का अन्योन्याश्रित संबंध, वैयक्तिक संबंधों की निकटता, सरल तकनीकी विधान, श्रम का विभाजन कम से कम होना, सामाजिक संस्थाओं में परिवार की महत्ता, आचरण संबंधी नियमों का परंपरित होना, धर्मपरायणता, विकसित अनुष्ठान, लोगों की इच्छा-आकांक्षाओं की स्पष्ट अभिव्यक्ति, आपेक्षिक स्थिरता, परिवर्तन की धीमी गति, जीवन प्रणाली की एकसूत्रता और रीति रिवाजों से बद्ध मानव स्वभाव। इस रूप में लोक के विस्तृत फलक का विकल्प हमारे समक्ष है।

रामायण में मानव समाज, कपि समाज, दानव समाज, जलचर समाज, नभचर समाज, रीछ समाज, देव समाज, किन्नर समाज इत्यादि का उल्लेख है। इन सभी प्राणी समूहों में निहित लोक संदर्भ को उजागर करने हेतु ही लोकजीवन के हर छोटे-बड़े पहलुओं के साथ जुडी अनेकानेक परंपराओं , प्रथाओं, रीति-रिवाजों, मिथकों, पर्वोत्सवों एवं लोक आस्था और विश्वास का अध्ययन एवं संग्रहण अति आवश्यक है।

लोक की सादगी, भोलेपन और अपनेपन को पिछड़ेपन का पर्याय बताना हास्यास्पद है। लोक की छोटी और महत्वहीन प्रतीत होनेवाली बातें ही जीवन में वास्तविक रस भरती हैं। गँवई गाँव का होने से कोई पिछड़ा नहीं हो जाता। इसका प्रमाण है अयोध्या के राज समाज का वन निवासी कोल-किरातों द्वारा किया गया भव्य आतिथ्य। जो ही उन्हें सुलभ था वह दिल खोलकर अतिथियों को दिया, कोई संशय नहीं और ना ही कोई दुराव-छिपाव। असली सभ्यता-संस्कृति और आधुनिकता का सारा निचोड़ इस दिल जीत लेनेवाले खुलेपन में छिपा है। अभावो से घिरे लोक में भी अदम्य जिजीविषा का भाव है, कर्तव्य के निर्वहन का अपार उत्साह है। लोक का बाह्य सर्वविदित है पर इसका अंतस सीपी का मोती है जो ढूंढनेवाले को ही मिलता है। लोक के इन दोनों ही पहलुओं को समेटने की चेष्टा राम भक्तिकाव्य में दिखाई देती है। हृदयराम भल्ला के हनुमन्नानाटक का एक पद है, देखें-

"जानकी को मुख न विलोकयो ताते कुंडल,
न जानत हौं, वीर पांय छुवै रघुराइ कै।
हाथ जो निहारे नैन फुटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सतभाइ के।
पाँयन के परिबे को जाते दास लक्ष्मण,
यातें पहिचानत हैं भूषण जे पांय के।"

लक्ष्मण सीता के निकट रहते हैं लेकिन आभूषण सिर्फ उनके पांवों

संतान माता-पिता की भक्ति करने लगे, उनसे सच्चा प्रेम करने लगे और अपनी व्यस्तता से कुछ क्षण उनकी तरफ देखकर मुस्कुराने के लिए निकाल सके तो फिर वृद्धाश्रम में खचाखच भीड़ नहीं होगी। पर आज वहां भीड़ है! सिर्फ वही नहीं, हर कहीं भीड़ ही भीड़ है और इस भीड़ में अपनों की पहचान गुम है, अपनत्व गुम है। असंवेदनशीलता की इस दारुण स्थिति में राम भक्तिकाव्य में उद्घाटित आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम की उपयुक्तता की मनोवैज्ञानिक उपयोगिता सिद्ध हो रही है। राम भक्तिकाव्य लोक के हर उस प्राणी का ध्यान लोक की सहज स्मृतियों एवं सहजात मानवीय प्रवृत्तियों की ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखता है जो आधुनिकता एवं औद्योगिकता की चकाचौंध में इन्हें विस्मृत करते जा रहे हैं।

का ही पहचानते हैं; कारण कि रोज चरण स्पर्श के समय उन्हें वे देखते थे। आज इस व्यवहार को पिछड़ापन कहा जा सकता है। इसे भारतीय संस्कृति में संबंध के सम्मान और व्यवहार की मर्यादा से जोड़कर भी देखा जाना चाहिए। राम भक्तिकाव्य में मर्यादा का निर्धारण स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समरूपता से किया गया है। तुलसी के राम कहते हैं-

"एक नारि व्रत रत सब झारी।
ते मन बच क्रम पति हितकारी ।।"

स्त्री संदर्भ में तो कल्पित सांस्कृतिक भ्रमों की भरमार है जिसका निराकरण अत्यंत आवश्यक है। आदर्श स्त्री की समाज द्वारा कल्पित छवि कुछ इस तरह है– एक स्त्री जो चुप रहे, घर की दहलीज के भीतर रहे, अपनी इच्छाओं को मसलने की कला में निपुण हो, हर जोड़-जुल्म को सहती रहे- वही आदर्श स्त्री छवि है। आज भी यह बचपन से घुट्टी की तरह पिलाया जाता है सामान्य पारंपरिक परिवारों में (इस संदर्भ में प्रबुद्ध वर्ग की मानसिकता जरुर बदली है पर जिन्हें बदलने की जरूरत है उनकी भी तादाद कम नहीं है)। इस छवि को सीता या अन्य तेजस्विनी स्त्रियों का नाम दिया गया। इस नामकरण के समय लोग भूल गए; सीता के असल अस्तित्व को! भूल गए कि सीता किस हस्ती का नाम है! सीता चुप्पी का नहीं, चपलता का नाम है! जिज्ञासा का नाम है! दयालुता का नाम है! निर्भीकता का नाम है! अनजानों से आत्मीयता के स्थापन का नाम है! प्रेम की निर्मलता का नाम है! बहनापा का नाम है! विपरीत परिस्थितियों में निर्णय लेने के बेपरवाह साहस का नाम है! एक आत्मविश्वासी, तेजस्विनी और स्वाभिमानी वीरांगना का नाम है सीता! शक्ति ही शिव को भी शिव बनाती है। स्त्रियों की तेजस्विता विश्व संस्कृति में स्वीकार्य है। इनका सम्मान जहाँ श्री और समृद्धि लाता है वहीँ इनका अपमान विनाश का सूचक है। द्रौपदी का चीरहरण न होता

तो महाभारत विस्तार नहीं पाता और लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की नाक नहीं काटी जाती तो रामकथा का विस्तार भी इस रूप में नहीं होता। फिर वही तर्क-

"होइहि सोई जो राम रचि राखा।
को करि तरक बढ़ावहिं साखा ।।"

रावण द्वारा परस्त्रीहरण भी उसके लिए मृत्यु का खुला आवाहन था। जिसके नाभिकुंड में अमृत का वास हो, वह रावण राम के हाथों मुक्ति पाना चाहता था वह भी अकेले नहीं सभी के साथ। वह चाहता तो आसानी से राम के समक्ष अपना शीश नवा सकता था पर इसमें भी एक दुविधा थी कि वह अपने शिव प्रदत्त शीशों को राम के चरणों पर नत कैसे करे! उसकी इस दुविधा को सूरदास लिखते हैं, "मैं पायो शिव को निरमायल, सो कैसे चरण छुआऊँ।" सूर के राम विषयक पदों और तुलसी की चौपाई के माध्यम से रावण की रामनिष्ठा सिद्ध होती है।

यहाँ लोकमान्यताओं का विस्तार भी द्रष्टव्य है। माना जाता है कि काशी शिवकृपा से मुक्तिदायिनी है। अग्रदास की ध्यानमंजरी में सरयू नदी को भवसागर पार करने का उत्तम साधन कहा गया है, देखें–

"निकटहिं सरजू सरित धरे अस उज्ज्वल धारा।
भवसागर को तरन विदित यह पोत उदारा।"

सरयू की महत्ता इसके किनारे बसे अयोध्या से है, वह अयोध्या जहाँ समष्टि हेतु व्यष्टि सर्वस्व समर्पण को सदैव तत्पर है। 'अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोरि बराबरि दाया' के आधार पर यहाँ भक्ति भावना के लिए निःस्वार्थ प्रेम ही सर्वोपरि और सर्वस्व है। राम की समदर्शिता के समक्ष किसी आडंबर और प्रपंच की भला क्या बिसात! यज्ञ और पूजा का भी एक कर्मकांडी विधान है और एक भावनात्मक विधान जिसमें पंचोपचार और षोडशोपचार के बिना भी इष्ट का सामीप्य और उनकी कृपा सुलभ होती है। यहाँ वृक्ष, पशु, नदी, पर्वत, सागर इत्यादि के लिए जो पूजा का विधान किया गया है उसके पीछे पर्यावरण चेतना कार्य कर रही है जो इनके संरक्षण एवं संवर्धन से जुडी हुई है। यज्ञ और पूजा में दी जानेवाली पशु बलि से आशय वस्तुतः मानव की भीतरी पशु प्रवृत्ति की बलि से संबंधित है न कि मूक निरीह पशुओं की बलि से। इन तथ्यों की पुष्टि के साथ ही इस ग्रंथ में रक्त संबंधों की महत्ता के साथ भाव संबंधों की विशिष्टता को भी उकेरा गया है। समस्त रक्त संबंधों का आधार स्तभ 'परिणय सूत्र' भी एक भाव संबंध है। राम, सीता, जटायु, शबरी, हनुमान,त्रिजटा सहित कई चरित्रों ने इस भाव संबंध का सफलतापूर्वक पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह किया है। पुत्रीवत सीता की रक्षा हेतु जटायु ने अपने प्राण गँवा दिए।

"सीते पुत्री करसि जनि त्रासा। करिहऊँ जातुधान कर नासा।।" यह कहते हुए वह टूट पड़ा रावण पर। दशरथ कहते हैं, "बधू लरिकनी पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाई ।।" वन में अयोध्या समाज के आने पर सीता का माताओं के प्रति व्यवहार अनुकरणीय है, "सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई।।" संबंध प्रेम की डोर से बंधे हों तभी बिना शिकन के निभते हैं। राजतिलक की बात कर पिता-माता ने वन जाने को कह दिया और संतान सहर्ष स्वीकार लेता है। वह प्रतिपक्ष बनाकर राज छीनने का प्रक्रम नहीं करता। जिसे उनका साथ चाहिए वे भी वल्कलधारी बनकर वनमार्गी हो जाते हैं। ऐसी ही संतान के वियोग में पिता के प्राण छूट जाते हैं। माता पिता की भक्ति करनेवाली संतान ही माता-पिता को प्राणप्रिय होती है, रामचरितमानस में उल्लेख है–

"एक पिता के विपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा ।।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ।।
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई ।।
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा ।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भांति अयाना ।।"

संतान माता-पिता की भक्ति करने लगे, उनसे सच्चा प्रेम करने लगे और अपनी व्यस्तता से कुछ क्षण उनकी तरफ देखकर मुस्कुराने के लिए निकाल सके तो फिर वृद्धाश्रम में खचाखच भीड़ नहीं होगी। पर आज वहां भीड़ है! सिर्फ वही नहीं, हर कहीं भीड़ ही भीड़ है और इस भीड़ में अपनों की पहचान गुम है, अपनत्व गुम है। असंवेदनशीलता की इस दारुण स्थिति में राम भक्तिकाव्य में उद्घाटित आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम की उपयुक्तता की मनोवैज्ञानिक उपयोगिता सिद्ध हो रही है। राम भक्तिकाव्य लोक के हर उस प्राणी का ध्यान लोक की सहज स्मृतियों एवं सहजात मानवीय प्रवृत्तियों की ओर आकृष्ट करने की क्षमता रखता है जो आधुनिकता एवं औद्योगिकता की चकाचौंध में इन्हें विस्मृत करते जा रहे हैं। लोक की विस्मृति जीवन से विस्मृति है! अपने अस्तित्व से विस्मृति है! इसी जीवन को सँजोने-संवारने की कवायद है राम भक्तिकाव्य से निःसृत लोक जीवन के इन सूत्रों में भारतीयता का प्राणतत्व समाया हुआ है।

संदर्भ सूची :

1. शर्मा देवेंद्रनाथ, विजयेंद्र स्नातक, (वि.सं 2031), हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास खंड-5, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा, पृ 289
2. वर्मा महादेवी, (1956), पथ के साथी, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ.16 डंडेस, प्रो. एलेन.द स्टडी ऑफ फोकलोर, पृ.2
3. पाण्डेय, त्रिलोचन.(1978), लोकसाहित्य का अध्ययन, इलाहबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृ 111

हिन्दी उपन्यास और 1857 का संघर्ष

डॉ. उन्मेष कुमार सिन्हा

"हिन्दी उपन्यासों से 1857 की क्रान्ति के चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अब तक के उपन्यासों से यह बात स्पष्ट होती है कि उस क्रान्ति का जन्म सामन्त-सैनिक वर्ग के भीतर ही हुआ था न कि आम जनता के बीच। यह ज़रूर है कि थोड़ी ही देर में उसकी व्याप्ति चतुर्दिक हो गयी। कुछ स्थानों पर जन सामान्य की पूरी भागीदारी बनी तो कुछ स्थानों पर नहीं बनी। यानी अलग-अलग क्षेत्रों-स्थानों पर उस क्रान्ति का चरित्र अलग-अलग था। उसे समझने के लिए कोई एक सामान्य फ्रेम नहीं बनाया जा सकता। यह भी सच है कि उस क्रान्ति के तमाम पक्ष अभी भी धुँधलके में हैं, जिन्हें उजागर करने के लिए और औपन्यासिक कृतियों की आवश्यकता है।"

साहित्य इतिहास नहीं होता, लेकिन इतिहास से अधिक विश्वसनीय होता है। इतिहास का सम्बन्ध नाम और तिथि के रूप में घटना के स्थूल आकार से अधिक होता है, जबकि साहित्य का सम्बन्ध उससे जुड़ी संवेदना-अनुभूति से अधिक होता है। तथ्य को पार कर सत्य का अन्वेषण इसी संवेदना-अनुभूति के आधार पर सम्भव है। इसीलिए साहित्य हमें सबसे अधिक सच के करीब ले जाता है। साहित्य में भी उपन्यास अपने विधागत वैशिष्ट्य के चलते यह काम अधिक कर पाता है। उपन्यास एक समानान्तर संसार होता है, जिसमें एक पूरा कालखण्ड रूपायित होता है। इसी अर्थ में राही मासूम रज़ा ने अपने उपन्यासों को समय की कहानी कहा है। इस रूप में उपन्यास में संवेदना और अनुभूति की गवाही केन्द्र में होती है। यह अवश्य है कि वहाँ इतिहास के स्थूल आकार की उपस्थिति का भी अवकाश होता है।

इस दृष्टि से यदि हिन्दी उपन्यासों के आधार पर भारत में ब्रिटिश सत्ता के विरूद्ध 1857 के विद्रोह का विश्लेषण किया जाए तो कुछ नये निष्कर्षो तक पहुँचा जा सकता है। इस विद्रोह के सम्बन्ध में इतिहाकारों-साहित्यकारों-चिन्तकों का एक बड़ा वर्ग यह धारणा रखता है कि वह मात्र एक सैन्य विद्रोह था, जबकि विपिन चन्द्रा, रामविलास शर्मा और अमृतलाल नागर जैसे इतिहासकारों-साहित्यकारों का मानना है कि वह स्वतन्त्रता के लिए एक सुनियोजित-सुविचारित राष्ट्रव्यापी जनान्दोलन था मात्र सैनिक विद्रोह नहीं। इतिहास के ऐसे दो राहे पर हिन्दी उपन्यास मार्गदर्शन कर सकता है और सच के निकट ले जा सकता है, बावजूद इसके कि हिन्दी में इस विषय पर बहुत कम उपन्यास लिखे गये हैं और अभी इस दिशा में और बड़े रचनात्मक उपक्रमों की प्रतीक्षा है।

ऋषभचरण जैन का 'गदर (1930) 1857 की राज्य क्रान्ति से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें विद्रोह के पूर्व से लेकर उसके दमन तक के कालखण्ड को रूपायित किया गया है। हालाँकि यह उपन्यास क्रान्ति की राष्ट्रीय व्याप्ति को नहीं समेटताय बल्कि कानपुर और बिठूर की गतिविधियों तक ही अपने को सीमित रखता है, साथ ही मुख्य कथा नाना साहब की बेटी मैना और उनके मन्त्री अजीमुल्ला के प्रेम की ही है, फिर भी यह क्रान्ति की कुछ ऐसी तस्वीरें प्रस्तुत करता है जो विचारणीय हैं। गदर स्वाधीनता संग्राम पर प्रकाशित हिन्दी का पहला ग्रन्थ है जसमें दृढ़ता से 1857 के विद्रोहियों को नायकों का दर्जा दिया गया।1 कथा-सारांश में जाने के बजाय यह देखना आवश्यक है कि उपन्यासकारा ने जहाँ एक ओर ब्रिटिश सत्ता के प्रति नाना साहब की निष्ठा को प्रकट करने में कोई संकोच नहीं किया है वहीं दूसरी ओर अजीमुल्ला और मैना की देश भक्ति और स्वाधीनता की चेतना को पूरी सहानुभूति के साथ अभिव्यक्ति दी है। निश्चय ही मैना नाना साहब की बेटी है और इस तर्क से वह सामन्त वर्ग के अन्तर्गत आऐगी, जन

अमृतलाल नागर इस उपन्यास में स्पष्ट तौर पर यह निष्कर्ष देते हैं कि 1857 का विद्रोह वस्तुतः अंग्रेज़ों के विरूद्ध एक व्यापक और विकट जनविद्रोह था। यह निष्कर्ष वही है जो उन्होंने कथात्मक शैली में प्रस्तुत अपने सर्वेक्षण मूलक अध्ययन 'गदर के फूल' में दिया है। 'गदर के फूल' में वह लिखते है- ''औरों को क्या कहूँ, स्वयं मेरी यह धारणा थी कि गदर में भाग लेने वाले सामन्त अपने-अपने स्वार्थों के लिए लड़े, इनका कोई संगठन नहीं था। परन्तु अवध के इन छोटे-बड़े सामन्तों और बिहार के बाबू कुँवर सिंह और अमर सिंह के संगठन को देखकर मेरी पूर्व धारणा गलत सिद्ध हो जाती है।

सामान्य के अन्तर्गत नहीं, लेकिन सीधे-सीधे वह सत्ताधिकारी भी नहीं है। ऐसे में अंग्रेज़ों के प्रति

उसके घृणा भाव और देश को उनसे मुक्त कराने की उसकी भावना को वर्गीय हित से नहीं जोड़ा सकता। वह अपने पिता की ब्रिटिश हुकुमत के प्रति निष्ठा को भर्त्सना के साथ प्रश्नांकित करती है। वह अजीमुल्ला से विवाह तभी करने का निर्णय लेती है जब देश स्वाधीन हो जाए। ध्यान रहे, वह अपनी रियासत के स्वतन्त्र होने, सुरक्षित होने या नाना साहेब के पेन्शन के जारी होने की शर्त नहीं रखती, बल्कि समूचे देश की स्वाधीनता की बात करती है। चेतना के परिवर्तन का यही वह बिन्दु है जिसे उपन्यासकार पकड़ता है। यह 1857 की क्रान्ति को सैन्य विद्रोह से कुछ इतर बनाता है। हालाँकि मैना मुक्ति संघर्ष में रानी लक्ष्मीबाई आदि की तरह कोई बड़ी भूमिका नहीं निभाती है फिर भी इसी चेतना के कारण एक नया गवाक्ष खोलती है, जहाँ से उस क्रान्ति से स्त्री-समाज की सम्बद्धता और उसके मनोभाव का अनुमान लगता है। यह उपन्यास जो नया विचार बिन्दु देता है वह मधुरेश के शब्दों में यह है- गदर स्वाधीनता आन्दोलन की निरन्तरता पर बल देता है और परवर्ती आन्दोलन में 1857 को एक प्रस्थान बिन्दु की तरह स्वीकृति देता है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध अपने केन्द्रीय नेतृत्व के त्रासद अभाव के बावजूद, वह 1857 की राज्य क्रान्ति को एक सुनियोजित और सुविचारित परिघटना के रूप में प्रस्तुत करता है।2

वृन्दावनलाल वर्मा का उपन्यास झाँसी की रानी (1946) चरित्र केन्द्रित है। रानी लक्ष्मीबाई ने 1857 की क्रान्ति में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। ब्रिटिश हुकुमत के साथ उनका शौर्यपूर्ण संघर्ष और प्राणों का बलिदान लोकप्रसिद्धि की चरम सीमा को पार करते हुए लोकगीतों-लोककथाओं में ढलता चला गया। वृन्दावनलाल वर्मा ने इस मान्यता का प्रत्याख्यान रचा है कि लक्ष्मीबाई स्वहित को सुरक्षित करने के लिए आपद् धर्म के रूप में अंग्रेज़ों के विरूद्ध युद्ध क्षेत्र में उतरी थीं। उन्होने उपन्यास की भूमिका में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है कि ,"रानी स्वराज्य के लिए लड़ीं या अंग्रेजों की ओर से झाँसी का शासन करते-करते उनको जनरल रोज से विवश होकर लड़ना पड़ा ?"3 उत्तर पाने की प्रकिया में उन्होने स्वयं द्वारा किये गए अनुसन्धान-अध्ययन का उल्लेख किया है।और एक महत्वपूर्ण तथ्य यह सामने रखा है कि," रानी ने बानपुर के राजा मर्दन सिंह को जो चिट्ठी युद्ध में सहायता करने के लिए लिखी थी उसमें 'स्वराज्यशब्द आया है।"4 अंततः उन्होने अपनी इस मान्यता को दृढ़ किया है कि ,"रानी का शौर्य विवशता की परिस्थितिमें उत्पन्न नहीं हुआ था। ...रानी 'स्वराज्य के लिए लड़ी थीं।" 5 यह निष्कर्ष औपन्यासिक कथा संसार में प्रतिबिम्बित हुआ है-"वे झाँसी राज्य को अपने किसी उद्देश्य कि पूर्ति का साधन मात्र समझती थीं । झाँसी का राज्य उनके लिए सुरपुर न था किन्तु जिस सुरपुर को पाने की उनके मन में लालसा थी, झाँसी उसकी एक सीढ़ी मात्र थी।" 6

झाँसी को ब्रिटिश हुकूमत के अधीन किए जाने की घोषणा सुनकर जब 'मुंदररोने लगती है तो रानी लक्ष्मीबाई उसे समझाते हुए अपने अंतिम उद्देश्य का संकेत देती हैं-'क्यो री, मूर्छित होना किससे सीखा? क्या इस छोटे से राज्य के लिए ही हम लोग जीवित हैं ?"7 स्पष्ट है कि मात्र झाँसी को पाना रानी का लक्ष्य नहीं था। वह अपने लोगो को समझाते हुए कहती हैं- "जनता हमारे साथ है। जनता सब कुछ है। जनता अमर है। इसको स्वराज्य के सूत्र में बाँधना चाहिए। राजाओं को अंगरेज भले ही मिटा दें। परंतु जनता को नहीं मिटा सकते। एक दिन आयेगा जब इसी जनता के आगे होकर मैं स्वराज्य की पताका फहराउंगी । " 8 यह वक्तव्य स्पष्ट रूप से आधुनिक राष्ट्रीय चेतना को प्रतिबिम्बित करता है । अंग्रेज़ो के विरुद्ध रानी लक्ष्मीबाई की रणनीति और रणकौशल का विस्तार से वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने अनेक स्थलों पर रानी को मिलने वाले जनसमर्थन का अंकन किया है । कथा-विन्यास में एक अवसर ऐसा भी आता है जब झाँसी के विभिन्न वर्गो -जातियों के प्रतिनिधि अंग्रेजी हुकूमत के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए 'रानीको ही अपने नेतृत्व के रूप में स्वीकार करते हैं । डॉ० गोपाल राय कहते हैं किलक्ष्मीबाई के चरित्र को केन्द्र में रखते हुए वर्मा जी ने बुन्देलखण्ड की जनता की ब्रिटिश शासन को चुनौती देने वाली वीरता और बलिदान भावना का बहुत प्रभावपूर्ण अंकन किया है।9 हालांकि एक प्रश्न यह भी उठता है कि 'रानी लक्ष्मीबाई 'की ओर से ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध लड़ने वाले लोगों में राष्ट्रीयता की चेतना बलवती थी या उस युग के मूल्य के अनुरूप अपनी 'रानी के प्रति श्रद्धा-समर्पण का भाव प्रबल था । संकेत इस बात के ही अधिक मिलते हैं कि बुन्देली अस्मिता का गौरवपूर्ण बोध और व्यक्ति विशेष के प्रति भक्ति भाव ही प्रबल कारक था, फिर भी कहना न होगा कि राष्ट्रीयता की चेतना आकार लेने लगी थी; रानी लक्ष्मीबाई में तो बिल्कुल ही स्पष्ट रूप में ।

इस उपन्यास से यह भी भलीभाँति पता चलता है कि 1857 के स्वधीनता-संग्राम-सेनानियों के बीच हिन्दू और मुसलमान की कोई विभाजक दीवार न थी । दोनों समुदायों ने अद्भुत समझदारी और साझेदारी का परिचय दिया था, जो साम्प्रदायिक विभाजन से ऊपर एक राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण कारक बना । हालाँकि उपन्यास यह भी संकेत करता है कि ब्रिटिश हुकूमत के प्रति 'रानी का विद्रोह-भाव विशुद्ध रूप से राजनीतिक न होकर धार्मिक भी था । यह भी उल्लेखनीय है कि उपन्यासकार ने उस संघर्ष में स्त्रियों की बड़ी भागीदारी को भी उजागर किया है। अमृत लाल नागर का उपन्यास करवट (1985) 1857 की क्रान्ति पर केन्द्रित नहीं, उससे सम्बन्धित उपन्यास है। यह एक परिवार की कथा है, जिसका एक छोर उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से जुड़ता है तो दूसरा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक जाता है। इसलिए स्वाभाविक तौर पर 1857 की राज्य-क्रान्ति की परिघटना भी कथा में विन्यस्त है। वस्तुतः नागर जी का उद्देश्य इस अवधि में हुए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और नैतिक मूल्यों के परिवर्तन का इतिहास प्रस्तुत करना है।10 इस परिवर्तन के मूल में है ब्रिटिश सत्ता और संस्कृति। उपन्यासकार ने लखनऊ में नवाबी शासन के अन्त और उसके फलस्वरूप जनता में पैदा होने वाली मानसिक उथल-पुथल का मार्मिक अंकन किया है। उसने अंग्रेज़ों की भयानक आर्थिक लूटतन्त्र का विश्वसनीय चित्रण किया है। इन सबके बीच उसने केन्द्रीय पात्र वंशीधर टण्डन और उनके पुत्र देश दीपक टण्डन के माध्यम से नवोदित मध्य वर्ग में अंग्रेज़ों के प्रति क्रोध और घृणा के उभार को प्रकाशित किया है। इसी क्रोध और घृणा के भाव के कारण 1857 का विद्रोह सैन्य छावनी से बाहर निकलता है। यह प्रश्न अलग है कि यह मध्यम वर्ग कुल जनता का कितना प्रतिशत था।

अमृतलाल नागर इस उपन्यास में स्पष्ट तौर पर यह निष्कर्ष देते हैं कि 1857 का विद्रोह वस्तुतः अंग्रेज़ों के विरूद्ध एक व्यापक और विकट जनविद्रोह था। यह निष्कर्ष वही है जो उन्होंने कथात्मक शैली में प्रस्तुत अपने सर्वेक्षण मूलक अध्ययन गदर के फूल में दिया है। गदर के फूल में वह लिखते है- औरों को क्या कहूँ, स्वयं मेरी यह धारणा थी कि गदर में भाग लेने वाले सामन्त अपने-अपने स्वार्थों के लिए लड़े, इनका कोई संगठन नहीं था। परन्तु अवध के इन छोटे-बड़े सामन्तों और बिहार के बाबू कुँवर सिंह और अमर सिंह के संगठन को देखकर मेरी पूर्व धारणा गलत सिद्ध हो जाती है। महारानी लक्ष्मी बाई के शौर्य और बेगम हज़रत महल की कार्य कुशलता तथा संगठन शक्ति देखकर राष्ट्र के स्वाभिमान में क्या हमारी आस्था नहीं जमती? मौलवी अहमदुल्ला शाह और तात्या टोपे का हर जगह जाकर लड़वैयों का हुजूम बटोर लेना क्या सत्तावनी क्रान्ति को जन-क्रान्ति सिद्ध नहीं करता?11 अमृतलाल नागर अपने मत की पुष्टि के लिए इस पुस्तक में एक नयी अवधारणा भी प्रस्तुत करते हैं- यह भी मार्के की बात है कि अंग्रेज़ों के खिलाफ लड़ने के लिए सबसे पहले सिपाही उठे। सामन्तगण सिपाहियों के कारण ही संघबद्ध हुए थे। यह सिपाही संगठन ही देश में नये युग के आने का परिचय देता है। सिपाही आखिरकार हमारी आम जनता के ही प्रतिनिधि तो थे।12 कहना न होगा कि यह विचारणीय बिन्दु है कि क्या वास्तव में सैनिक जनप्रतिनिधि हो सकता है?

उपन्यास की अन्तर्ध्वनि यह है कि यदि सीदपुर जैसी छोटी रियासतों-जागीरों-नगरों में होने वाले विद्रोह को भोपाल जैसी बड़ी रियासतों का सहयोग मिला होता तो 1857 की क्रान्ति में शायद हमें पराजय का मुँह नहीं देखना पड़ता। उपन्यासकार ने कथा संसार में इसे भी एक तथ्य के रूप में विन्यस्त किया है कि क्रान्ति के दौरान जहाँ भोपाल रियासत के नवाब सिकन्दर अंग्रेज़ों के साथ खड़े थे, वहीं रियासत की जनता अंग्रेज़ों और नवाब के खिलाफ खड़ी थी। पंकज सुवीर अमृतलाल नागर की गदर के फूल में दी गयी इस अवधारणा से सहमत दिखायी देते हैं कि सिपाही भी जनता के प्रतिनिधि ही थे।

इस क्रम में कमलाकान्त त्रिपाठी का उपन्यास पाहीघर (1991) भावकुता के बजाय वस्तुनिष्ठ यथार्थ-दृष्टि के कारण बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उल्लेखनीय है कि यह पूरी तरह 1857 के विप्लव पर केन्द्रित है। एक पुरोहित परिवार के विस्थापन से कथा आरम्भ कर 1857 में अवध क्षेत्र में अंग्रेज़ी सत्ता से भारतीयों के विद्रोह की और उसकी परिणति की कथा कही गयी है। पहली बार ऐसा होता है कि इस उपन्यास में 1857 के सैन्य उथल पुथल को उसके सामाजिक-आर्थिक सन्दर्भों के साथ देखा-दिखाया जाता है।

अवध क्षेत्र का पूरा समाज जो मुख्यतः ग्रामीण समाज है और जिसके बीच यह सब कुछ घटित होता है। अपने समूचे संरचनागत वैशिष्ट्य के साथ यहाँ उपस्थित है। इस तरह 1857 के विद्रोह के पूरे चरित्र को समझने की दृष्टि मिलती है।

कमलाकान्त त्रिपाठी पाहीघर में इस धारणा को खण्डित करते हुए दिखायी देते हैं कि 1857 का विद्रोह स्वाधीनता की चेतना प्रेरित आम जनता का कोई व्यापक सुनियोजित आन्दोलन था। कभी तुलसीदास ने रामचरित मानस में दासी (यानी आम आदमी) मंथरा के मुख से कोउ नृप होउ हमहि का हानी... जैसा वक्तव्य दिलवाकर राजनीतिक सत्ता-व्यवस्था के प्रति आमजन की जिस उदासीनता को अभिव्यक्ति दी थी, कमलकान्त त्रिपाठी भी सदियों बाद 1857 के अवध-समाज की वैसी ही उदासीनता को चित्रित करते हैं। इस औपन्यासिक संसार में ऐसे स्थलों को देखा जाना चाहिए-

-नवाबी रहे तो, फिरंगी आएँ तो, क्या फरक पड़ता है!13

-गरीबों का कोई पुछत्तर नहीं है, भैया। क्या नवाब और क्या फिरंगी? कोई हमारा करम थोड़े बदल देगा।14

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक है कि राजनीतिक सत्ता-व्यवस्था से पूरी तरह अलग-थलग रहने वाली और देशी एवं विदेशी शासको को एक जैसा मानने वाली आम जनता से कैसे उम्मीद की जा सकती है कि वह स्वेच्छा से अंग्रेज़ों के विरूद्ध संघर्ष में शामिल हुई होगी। उपन्यासकार ने इस संघर्ष से आम ग्रामीण जन के अलग-थलग पड़े रहने के भी कई दृश्य उकेरे हैं। इन्हीं अंशो-दृश्यों से गुज़रते हुए वीरेन्द्र यादव इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कमलाकान्त त्रिपाठी जन विद्रोह के मिथक का भेदन करते हुए इसे विदेशी सत्ता बनाम देशी प्रभु वर्गों की टकराहट के रूप में प्रस्तुत करते हैं।15 इस प्रभु वर्ग में सम्मिलित थे सामन्त, तालुकेदार, मालगुजार, सवर्ण-भू-स्वामी और वे तमाम लोग जो किसी न किसी तरह सत्ता-सुख के लाभार्थी थे। कहना न होगा कि इनकी भी संख्या बड़ी थी और ये भारतीय ही थेय विदेशी नहीं, लेकिन यह भी सच है कि इनका वर्गीय हित आम जनता के वर्गीय हित से अलग था। पाहीघर के औपन्यासिक संसार में यह दिखता है कि इनका विद्रोह वस्तुतः अंग्रेज़ों के कारण अपने वर्गीय हितों और पूरे समाज पर अपने वर्चस्व के खतरे में पड़ जाने से प्रेरित था। सबसे बड़ा खतरा पैदा होता है तब, जब वाजिद अली शाह के सत्ता से बेदखली के बाद ईस्ट-इण्डिया कम्पनी द्वारा अवध के गाँवों में खेतों की नयी बन्दोबस्ती शुरू होती है- देहात में बन्दोबस्त की कार्रवाई ने तालुकेदारों में तहलका मचा रखा था। गाँव के गाँव तालुकेदारों से छीनकर स्वतन्त्र ठेके पर दे दिये गये थे या सीधे रिआया से लगान-वसूली की जा रही थी। साल का पूरा लगान एक मुश्त जमा करने का हुक्म हुआ था। कई तालुकेदारों ने जेवर गिरवी रखे, माल-असबाब बेचे, कमरतोड़ ब्याज़ पर महाजनों से कर्ज़े लिए, फिर भी बकाया लगान न चुका पाए। वक्त की मोहलत के लिए दी गई अर्जियाँ नामंजूर कर दी गयीं और उनके इलाके जब्त कर लिए गये। कुछ को सरकार का कर्ज़दार करार कर जेल में डाल दिया गया। ...शहर और देहात, सब जगह एक-सी आँधी चल रही थी यदि किसी कोने से जरा-सी चिंगारी उठती तो सारा अवध लप् से जल उठता।16

उपन्यासकार ने अवध क्षेत्र में तैनात कम्पनी के भारतीयों सिपाहियों के विद्रोह का भी सूत्र इसी नयी बन्दोबस्ती से जोड़ा है। उपन्यासकार लिखता है कि, छावनियों में पड़ी फौजें वैसे तो बंगाल आर्मी कहलाती थीं, लेकिन उनमे अवध के हट्टे-कट्टे जवानों की बहुतायत थी। इनमें से लगभग तीन-चौथाई हिन्दू थे, और अधिकांश ब्राह्मण और ठाकुर। ... ये प्रायः भले घरों के इज्जतदार लोग थे। जो सीधी सादी जिन्दगी बिताते थे। नियमित पूजापाठ करते थे।17 उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहता है कि ये सिपाही अपने परिवारों पर आए संकट से खफा हुए होंगे। उनकी दृष्टि में अंग्रेज़ों के कारण दूसरा सबसे बड़ा खतरा उनके धर्म पर मँडरा रहा था। उनका पूजापाठी स्वभाव चर्बी वाले कारतूस और हड्डी का चूरा मिला हुआ आटा स्वीकार नहीं कर पाया। उन्हें ऐसा लग रहा था कि अंग्रेज़ उनका दीन बिगाड़ने पर उतारू हैं और पूरे देश को किरिस्तान बनाना चाहते हैं। यह भावना साधू के वक्तव्य में पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है- (अंग्रेज़) पूरे देश को क्रिस्तान बनाने की सोच रहे हैं। पादरी लाट बाज़ार-बाज़ार छावनी छावनी घूमता है। लोगों को बरगलाता है, लालच देता है, कैदखाने में ऊँच-नीच सबका खाना-पीना एक साथ करके सबको भ्रष्ट कर दिया। रेलगाड़ी चलाई है, जिसमें जाति-कुजाति एक साथ बैठकर धर्म गवाएँगे।... गाय और सुअर का माँस मुँह से लगवाकर हिन्दू-मुसलमान दोनों का धर्म लेंगे।... फिरंगी मलेच्छ हैं, आततायी हैं। गाय और सुअर का माँस खाते हैं। अकच्छ हैं। दिशा जाकर पानी नहीं छूते। उन्हें देश से निकालना है।18 कहना न होगा कि इस असुन्तोष के मूल में धार्मिक कारण ही है। उपन्यासकार स्पष्ट करता है कि अंग्रेज़ी हुकूमत और उनके द्वारा अपने हित के लिए ही सही, लायी जा रही शिक्षा-तकनीक आदि के कारण सवर्ण-सामन्त वर्ग के सामाजिक-धार्मिक विशेषाधिकारों का जो क्षरण हो रहा था वह भी उनके लिए एक बड़ा संकट था, जिससे मुक्त होने के लिए अंग्रेज़ों से मुक्त होना आवश्यक था।

इस उपन्यास की अर्न्तध्वनि यह है कि यदि सामन्तों, तालुकेदारों, माल गुजारों के विद्रोह के मूल में कोई स्वाधीनता-चेतना रही होती तो वह अंग्रेज़ों को अपना पैर जमाने में सहयोग करने से उन्हें पहले ही रोक लेती। उपन्यास में इस सत्ताधारी वर्ग की आत्मस्वीकृति प्रकट होती है- कम्पनी ने हमारे दम पर ही इस मुल्क को जीता है और हमारे दम पर ही उसका राज कायम है।19 अंग्रेज़ी हुकूमत द्वारा अवध के गांवों में खेतों की बन्दोबस्ती की प्रक्रिया में जब बसौली गांव में मुंशी वहाँ के मालगुज़ार शंकर दुबे के भाई के बारे में अंग्रेज़ अधिकारी को यह बताता है कि वह कम्पनी बहादुर की सेना में है, तो अंग्रेज़ अधिकारी की प्रतिक्रिया यह होती है- वेरी गुड! तुम सरकार का खैरख्वाह है। फिर कोई बात नहीं।20

उपन्यासकार ने यह भी स्पष्ट किया है कि इस विद्रोह में यदि कहीं आम ग्रामीण जनता की भागीदारी बनी थीं तो मुख्यतः इस समझदारी के तहत कि तालुकेदारों का साथ देने में ही भलाई हैय या फिर स्वामीभक्ति के मूल्य के चलते। उपन्यास के कथा-संसार में इन वक्तव्यों-सवादों को देखिए-

-तालुकेदार नहीं खुश रहेगा तो वह रिआया को खुश रहने देगा? ...और उनकी कुमुकों में कौन हैं, रिआया के लोग ही तो।21

-आम रिआया तालुकेदारों का मुँह देख रही थी। वह तो उधर ही जाएगी जिधर तालुकेदार जाएंगे।22

यह औपन्यासिक संसार इसलिए विश्वसनीयता हासिल करता है

कि लेखक ने इसे अपनी पूर्व निर्मित धारणा को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए नहीं गढ़ा है, बल्कि उस दौर को पुनः सृजित किया है, जिसमें सच के कई स्वर हैं। यही वजह है कि उन्होंने 1857 की क्रान्ति से आम ग्रामीण समाज की असम्पृक्तता को मुख्य रूप से चिन्हित करते हुए भी यह अंकित करने में संकोच नहीं किया है कि उस क्रांन्ति से बेख़बर कोई नहीं था। आम जनता भी नहीं। उसकी गूँज चारो तरफ फैली थी। केवल ख़बर के रूप में नहीं, बल्कि क्रान्ति के आयोजकों-संचालकों द्वारा सुनियोजित ढंग से आमजनता को इससे जोड़ने की योजना के अन्तर्गत। उपन्यास की कथा में रोटी के माध्यम से विद्रोह के सन्देश और प्रेरणा को लोगों तक पहुँचाने की घटना का वर्णन कई स्थलों पर हुआ है।

इक्कसवीं शताब्दी में एक बार पुनः प्रयास 1857 के अलक्षित-अनजान इतिहास का संवेदनात्मक धरातल पर जानने-समझने का, उपन्यासकार पंकज सुबीर के द्वारा प्रयास हुआ है।यह प्रयास ये वो सहर तो नहीं... शीर्षक से उपन्यास के रूप में 2010 में सामने आया। इस उपन्यास में 1857 की क्रान्ति में भोपाल रियासत के केन्द्र सीदपुर छावनी की गतिविधयों और भूमिका का वर्णन किया गया है। डॉ0 पुष्पाल सिंह लिखते हैं कि इस स्थान के हिन्दू मुस्लिम समुदायों ने किस प्रकार कन्धे-से-कन्धा मिलाकर कम्पनी सरकार को उखाड़ फेकने का प्रयास किया, उसका बड़ा शोधपूर्ण, तिथि-वर्षवार रसपूर्ण चित्रण कर लेखक राष्ट्रीयता के अहम सवाल को बार-बार उठाता है।23 उपन्यास की अन्तर्ध्वनि यह है कि यदि सीदपुर जैसी छोटी रियासतों-जागीरों-नगरों में होने वाले विद्रोह को भोपाल जैसी बड़ी रियासतों का सहयोग मिला होता तो 1857 की क्रान्ति में शायद हमें पराजय का मुँह नहीं देखना पड़ता। उपन्यासकार ने कथा संसार में इसे भी एक तथ्य के रूप में विन्यस्त किया है कि क्रान्ति के दौरान जहाँ भोपाल रियासत के नवाब सिकन्दर अंग्रेज़ों के साथ खड़े थे, वहीं रियासत की जनता अंग्रेज़ों और नवाब के खिलाफ खड़ी थी। पंकज सुवीर अमृतलाल नागर की गदर के फूल में दी गयी इस अवधारणा से सहमत दिखायी देते हैं कि सिपाही भी जनता के प्रतिनिधि ही थे।

इस संक्षिप्त विश्लेषण के उपरान्त निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यासों से 1857 की क्रान्ति के चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। अब तक के उपन्यासों से यह बात स्पष्ट होती है कि उस क्रान्ति का जन्म सामन्त-सैनिक वर्ग के भीतर ही हुआ था न कि आम जनता के बीच। यह ज़रूर है कि थोड़ी ही देर में उसकी व्याप्ति चतुर्दिक हो गयी। कुछ स्थानों पर जन सामान्य की पूरी भागीदारी बनी तो कुछ स्थानों पर नहीं बनी। यानी अलग-अलग क्षेत्रों-स्थानों पर उस क्रान्ति का चरित्र अलग-अलग था। उसे समझने के लिए कोई एक सामान्य फ्रेम नहीं बनाया जा सकता। यह भी सच है कि उस क्रान्ति के तमाम पक्ष अभी भी धुँधलके में हैं, जिन्हें उजागर करने के लिए और औपन्यासिक कृतियों की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. चौबे, देवेन्द्र, बद्रीनारायण, पटेल हितेन्द्र. 1857ः भारत का पहला मुक्ति संघर्ष. नयी दिल्लीः प्रकाशन संस्थान, 2008, पृ0सं0-14
2. मधुरेश. गदरः क्या सचमुच वह एक मिथक है?. कथाक्रम, लखनऊ, अप्रैल-जून 2007, पृ0सं0-27
3. वर्मा ,वृन्दावनलाल ण् झाँसी की रानी . नयी दिल्ली रू प्रभात प्रकाशन ,2022ए पृ0सं0-7
4. वही , पृ० सं० - 7
5. वही , पृ० सं० - 6,8
6. वही , पृ० सं० - 111
7. वही , पृ० सं० - 115
8. वही , पृ० सं० - 117
9. राय, गोपाल. हिन्दी उपन्यास का इतिहास. नयी दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ0सं0-190
10. वही, पृ0सं0-224
11. नागर, अमृतलाल. गदर के फूल. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स, 2019 (पेपरबैक), पृ0सं0-44
12. वही, पृ0सं0-21
13. त्रिपाठी, कमलाकान्त. पाहीघर. नयी दिल्लीः राजकमल पेपरबैक्स, 2016, पृ0सं0-43
14. वही, पृ0सं0-102
15. यादव, वीरेन्द्र. उपन्यास और वर्चस्व की सत्ता. नयी दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2009, पृ0सं0-134
16. त्रिपाठी, कमलाकान्त. पाहीघर. नयी दिल्लीः राजकमल पेपरबैक्स, 2016, पृ0सं0-107
17. वही, पृ0सं0-58
18. वही, पृ0सं0-113-114
19. वही, पृ0सं0-62
20. वही, पृ0सं0-103
21. वही, पृ0सं0-109
22. वही, पृ0सं0-149
23. सिंह, पुष्पपाल इक्कीसवीं शती का हिन्दी उपन्यास. नयी दिल्लीः राधा कृष्ण, 2015, पृ0सं0-379

असिस्टेण्ट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, हिन्दू कॉलेज, मुरादाबाद-244001

हिन्दी साहित्य में आषाढ़ का महत्त्व

– डॉ. अभिषेक मिश्र

“साहित्य जगत ऋतुओं से अलग नहीं रहा है। प्राय: सभी कवियों ने ऋतु के मनोवैज्ञानिक बोध से जोड़ने की कोशिश की है, वहीं पावस ऋतु के महत्व को प्रतिपादित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जब पावस का प्रसंग आता है तो आषाढ़ और आषाढ़ के प्रथम दिवस की अभिव्यंजना और भी मार्मिक हो जाती है। कारण कि ग्रीष्मकाल की तपन के बाद का शीतल अनुभव प्रथम दिन ज्यादा प्रभावकारी हो जाता है। शीतलता का आगमन हो जाता है धरती की उर्वरता बढ़ जाती है। मनुष्य मात्र का मन आह्लादित हो जाता है।”

आकाश में बादल घिर गये थे। हवाएं तेज चल रही थीं। छतों पर लगे ध्वज और बड़े-छोटे मकानों के बीच अपने अस्तित्व को बनाये रखने वाले वृक्ष इन हवाओं की मस्त बयार में झूमते हुए दिखाई पड़ रहे थे। बारिश होने की आशंका में महिलाएं-लड़कियां, फैलाये गये कपड़े, अचार, कुछेक व्यंजनों को समेटने में लगी हुई दिखलाई पड़ रही थीं। कपड़े समेटते हुए माँ की सुरमई ध्वनि भी गूंजने लगी, ‘‘चढ़त आषाढ़ घना घन बरसे। रिमझिम बरसे सवनवा न। भादौ रैन भयावन लागै/ कुआर मास वन टेसूरफूलत है। कार्तिक में जले दियवनवा न।’’ लोकमती लोक का अनुभव करने वाली माँ के मुख से अनायास निकलने वाला गीत, ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ बदलने लगता है। ग्राम संस्कृति के सूक्ष्मरसगंधों की पहचान वर्तमान में विकृत होती ग्रामीण लोक संस्कृति को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने का कार्य कहीं न कहीं इन महिलाओं ने किया है। वर्तमान समय की दुर्धर्षसत्यानाशी आरोपों से सनी राजनीति, अश्लीलता के सरोवर में डुबकिया लगाती पत्रकारिता, सोशल मीडिया ने लगभग इन सब कोनष्ट ही कर दिया है। यह विदित है कि साहित्यिक कवियों ने कहीं न कहीं इन ऋतुओं को साहित्य का अंग बनाया साथ, ही मनुष्य के जीवनानुभूतियों के साथ संलग्न किया। विषयांतर न होते हुए आषाढ़ की उन बूंदों और आच्छादित मेघों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ।

हिंदू पंचांग के अनुसार चैत्र माह से प्रारंभ होने वाले वर्ष का चौथा महीना, जो ईस्वी कैलेंडर के जून-जुलाई माह में पड़ता है, इसे वर्षा ऋतु का महीना भी कहा जाता है। यह माह तपती गर्मी से राहत दिलाता है। इस मास में हिंदू देवी-देवताओं के लिए विश्राम का समय होता है। इस मास में धरती गर्भ धारण करती है और उसके गर्भ से कई नवांकुर फूटते हैं। ग्रीष्म ऋतु से भस्मीभूत वनस्पतियां पुन: हरी हो उठती हैं। इसलिए बसंत को ऋतुराज कहते हैं, तो पावस को ऋतुओं की रानी। यह मास जन-जन के भीतर उत्साह और संदेश का संचार करता है। हर भाषाओं के साहित्य में इन काले बादलों की गूंज सुनाई पड़ती है। आदि कवि वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य रामायण के किष्किंधाकांड में चढ़ते आषाढ़ की सूचना मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के द्वारा दी है। राम अपने भाई लक्ष्मण से कहते हैं-

अयंस काल: सम्प्राप्त: समयोऽधजलागम:।
सम्पश्यत्वंनभोमेघै: संवृतं गिरिसंनिभै:।।[1]

हेसुमित्रानंदन! जल प्रदान करने वाला वह प्रसिद्ध वर्षाकाल आगया। देखो पर्वत के समान प्रतीत होने वाले मेघों से आकाश मंडलआच्छादित हो गया है। पुन: कहते हैं कि ‘‘एषाधर्मपरिक्लिष्टांनववारिपरिप्लुता / सीतेव शोक संतप्ता महीं वाष्पंविमुचति।’’[2] अर्थात् जो ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से घास तप गई थी वह पृथ्वी वर्षाकाल में नूतन जल की बूंदों से भीगकर शोक संतप्त सीता की भांति वाष्प विमोचन (उष्णता का त्याग अथवा अश्रुपात) कर रही है। राम कहीं न कहीं सीता के विरह की तुलना ग्रीष्म ऋतु से करते हैं और मेघों से बरसने वाले जल की बूंदों से सीता की उष्णता का त्याग होता हुआ दिखलाई पड़ता है।

‘‘मेघकृष्णाजिनधाराधारायज्ञोपवीतिन:।
मारुतापूरितगुहा: प्राधीताइव पर्वता:।।[3]

मेघरूपी काले मृगचर्म तथा वर्षा की धारारूपी यज्ञोपवीत धारण

किये हुए वायु से पूरित गुफा वाले ये पर्वत, ब्रह्मचारियों की भांति मानो वेदाध्ययन आरंभ कर रहे हैं। वर्षा काल के माध्यम सेवाल्मीकि कहीं न कहीं आर्यावर्त की संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं। इस वेदभूमि का पहला धर्म ब्रह्मचारियों की भांति विद्या अध्ययन करना है न कि भोग, लिप्सा, लालच आदि में अपने को संलग्न कर देना है।

संस्कृत के पर्यायवाची कहे जाने वाले महाकवि कालिदास ने अपनी प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कृति 'मेघदूत' में आषाढ़ मास के प्रथम दिवस का चित्र अंकित किया है- "तस्मिन्नद्रोंकतिचिदबलाविप्रयुक्त: स कामी / नीत्वामासांन्कनकवलयभ्रशरिक्तप्रकोष्ठ:आषाढस्य प्रथम दिवसेमेघमाश्लिष्टसानु / वप्रक्रीड़ापरिणतंगजप्रेक्षणीयंदंदर्श।।"[4] अर्थात अपनी प्रिया से विरक्त यक्ष, अपने स्वामी के श्राप के कारण रामगिरि के पर्वतों में निवास करता है। स्त्री के विछोह में कामी यक्ष ने उस पर्वत पर कई मास बिता दिए। उसकी कलाई से सुनहले कंगन के खिसक जाने से वह सुनी दिखने लगी है। आषाढ़ मास के पहले दिन पहाड़ की चोटी पर झुके हुए मेघों को यक्ष ने देखा तो ऐसा जान पड़ता है जैसे वह वप्र-क्रीड़ा करता हुआ कोई हाथी हो। यहाँ विरह की पराकाष्ठा दिखाई पड़ती है। विरही यक्ष उन मेघों का स्वागत "प्रीत: प्रीतिप्रमुखवचनम्स्वागतंव्याजहार।"[5] के द्वारा करता है। ''स: प्रत्यग्रै: कुटजकुसुमै: कल्पितार्घायतसमै''[6] यहाँ हम देख सकते हैं कि किस तरह से यक्ष आषाढ़ के उन मेघों का स्वागत कल्पित गिरि-मल्लिका के पुष्पों से करता है।

भक्ति काल के शीर्ष राम-भक्त कवि तुलसीदास जी की कृति 'रामचरितमानस' के किष्किंधाकांड में राम अपने भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि-''बरसा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए।''[7] इसी क्रम में प्रभु राम कहते हैं - ''घन घमंड नभ गरजतघोरा, प्रिया हीन डरपत मन मोरा / दामिनी दमक रह न थिर घन माही / खल कै प्रीति जथा थिर नाही।''[8]स्पष्ट है कि किस तरह से तुलसीदास जी ने मनुष्य के जीवन में घट रही घटनाओं, परिस्थितियों का संबंध प्रकृति से जोड़ा है। यही घन कभी सुखद क्षणों की सृष्टिकरते हैं तो कभी दु:ख की पीड़ा को बढ़ाते हैं। वर्षा ऋतु कहीं भूमि और जीवों की सुखद अनुभूति का माध्यम होती है, तो कभी यात्रा करने वाले लोगों के लिए कष्टकारी होती है। इसलिए राम सुग्रीव से कहते हैं- ''गत ग्रीष्म ऋतु आई। रहिहहुँ निकट सैल पर छाई।''[9] अर्थात ग्रीष्म ऋतु बीतकर वर्षा ऋतु आ गई है, मैं (राम) वहाँ पास ही पर्वत पर टिका रहूँगा।

सूफी काव्य धारा के महत्वपूर्ण कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' में नागमती वियोग खंड में कहते हैं कि- ''चढ़ा असाढ़ गगन, घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा।। धूम स्यामधौरे धन धाए। सेतधजाबग-पाँति देखाए।''[10] जैसा विदित है कि आषाढ़ का महीना आया तो आकाश में बादलों की गर्जना होने लगी तब नागमती को ऐसा प्रतीत हुआ कि विरह ने युद्ध की तैयारी की है और उसकी सेना ने कूच का नगाड़ा बजाया है। धुमैले, काले और भूरे रंग के बादल आकाश में दौड़ने लगे और उनमें उड़ती हुई बगुलों की पंक्तियां धवल ध्वज के समान दिख रही हैं। अर्थात्नागमती इस आषाढ़ मास के गर्जना करने वाले मेघों को देखकर चिंतित होती है कि इस वातावरण में मेरे प्रिय की अनुपस्थिति में मुझे कौन आदर देगा? इस उन्मादक वातावरण में जो काम के लिए उचित है, इस विरह से आकर आप मेरी रक्षा कीजिए। महलों की रहने वाली नारी अपना रानीपन भूलकर सामान्य नारी की तरह विषादमग्न हो उठती है।

सेनापति कृत कवित्तरत्नाकर में ऋतु वर्णन में कवि कह उठता है- ''गरजत घन, तरजत है मदन लर / जत तन मन नीर नैनंनिबहति है।''[11] संस्कृत साहित्य से लेकर हिंदी के रीतिकालीन कवियों ने आषाढ़ मास को इतना महत्वपूर्ण बना दिया कि काव्य का सौंदर्य अत्यधिक मनोरम हो गया। जीवन के सुख-दुख की अनुभूति कराता यह मास कहीं न कहीं संपूर्ण साहित्य के काव्य जगत को प्रभावित करता रहा है।

आधुनिक काल और भारतेंदु मंडल के रचनाकारों के यहां भी स्वाभाविक रूप से आषाढ, उनकी कविताओं का विषय बन ही जाता है। बाल मुकुंद गुप्त ने अपनी कविता 'वर्षा' में कहा है- ''छाये घोर चहुँ ओर मेघ, पावस की परी फुहार / घन गरजत चपलाअति चमकतफरफरउड़त फुहार / अब नहीं छटपटात नारी नरजलाविहीनज्यों मीन।''[12]

ग्रीष्म ऋतु की गर्मी से तपते लोग पावस ऋतु में काले मेघों के बरसने से तृप्त हो गये, अब उनकी स्थिति जलविहीन मछली की तरह नहीं है। वर्षा न होने से समान्य जन की स्थिति कितनी दयनीय हो जाती है। अकाल, भुखमरी, गरीबी, संत्रास न जाने कितने दानव उत्पन्न हो जाते हैं। ब्रिटिश कालीन भारतवर्ष में निलहे, गोरांग-प्रभु, लार्ड-गवर्नर, बनकर लूटने वाले अंग्रेजों ने तो भारत की जनता को मृत्यु के घाट उतारा ही साथ ही प्रकृति ने भी कभी-कभी अपनी भयावहता से आतंकित किया है जिसका उदाहरण स्वरूप भाव गुप्त जी प्रस्तुत करते हैं।

प्रगतिवादी व्यंग्य और प्रकृति के महत्वपूर्ण कवि बाबा नागार्जुन मानसरोवर की यात्रा के दौरान उसी बादल को देखते हैं और उनके कंठ से अनायास ही फूट पड़ता है- ''बादल को घिरते देखा है। / अमल धवल गिरि के शिखरों पर / बादल का घिरते देखा है / छोटे-छोटे मोती जैसे / उसके शीतल तुहीन कणों को। / मानसरोवर के उन स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है।''[13] साथ ही 'ऋतु संधि' कविता में पुन: उस दृश्य को अभिव्यंजित करते हैं- ''आज है आषाढ़ यदि षष्ठी / उठा था जोर का तूफान / उसके बाद / सघन काली घन घटा से / हो रहा आच्छान्न यह आकाश।''[14] इसके अलावा 'मेघ बजे'(1964), 'काले-काले' (1981), 'बादल भिगो गए रातों रात' (1984) आदि कविताएं हैं।

त्रिलोचन मानवीय संघर्ष के कवि तो हैं ही साथ ही साथ प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य को उकेरने वाले कवि हैं। केदारनाथ सिंह ने कहा कि ''निरालाकी तरह त्रिलोचन ने भी पावस के अनेक चित्र अंकित किए हैं और बादलों के कठोर संगीत को अपनी अनेक कविताओं में पकड़ने की कोशिश की है। परंतु ऐसा करते हुए वे किसी विलक्षण सौंदर्य लोक का निर्माण नहीं करते बल्कि अपनी चेतना के किसी कोने में दबे हुए किसान का मानो आह्वान करते हैं- ''उठ किसान ओ, उठ किसान ओ, बादल घिर आये।''[15]

इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए छायावाद के सूर्य 'निराला' बादल राग (1922) कविता में कह उठते हैं- ''तुझे बुलाता कृषक अधीरऐ विप्लव के वीर / चूस लिया है उसका सार / हाड़ मात्र ही है आधार / ऐ जीवन के पारावार।''[16] निराला की 'आए घन पावस के' जैसी कविता ने कहीं न कहीं पावस के सौंदर्य और चेतना को स्वाभाविक रूप से प्रदर्शित किया है। त्रिलोचन भी उस हरे-भरे सौंदर्य को देखकर श्रम करने वाले एक किसान की तरह रोमांचित हो उठते हैं। 'झापस', 'बादलों में लग गई है आग दिन की', 'संध्या ने मेघों के कितने चित्र बनाए', 'चारों ओर घोर बाढ़ आई'इत्यादि कविताएं इनका उदाहरण हैं। 'उजले बादल आकाश में' कविता कहीं न कहीं स्वतंत्रता के महत्व को दर्शाती हैं पराधीन मनुष्य कैसे घुटन भरे जीवन में जीवित रहने के लिए संघर्ष करता है। ''स्वतंत्रता का कितना मान है / मुझको अब इसका अनुमान है / सामने वह पिंजरे में तोता है / उसे देख दर्द आज होता है।''[17]

प्रसाद, पंत, वर्मा आदि कवियों ने अपनी अनुभूति से अलग अलग ढंग से आषाढ़ को कविता का विषय बनाया है। अज्ञेय ने अपने काव्य संग्रह 'इत्यलम' में भी आषाढ़ को विरह मास के रूप में देखा है। ग्रीष्म ऋतु से तपती विरहिणी किस तरह वर्षा की बूंदों के पड़ने पर विरह की उष्णता का परित्याग करती है। ''ओ पिया पानी बरस / ओ पिया पानी बरसा / आषाढ़ की निशानी / ओ पिया पानी।''[18]

पूरा साहित्य जगत ऋतुओं से अलग नहीं रहा है। प्राय: सभी कवियों ने ऋतु के मनोवैज्ञानिक बोध से जोड़ने की कोशिश की है, वहीं पावस ऋतु के महत्व को प्रतिपादित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। जब पावस का प्रसंग आता है तो आषाढ़ और आषाढ़ के प्रथम दिवस की अभिव्यंजना और भी मार्मिक हो जाती है। कारण कि ग्रीष्मकाल की तपन के बाद का शीतल अनुभव प्रथम दिन ज्यादा प्रभावकारी हो जाता है। शीतलता का आगमन हो जाता है धरती की उर्वरता बढ़ जाती है। मनुष्य मात्र का मन आह्लादित हो जाता है। वाल्मीकि के शब्दों में अंत किया जाये तो कहना होगा कि-

''रज: प्रशान्तंसहिमोधवायुर्निदाघदोजप्रसरा: प्रशान्ता: ल
स्थिताहि यात्रा वसुधाधिपानांप्रवासिनोयान्तिनरा: स्वदेशान्।।''[19]

संदर्भ सूची

1. शर्मा, द्वारका प्रसाद, अनुवादक-श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, किष्किंधाकांड, संस्करण : 2000, पब्लिशरऔर बुक्सेलर रामनारायण लाल, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-258
2. वही, पृष्ठ संख्या-259
3. वही, पृष्ठ संख्या-260
4. अग्रवला, श्री वसुदेवशरण, कालिदास कृत मेघदूत, संस्करण : 1971, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठसंख्या-157
5. वही, पृष्ठ संख्या-158
6. वही, पृष्ठ संख्या-158
7. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानसकिष्किंधाकांड, संस्करण : संवत् 2060, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ संख्या-679
8. वही, पृष्ठ संख्या-679
9. वही, पृष्ठ संख्या-681
10. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, जायसी ग्रंथावली, नागमती वियोग खंड, संस्करण : 2009, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-304
11. शुक्लपं. उमाशंकर (संपादक), कवित्तरत्नाकरसंनापति कृत, सातवां संस्करण : 1993, हिंदी परिषद प्रकाशन, इलाहाबादविश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-25
12. सिंह नत्थन (संपादक), बालमुकुंदगुप्त ग्रंथावली, संस्करण : 2008, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, पृष्ठ संख्या-156-157
13. सिंह, नामवर (संपादक), नागार्जुन प्रतिनिधि कविताएं, ग्यारहवींआवृति : 2010, राजकमलपेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-63
14. वही, पृष्ठ संख्या-67
15. सिंह, केदारनाथ, त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएं, संस्करण : 2008, राजकमलपेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-6
16. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी, अपरा, संस्करण : 2006, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-11
17. सिंह, केदारनाथ, त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएं, संस्करण : 2008, राजकमलपेपरबैक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-79
18. मिश्र, विद्यानिवास (संपादक), अज्ञेय रचनावली, संस्करण : 2007, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-47
19. शर्मा, द्वारका प्रसाद, अनुवादक-श्रीमद्वाल्मीकि रामायण, किष्किंधाकांड, संस्करण : 2000, पब्लिशर और बुकसेलर रामनारायण लाल, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या-281

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
जननायक चंद्रशेखर विश्वविद्यालय, बलियाउ.प्र.

द फ्युनरल सर्विस

- श्रीमती अंजु रंजन

"यूके में और दूसरे यूरोपीय शहरों में फ्युनरल प्लान यानी अपनी अंतिम क्रिया की योजना एक आवश्यक योजना है। यह जीवन नहीं, मृत्यु बीमा है। इसके लिए प्रत्येक महीने या वर्ष आपकी तनख्वाह या बिजनेस की आमदनी से एक निश्चित राशि काट ली जाती है जो कि फ्युनरल प्लानर के खाते में जाती है। आपके बच्चों और आपके साथ फ्युनरल प्लानर एक एग्रीमेंट पर दस्तखत करता है जिसमें पूरा ब्योरा होता है कि आपकी अंतिम शोभा यात्रा कैसी होगी, आपको कहाँ और कैसे दफनाया या जलाया जाएगा। आपके लिए मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा या चर्च सर्विस का भी इंतजाम फ्युनरल प्लानर की जिम्मेदारी होगी। कितने लिमोजीन, मर्सेडीज या दूसरी गाड़ियाँ होंगी, कौन-कौन से फूल रिथ में लगे होंगे, सबकुछ पहले से ही तय कर किया जाता है। आपके बच्चों या पार्टनर को यह पता होता है क्योंकि वे भी इस समझौते के साझीदार या विटनेस होते हैं।"

रात के दो बजे हैं। स्वाति चुपचाप रो रही है। बाहर झींगुर सायं सायं शोर मचा रहे हैं। रात की कोई हमिंग चिड़िया शायद केनरी स्वाति के साथ जाग रही है। कई महीनों से स्वाति और उस चिड़िया में एक बहनापा सा हो गया है। एक अनाम रिश्ते के सूत्र से स्वाति उससे बंध गयी है।

बचपन में स्वाति अपने भाई-बहनों के साथ मैना और गौरैया के झुंड देखकर ताली बजा बजा कर गाती थीं-

चिड़िया चिड़िया उड़ती जाए
चिड़िया चिड़िया खुशी से गाए!

पर अब लगता है कि स्वाति के साथ यह केनरी भी रोते हुए गा रही है, महीन लम्बे विलंबित तान में। जैसे स्वाति के सुर में सुर मिलाना हो उसे! ग्लासगो में स्वाति के पति मुखर्जी साहब ने यह बड़े से किले की तरह कोठी बनायी थी। एक समय था कि यह कोठी कहकहों और किलकारियों से गुलजार रहती थी, पर अब वीरान है। बच्चे अमेरिका में सेटल हो गए हैं। बस पति और स्वाति यहीं रह गए हैं। पति बीमार हैं। भूलने की बीमारी हो गयी है उन्हें। डॉक्टर लोग शायद इसे अलजाइमर रोग कहते हैं।

उनकी याददाश्त की सुई कहीं अटक जाती है तब वह स्वाति को भी अँचिनही नजरों से देखते हैं। मन ही मन, बच्चे और स्वाति मना रहे हैं कि जल्दी ही पति को इस जीवन से मुक्ति मिल जाए तो वे चैन की साँस लें। सोचने में बड़ा अजीब सा लगता है पर सचमुच अब लोग उनसे तंग आ गए हैं। बच्चे यहाँ हैं नहीं, बस स्वाति ही उनकी तीमारदारी में लगी रहती है। स्वाति भी अब थक गयी है। वह चालीस साल से इस आदमी के मूड को भाँपकर काम करती आयी है, मूड के हिसाब से खाना बनाना, बोलना बतियाना और कपड़े पहनना।

करीब चालीस साल पहले भारत से वे लोग यहाँ मुखर्जी साहब की बड़ी नौकरी की वजह से आए थे। उन्हें यूके की रोबॉटिक्स बनाने वाली कम्पनी में उनकी असाधारण योग्यता के कारण चुन लिया गया था। उस समय स्वाति की उम्र सिर्फ उन्नीस साल थी। वह अपनी पढ़ाई भी पुरी नहीं कर पायी और यूके चली आयी। फिर धड़ाधड़ दो बच्चे आ गए और उसकी पढ़ाई बीच में रह गयी। शुरू शुरू मे तो उसे स्कोटिश अंग्रेजी समझ ही नहीं आती थी और वह बकाठ की तरह लोगों का मुँह देखती रह ज़ाती थी।

धीरे धीरे स्वाति ने माहौल को समझना शुरू किया। बच्चे बढ़ने लगे। स्कूल जाने लगे। मुखर्जी साहब को तरक्कियाँ मिलती गयी। वे

ब्रिटेन के एक शहर से दूसरे शहर मे नौकरियाँ बदलते रहे और अस्सी वर्ष की आयु तक काम करते रहे। स्वाति उनकी वफादार जीवनसंगिनी बनी रही है। उनका खाना- पीना, कपड़े- जुत्ते सरियाती रहीं। उन्हें घर और बच्चों की जिम्मेदारियों से मुक्त रखा।

बच्चे बड़े हुए तो बच्चों का अपना संसार बना। उनकी दोस्तियाँ हुईं, फिर शादियाँ और आखिर में डिवोर्स भी हो गया। अब वे लोग अपने पार्टनर के साथ रहते है। पिता की बीमारी सुनकर भी वे नहीं आ पाए। शायद दूरियों का तकाजा रहा होगा या नौकरी की मजबूरियाँ। पति की बीमारी वह भी मौत के करीब ले जाती हुई! गजब की सहनशक्ति है स्वाति में! उसने अकेले सब सम्भाला। निस्संदेह, कई भारतीय परिवारों ने भी सहारा दिया, क्योंकि स्वाति हमेशा उनके दुःख- सुख में खड़ी रही थी। मुखर्जी साहब के कुछ रिश्तेदार भी यूके में थे। पर वे भी व्यस्त थे। उन्होंने सिर्फ अपनी शुभकामनाएँ भेजीं। जबकि स्वाति और मुखर्जी साहब ने हमेशा उनके लिए बहुत किया, उनके यूके के वीजा से लेकर बच्चों को नौकरी दिलाने तक। पर वे कभी मिलने नहीं आ पाए।

स्वाति को आज फ्युनरल डिरेक्टर से मिलना था। शायद अंतिम संस्कार के बीमे की अंतिम किश्त देनी बाकी है। मुखर्जी साहब ने अपना और स्वाति के अन्तिम संस्कार की बीमा और बुकिंग कर रखी है। यह युरोपीय और अमरीकी देशों की खासियत है कि अपना अंतिम संस्कार के लिए खुद ही इंतज़ाम करके मरो ताकि बच्चे और रिश्तेदार काले चमचमाते सूट में स्मार्ट लगें और उन्हें माँ-बाप के मृत शरीर को छूना न पड़े। बस वे एक गेट टूगेदर करके अपने कर्तव्यों की इतिश्री कर लें। यहाँ का नैशनल फ्युनरल सर्विस वाला बेहद लोकप्रिय है। आज वह मिलने आने वाला है। स्वाति को मुखर्जी साहब और अपने अंतिम संस्कार के अंतिम यात्रा की रूपरेखा बनानी होगी। करीब 100-150 लोग तो आएँगे। उन्हें फ्युनरल के बाद चाय-नाश्ता भी देना पड़ेगा। भारतीयता के नाते स्वाति सोचती है कि शाकाहारी सैंडविच देना ही ठीक रहेगा। समोसे भी रखे जा सकते हैं, मुखर्जी साहब को पसंद भी हैं। कई भारतीय परिवार कुछ न कुछ बनाकर भी ले आएँगे। पर अभी से किसी को पूछना अच्छा नहीं लगता।

स्वाति अधिकांश कम्यूनिटी फ्युनरल में सहानुभूति व सांत्वना देने पहुँचती है इसलिए आशा करती है कि मुखर्जी साहब के फ्युनरल में भी कई नामी-गिरामी लोग आएँगे। उस दिन स्वाति को क्या पहनना चाहिए? सफेद साड़ी! या फिर काली वेस्टर्न गाउन ? स्वाति को माँ याद आती है और वह नजारा! बाबू के मौत के बाद नदी पर सिंदूर धुलाने के बाद नाइन ने मायके से आयी सफेद साड़ी माँ को पहनाने की कोशिश की थी। सफेद साड़ी और चाँदी की सफेद चूड़ियाँ! बड़की मामी की आँखों में आँसू थे और उसके पीछे था गहन संतोष क्योंकि माँ के सौंदर्य व सुख-सौभाग्य से मामी बेहद जलती थीं। माँ दहाड़ें मारकर रो रही थीं, 'हम सफेद साड़ी न पहिरब! ऐ भौजी न पहिरब!' भौजी(मामी) ने उन्हें कोरिया लिया था और खुद ही सफेद साड़ी माँ को लपेट दी थी। 'बबुनी! न इतराई पूत भतारे- न इतराई लम्बी केश! भगवान का सबसे सार्थक नाम है, दर्पहारी। तुम्हारा दर्प चूर चूर कर दिया भगवान ने बबुनी। अब सफेद साड़ी या लाल साड़ी कोई फर्क नहीं पड़ता।' चचेरी दादी ने तुरंत मामी को आड़े हाथों लिया था, 'क्या अँट-शंट बक रही हो तुम कनिया, मारे को और भी मुगदर से मार रही हो। चालीस की उम्र कोई उम्र होती है जो कि कफन जैसा सफेद साड़ी उठा लायी हों- कम से कम प्याजी या हल्का नीला रंग की तो खरीदतीं। मायके के लिए इसलिए कहा जाता है- बिना माई के कैसन मायका और बिन सैंया के कैसन ससुराई।'

स्वाति सोचती है कि क्या माँ का सुहाग सिर्फ़ साड़ियों और चूड़ियों में था! क्या बाबा के जाने से बड़ा दुःख था, उसके लिए सफेद साड़ी और चूड़ियों का जबरन थोप दिया जाना! वह माँ के लिए ममतालु हो उठती है, माँ के भीतर जो अल्हड़ जवान लड़की साँसे ले रही थीं, वह विधवा हो गयी थी। इसलिए माँ सफेदी से इतना घबरा रही थी। समाज ने माँ को रंगों से दूर कर देने की साजिश रची थी, माँ शायद उसका विरोध कर रही थी। क्या सफेद रंग सचमुच शांति देता है? स्वाति को कभी भी

सफेद रंग नहीं भाया। सफेद गरद की लाल पाड़ वाली साड़ी भी नहीं। जब दुर्गा पूजा में वे साड़ियाँ उसे मिलती हैं, तो सब की सब बाँट देती है। तो अब क्यों सफेद रंग पहने वह! स्वाति निश्चय करती है कि वह काला गाउन पहनेगी और पति के फ्युनरल पर खुद भी जाएगी, श्मशान या क्रिमीटोरियम!

यूके में और दूसरे यूरोपीय शहरों में फ्युनरल प्लान यानी अपनी अंतिम क्रिया की योजना एक आवश्यक योजना है। यह जीवन नहीं, मृत्यु बीमा है। इसके लिए प्रत्येक महीने या वर्ष आपकी तनख्वाह या बिजनेस की आमदनी से एक निश्चित राशि काट ली जाती है जो कि फ्युनरल प्लानर के खाते में जाती है। आपके बच्चों और आपके साथ फ्युनरल प्लानर एक एग्रीमेंट पर दस्तखत करता है जिसमें पूरा ब्योरा होता है कि आपकी अंतिम शोभा यात्रा कैसी होगी, आपको कहाँ और कैसे दफनाया या जलाया जाएगा। आपके लिए मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारा या चर्च सर्विस का भी इंतजाम फ्युनरल प्लानर की जिम्मेदारी होगी। कितने लिमोजीन, मर्सेडीज या दूसरी गाड़ियाँ होंगी, कौन-कौन से फूल रिथ में लगे होंगे, सबकुछ पहले से ही तय कर किया जाता है। आपके बच्चों या पार्टनर को यह पता होता है क्योंकि वे भी इस समझौते के साझीदार या विटनेस होते हैं। अगर बच्चे चाहें तो अपनी तरफ से भी कोई अतिरिक्त कार्यक्रम रख सकते हैं। पर आजकल यह बहुत कम हो गया है। अंत में बच्चे या पार्टनर ही फ्युनरल तय करते हैं, वही गवाह भी रहते हैं कि फ्युनरल कैसा हुआ, तो वे समयाभाव या किसी निजी कारणवश यही चाहते हैं कि सभी कार्यक्रम जल्द से जल्द निपट जाय। आजकल की भागती दौड़ती जिंदगी में अक्सर फ्युनरल सप्ताहांत में होते हैं और एक- दो दिन में सारे कार्यक्रम निपट जाते हैं। यहाँ, भारत की तरह चौथा, दसवीं या तेरहवीं नहीं की जाती। यहाँ पुजारी या चर्च भी बहुत तंग नहीं करता क्योंकि फ्युनरल प्लानर उसे भी पहले ही बुक करके रखते हैं और एक निश्चित राशि उसे अग्रिम दे देता है।

दूसरे दिन फ्युनरल प्लानर कंपनी के निदेशक स्टीव के साथ स्वाति की मीटिंग ठीक ठाक रही। फ्युनरल निदेशक ने उन्हें दस प्रतिशत की छूट भी देने का वादा किया। स्वाति ने अर्थी के साथ सफेद फूल की बजाय गुलाबी सजावट को चुना जिसे स्टीव ने सहर्ष मान लिया। 'आपने कभी हिंदू फ्युनरल कराया है?' स्वाति ने चाय की घूंट लेते हुए उससे पूछा। 'मेरी सौतेली माँ हिंदू थी और मैंने ही उसका अंतिम संस्कार हिंदू रीति से करवाया था। मेरे पिता का देहांत हो चुका था। आपको अन्दाजा नहीं होगा कि पचीस साल पहले यूके में हिंदू पुजारी की व्यवस्था करना कितना कठिन रहा होगा। फिर भी मैंने सरोज के लिए यह सब किया।'

'गॉड ब्लेस यू।'

'पर मेरी सौतेली माँ मेरे साथ उतनी दयालु नहीं थीं। वे मुझे नापसंद करती थीं।'

बच्चे बड़े हुए तो बच्चों का अपना संसार बना। उनकी दोस्तियाँ हुई, फिर शादियाँ और आखिर में डिवोर्स भी हो गया। अब वे लोग अपने पार्टनर के साथ रहते है। पिता की बीमारी सुनकर भी वे नहीं आ पाए। शायद दूरियों का तकाजा रहा होगा या नौकरी की मजबूरियाँ। पति की बीमारी वह भी मौत के करीब ले जाती हुई! गजब की सहनशक्ति है स्वाति में! उसने अकेले सब सम्भाला। निस्संदेह, कई भारतीय परिवारों ने भी सहारा दिया, क्योंकि स्वाति हमेशा उनके दुःख- सुख में खड़ी रही थी। मुखर्जी साहब के कुछ रिश्तेदार भी यूके में थे। पर वे भी व्यस्त थे। उन्होंने सिर्फ अपनी शुभकामनाएँ भेजीं। जबकि स्वाति और मुखर्जी साहब ने हमेशा उनके लिए बहुत किया, उनके यूके के वीजा से लेकर बच्चों को नौकरी दिलाने तक। पर वे कभी मिलने नहीं आ पाए।

'भारतीय सौतेली माएँ अक्सर ऐसी ही होती हैं।'

'शायद वे असुरक्षित महसूस करती थीं। क्योंकि मेरे पिताजी यूके के एक जिले के अटर्नी थे और अपनी क़ानूनी ज्ञान की धौंस उनपर चलाते रहते थे।'

'ओह!' स्वाति समझ गयी कि स्टीव बहुत बातूनी था। पर स्टीव ने शायद किसी भारतीय महिला से बहुत दिनो से बात नहीं की थी और स्वाति उसे बहुत आत्मीय-सी लगी तभी वह बोलता चला गया।

'मुझे लोगों की मदद करना अच्छा लगता था। फिर थोड़ा लोन लेकर मैंने अपनी फ्युनरल सर्विस की कम्पनी खोली। यह बहुत बढ़िया बिजनेस है। और जब तक मनुष्य जाति रहेगी, यह काम कभी मंदा नहीं पड़ेगा। 'यानी तुम उनके मरने की मनाते हो? तुम्हें शायद पता नहीं होगा कि भारत में श्राद्ध कराने वाले ब्राह्मण को घर में घुसने नहीं दिया जाता, उन्हें मनहूस माना जाता है।

स्टीव हँसा ' मुझे सब पता है। आप भारतीय लोग मुर्दों से भी बहुत डरते हो। मेरी सौतेली माँ, सरोज -भी मुर्दों से बहुत डरती थीं और एक बार कड़कड़ाती सर्दी में मुझे घर से बाहर निकाल दिया था।'

'क्यों?' अब स्वाति को थोड़ा इंट्रेस्ट आने लगा था या वह किसी के प्रति रूक्ष नहीं दिखना चाहती थीं। 'क्योंकि मुझे दूसरी कोई गाड़ी नहीं मिली और मैं मुर्दे को अपनी गाड़ी में बिठाकर जैसे तैसे घर लाया। मेरा दोस्त अगली सुबह कॉफिन लाने वाला था। मैंने मुर्दे को बीच वाली सीट पर लिटाकर उसे सम्मान पूर्वक ढँक दिया और कार का एससी ऑन कर

मुखर्जी साहब घर के बाहर जितने सभ्य और शालीन थे, घर के भीतर उतने ही सामंती और कड़े स्वभाव के थे। कई बार तो जेल भी जाते जाते बचे क्योंकि उन्होंने बच्चों को और स्वाति को पीटा था। तब स्वाति ने ही पुलिस को झूठा बयान देकर उनको बचाया था कि उन दोनों के बीच कोई समस्या नहीं है। यूके में आप पत्नी और बच्चों को पीट नहीं सकते, उनसे दुर्व्यवहार नहीं कर सकते, तुरंत पुलिसकर्मी आकर आपको अरेस्ट कर सकते हैं। बच्चों को स्कूल में कविता की तरह एक वाक्य सिखाया जाता है- 'डायल नाइन नाइन नाइन, एंड यू विल बी फाइन!' यानी 999 डायल करो तो तुम हमेशा खुश रहोगे) नाइन नाइन नाइन यानी बच्चों के हाथ में ब्रह्मास्त्र! बच्चे तुरंत डायल कर अपने माता पिता की शिकायत कर सकते हैं। शुरू में तो स्वाति को भी बहुत तकलीफ हुई थी। वह रोमा और गौतम को डाँट नहीं सकती थी, मारना तो दूर की बात थी!

दिया। गैराज बंद करके मैं अपने कमरे में चला गया। बहुत थका हुआ था, सो गया। बदकिस्मती से सरोज को गाड़ी लेकर किसी को स्टेशन से लाना था। वह गैराज में गयी। गाड़ी की बीच वाली सीट पर मुर्दे को देखकर डर गयी और जोर जोर से चीखने लगी। मेरे डैड सरोज को बेहद प्यार करते थे। उन्होंने मुझे उसी दिन घर से बाहर निकाल दिया। अफसोस, बहुत दिनो तक सरोज मुझे माफ नहीं कर पायी।'

'सारा दोष उसका भी नहीं था।'

'देखिए! मैंने अपने काम में बहुत कमिटेड हूँ। मैं मुर्दों को भी डिग्निटी देता हूँ। सम्मान करता हूँ। लोग तो कम पैसे देकर भी रॉयल फ्युनरल चाहते हैं - लिमोजीन में बॉडी, आगे पीछे चार-चार मर्सीडीज, कारनेशन के फूलों से भरा ताबूत! प्राइम लोकेशन में बरीयल फिर तीन सौ लोगों को भोज! जहाँ तक होता है, उनको एडजस्ट करने की कोशिश करता हूँ। मैं आदमी को देखकर ही उसकी फितरत समझ जाता हूँ पर माफ कीजिए, मुझे आदमी की नहीं, मुर्दों की अधिक पहचान है। वे भाग नहीं सकते और न ही धोखा दे सकते हैं।' स्टीव अपने जोक पर खुद हँस पड़ा।

स्वाति ने मन ही मन सोचा। 'भारत में फ्युनरल सर्विस देने वाले को क्या कहते हैं- डोम! कितना घृणित काम माना जाता है- जबकि ज़िंदगी की सबसे महत्वपूर्ण संस्कार, मृत्यु में उसका योगदान अतुलनीय है। काश! भारत में भी ऐसी फ्युनरल सर्विस होती।' स्वाति को आज फ्युनरल प्लानर स्टीव से बहुत सी बातें पता चली, कि मुखर्जी साहब ने अपने लिए तो प्लैटिनम फ्युनरल प्लान लिया था और स्वाति के लिए साधारण वाली। उन्होंने खुद के लिए तीन सौ लोगों की व्यवस्था करने के लिये पैसे अदा किए थे जबकि स्वाति के लिए पचास लोगों की व्यवस्था थी। छीः! यह आदमी कितना स्वार्थी निकला। पर स्वाति के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी।

मुखर्जी साहब घर के बाहर जितने सभ्य और शालीन थे, घर के भीतर उतने ही सामंती और कड़े स्वभाव के थे। कई बार तो जेल भी जाते जाते बचे क्योंकि उन्होंने बच्चों को और स्वाति को पीटा था। तब स्वाति ने ही पुलिस को झूठा बयान देकर उनको बचाया था कि उन दोनों के बीच कोई समस्या नहीं है। यूके में आप पत्नी और बच्चों को पीट नहीं सकते, उनसे दुर्व्यवहार नहीं कर सकते, तुरंत पुलिसकर्मी आकर आपको अरेस्ट कर सकते हैं। बच्चों को स्कूल में कविता की तरह एक वाक्य सिखाया जाता है- 'डायल नाइन नाइन नाइन, एंड यू विल बी फाइन!' यानी 999 डायल करो तो तुम हमेशा खुश रहोगे) नाइन नाइन नाइन यानी बच्चों के हाथ में ब्रह्मास्त्र! बच्चे तुरंत डायल कर अपने माता पिता की शिकायत कर सकते हैं। शुरू में तो स्वाति को भी बहुत तकलीफ हुई थी। वह रोमा और गौतम को डाँट नहीं सकती थी, मारना तो दूर की बात थी!

मुखर्जी साहब ने स्वाति को सदा साड़ी पहनने को बाध्य किया, हाँ रात को भी। उन्हें शक करने की बीमारी थी, जो जीवन पर्यंत नहीं गयी। हर किसी पर उन्हें शक था कि वह व्यक्ति स्वाति को पटाने की कोशिश कर रहा है। ऑफिस में वे टास्क मास्टर थे तो घर के हिटलर! स्वाति का बेटा -गौतम, उनसे बहुत डरता था। उनके लगातार घुड़कने के कारण ही वह हकलाने लगा और उसकी हकलाहट कभी नहीं गयी। बेटी के साथ हुए उस हादसे में भी उन्होंने स्वाति को ही जिम्मेदार ठहराया था। रोमा, उसके मना करने के बावजूद स्वाति की छोटी बहन के घर कनाडा गयी थी। वहीं वह दुर्घटना घट गयी। रोमा को उसकी मौसेरी हमउम्र बहन टीना रात में एक बदनाम बार में ले गयी। वही शायद किसी ने उसे ड्रग्स दे दिया और उसका शारीरिक शोषण किया। पर रोमा को कुछ भी याद नहीं था। आज तक नहीं है। उसकी यादयाश्त से वह शनिवार हमेशा के लिए डिलीट हो गया था। रोमा वापस जब ब्रिटेन आयी तो गुमसूम और मानसिक रूप से बीमार रहने लगी थी। बड़ी मुश्किल से स्वाति ने उसे सम्भाला। रोमा की पढ़ाई का बड़ा नुकसान हुआ। वह साल ही बेकार गया।

उस कठिन दौर में भी मुखर्जी साहब ने स्वाति को प्रताड़ित किया। उनका आरोप था कि स्वाति के कहने से ही रोमा कनाडा गयी और अपनी इतनी क्षति पहुँचायी, जिसकी भरपायी मुश्किल है। बंगाली-बिहारी समुदाय में सब दबी जुबान से इस घटना की निंदा करते और मुखर्जी परिवार से दूरी बनाने की कोशिश करते। दुर्गा पूजा जिसकी संस्थापिका स्वाति और मृणमयी थीं, अब किनारे खड़ी रहकर लोगों की उपेक्षा झेल रही थीं। बाद में बड़ी मुश्किल से रोमा ने जैसे तैसे अपनी

पढ़ाई पूरी की। तब उन लोगों ने शहर बदल लिया और ग्लैज्गो आ गए। मुखर्जी साहब ऑफिस में तरक्की पाते जाते थे क्योंकि वे अपने काम में बहुत ईमानदार और स्ट्रिक्ट टीम लीडर थे। उनकी कम्पनी को पहला मेडिकल रोबाटिक्स बनाने का श्रेय जाता है। परंतु, घर में उनका रवैया एक कड़क भारतीय बाप का था। पत्नी और बच्चों को वे दोयम दर्जे का समझते थे। वे यह मानते थे कि अगर आदमी घर का कर्ता है, सर्वेसर्वा है तो उसे अपनी ज़िंदगी में स्वच्छंदता की खुली छूट है। उनके ज़िंदगी के मापदंड पुरुषों और स्त्रियों के लिए अलग अलग थे। उनके जीवन में अनेक स्त्रियाँ आयीं। सबको स्वाति चुपचाप झेलती रहीं। कभी कुछ कहा नहीं। बस रात को वह रो पड़ती। बेटा गौतम हकलाता हुआ पूछता

'क्क्या हुआ म्ममा?'

'कुछ नहीं शोना! बुरा सपना देखा था.'

'स्सो ज्जाओ'।

हद तो तब हो गयी जब वे एक आधी फ्रेंच और आधी भारतीय महिला को घर ले आए और उसका परिचय अपने कार्यालय में सहयोगी के तौर पर कराया। शोना का रूम खाली करवा कर उस औरत को छह महीने घर में रखा। वह फ्रेंच औरत अंततः मुखर्जी साहब को सिफलिस का सौगात देकर विदा हुई और यह राजरोग आवश्यक रूप से स्वाति को मिल गया। फिर ट्रीटमेंट, उपेक्षा और बदनामियों के भँवर के बीच स्वाति जीने की कोशिश करने लगी। मध्यवित्त घराने की स्वाति बच्चों और घर में काम करके पस्त हो चुकी होती तब साहेब का पति जाग उठता। घर में सहूलियत नहीं सुविधाएँ नहीं और उन्हें सारा शान-शौकत राजसी चाहिए था। स्वाति इस दिखावे में बुरी तरह पिस जाती। इसी तरह उनकी अन्य महिला मित्रों को स्वाति ने दाँत पीसकर और मुँह सीकर झेला। लिजी, अलीन, शायरा और मैत्री सान्याल! सबने अपनी सेवाएँ मुखर्जी साहब को दिया और स्वाति को दिया आँखों के नीचे काले घेरे, माइग्रेन और डिप्रेशन की बीमारी!

'तुम इतना क्यों सहती हो? दी!' मृणमयी ने उनसे पूछा था। मृणमयी - स्वाति की सबसे अच्छी सहेली! अब वह ओल्ड्ज केयर होम (वृद्धाश्रम) में रहती है। मृणमयी और स्वाति, दोनों जमशेदपुर से आयी थीं। उन दोनों के पति कलकत्ता यूनिवर्सिटी के मेधावी विद्यार्थी थे। स्वाति के पति पुंडरीकाक्ष मुखर्जी ने रोबाटिक्स में रीसर्च पर साठ के दशक में यूके का फूल ब्राइट वजीफा पाया था, यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। स्वयं भारत के प्रधानमंत्री ने उन्हें मुबारकबाद भेजा था। ठीक उसी तरह मोजर्ट की कई धुनों का भारतीय संस्करण बनाने के लिए मृणमयी के पति, सुब्रत रॉय फिल्म इंडस्ट्री में बेहद लोकप्रिय थे। बाद में उन्हें भी पीके मुखर्जी ने इंग्लैंड बुला लिया था। स्वाति और मृणमयी दोनो जमशेदपुर की थीं- दोनो लोयोला कॉन्वेंट की पढ़ी निकलीं।

स्वाति दो साल सीनियर थीं। मृणमयी के आने के बाद स्वाति को एक अच्छी सहेली मिल गयी। दोनों साथ शॉपिंग जातीं। पियानो बजाना और केक बनाना सीखतीं। कभी वे लोग पिकनिक पर जाते तब स्वाति पुरियाँ बनाती और मृणमयी आलू दम। दोनों के दो-दो बच्चे हुए। एक लड़की और एक लड़का। बच्चे भी एक ही स्कूल में पढ़ते। लड़के हमउम्र और लड़कियाँ हमजोलियाँ थीं। ज़िंदगी कितनी गुलज़ार थी। सब कुछ व्यवस्थित। समय से बच्चे, उनकी परवरिश, शादियाँ- नौकरियाँ। एक सुंदर पार्सल की तरह यह ज़िंदगी स्वाति को पसंद थी।

नववर्ष पर वे लोग बंगाली कम्यूनिटी की ओर से आयोजित कार्यक्रम में सम्मानित गायकों की तरह गाते। 'से जे पुरानो दिनेर कोथा भूलबि कि रे नाँय, औल्ड लैंग साइन माई जो औल्ड लैंग साइन, 'गुरुदेव रविंद्र और रॉबर्ट बर्न की कोमल, मृसण धुनें एक दूसरे से गुँथती चली जातीं और वे लोग नए साल में प्रवेश कर जाते। इसी तरह कितने सालों की विदाई दी और कितनों का स्वागत किया, इसका हिसाब स्वाति ऊँगलियों पर नहीं लगा पाती। चालीस साल हो गए देश से बाहर आए हुए। शुरुआत में बड़ी दिक्कत होती थी। मौसम इतना ठंडा और लोग इतने रूखे- सूखे। ट्रेन वैगेरह में साथ वाली सीट खाली हो तो भी आपके बगल में नहीं बैठेंगे। भले ही खड़े होकर हिचकोले खा रहे हों। विश्व अभी बाई-पोलर था। भारत की रुस के साथ नजदीकियाँ बढ़ रही थीं और अमेरिका व ब्रिटेन दूर जा रहे थे। अमेरिका, ब्रिटेन व रुस अपनी सामरिक और वैज्ञानिक क्षमता बढ़ाने का प्रयास कर रहे थे। रोबोटिक्स को और भी सुगम और उपयोगी बनाने के लिए मुखर्जी साहब का चयन ब्रिटेन की एक रक्षा विशेषज्ञ के तौर पर महारानी ने किया था। वे अपने काम में पूरी तरह डूब गए थे और अक्सर ऑफिस से लेट हो जाते। घर पहुँचते पहुँचते बहुत देर हो जाती। स्वाति घबरायी बैठी रहती। बच्चे पापा की राह तककर सो चुके होते। स्वाति कभी धीरे से कभी लड़कर उनसे ऑफिस से जल्दी आने की इसरार करती तो मुखर्जी साहब पिनक जाते। 'बच्चों को इतना कमज़ोर मत बनाओ स्वाति कि ये पापा को देखे बिना सो न सकें। मैं आख़िर इन्हीं के लिए तो खट रहा हूँ ताकि उन्हें वे सारी सुविधाएँ दे सकूँ जो मुझे और तुम्हें नहीं मिलीं। मैं आज व्यस्त हूँ बेहतर कल के लिए। कल हम सब साथ साथ रहेंगे।'

अब मुखर्जी साहब को जबकि फुरसत ही फुरसत है तब बच्चे अपनी दुनिया में व्यस्त हैं। स्वाति अकेले सब कुछ सम्हाल रही है। जिन्दगी का अंतिम पड़ाव कितना तनहा और उबाऊ है। एक एक दिन बोझ सा बन गया है मानो। स्वाति के पति की हालत और भी बिगड़ती जा रही है। डॉक्टर ने हॉस्पिटल से जवाब दे दिया है। मुखर्जी साहब को कल होसपाईस शिफ़्ट करना है। होसपाईस यानी जहाँ मृतप्राय टर्मिनल मरीजों को रखा जाता है। होसपाईस में एक सप्ताह तक ही मरीज रह सकते हैं। इसी एक सप्ताह में मरीज को मर जाना पड़ता है। अगर नहीं मरे तो उसके घर वालों को बड़ी तगड़ी फ़ीस अदा करनी पड़ती है। उस हॉस्पिटल पर भी ऐक्शन हो सकता है जिसने अपने मरीज को यहाँ

मुखर्जी साहब को कल होसपाईस शिफ़्ट करना है। होसपाईस यानी जहाँ मृतप्राय टर्मिनल मरीजों को रखा जाता है। होसपाईस में एक सप्ताह तक ही मरीज रह सकते हैं। इसी एक सप्ताह में मरीज को मर जाना पड़ता है। अगर नहीं मरे तो उसके घर वालों को बड़ी तगड़ी फ़ीस अदा करनी पड़ती है। उस हॉस्पिटल पर भी ऐक्शन हो सकता है जिसने अपने मरीज को यहाँ शिफ़्ट करने के लिए रेकमेंड किया था। होसपाईस में हरदम कॉफ़ी और सैंडविच रखी मिल जाती है। लोग बाहर लाउंज में बैठकर शीशे से और सीसी टीवी में अपने मरीजों को देख सकते हैं। एक निश्चित घंटे में डॉक्टर मरीजों के पास जाते हैं।

शिफ़्ट करने के लिए रेकमेंड किया था। होसपाईस में हरदम कॉफ़ी और सैंडविच रखी मिल जाती है। लोग बाहर लाउंज में बैठकर शीशे से और सीसी टीवी में अपने मरीजों को देख सकते हैं। एक निश्चित घंटे में डॉक्टर मरीजों के पास जाते हैं।

डॉक्टर विजिट आवर में मुखर्जी साहब चिड़चिड़े हो जाते हैं। स्वाति को, बच्चों को गंदी गंदी गालियाँ बकते हैं- मुख्यतः बँगला में। डॉक्टर को कुछ नहीं समझ आता पर स्वाति सब कुछ समझती है। उनका मानसिक विकार मरते वक्त भी स्वाति को कोंच रहा है, प्रताड़ित कर रहा है। कमरे के ठीक बाहर बैठी है स्वाति और गलियारे में करीब बीस पच्चीस लोग चहलकदमी कर रहे हैं पर चुपचाप स्वयं में लीन। सबके परिवार के कोई न कोई यहाँ मरने के लिए आया है। आज कल में मर ही जाएगा। क्या मुखर्जी साहब के मरने पर स्वाति को दुःख होगा? स्वाति स्वीकार करती है थोड़ा तो होगा आखिर पति हैं! चार दशक से भी अधिक सालों का साथ है। अच्छा और बुरा। खट्टा और मीठा! पर मृत्यु के बाद अच्छी स्मृतियाँ ही जेहन में रहती हैं। तभी एक लाश आइसीयू से बाहर निकली। सारे घरवाले गमगीन चेहरा जिस पर थोड़ी राहत भी थी, पीछे पीछे चले गए। अभी तक गौतम नहीं आया।

मुखर्जी साहब को डॉक्टर ने एक-दो दिन का ही समय दिया है। अमेरिका से यहाँ आना भी तो मुश्किल है। गौतम शायद न भी आना चाहता होगा। उसे मुखर्जी साहब की बेरुखी व फटकार याद आ रही होगी। एक बार बर्फबारी होते हुए में ही उन्होंने गौतम को घर से बाहर फेंक दिया था, क्योंकि वह पढ़ाई नहीं कर पा रहा था और साथ ही हकला भी रहा था। स्वाति को नर्स आकर खबर करती है कि मुखर्जी साहब मिलना चाह रहे हैं। वह नर्स के पीछे पीछे आईसीयू के कमरे में जाती हैं। मुखर्जी साहब की साँस उखड़ रही थी। उन्होंने स्वाति का हाथ अपने हाथ में लिया और भरभरायी आवाज में ऑक्सीजन मास्क हटाकर गिड़गिड़ाने लगे। 'स्वाति मैं मरना नहीं चाहता। मुझे बचा लो। मैं अच्छा बाप व अच्छा पति बनकर रहना चाहता हूँ। गौतम को सॉरी बोलना चाहता हूँ। वह जान-बूझकर नहीं आ रहा है। मुझे पता है- आखिर मेरा ही खून उसमें है ना।' वे उत्तेजित होकर खाँसने लगे। तभी नर्स ने आकर स्वाति को हटाया और खुद मुखर्जी साहब के पास बैठ गयी। होसपाईस में बेहद कोमल स्वर वाली प्रशिक्षित नर्सों को रखा जाता है जो मरते हुए रोगियों को संभाल सकें।

यह आश्चर्य की बात है कि वहाँ मरीजों को मरने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया जाता है और उन्हें भरपूर शांत और आराम देने की हर सम्भव कोशिश की जाती है। 'लेट ईट गो! लेट ईट गो!' नर्स धीरे धीरे उनकी हथेलियाँ थपकते हुए बुदबुदा रही थी। स्वाति ने अंदर एक आलोड़न महसूस किया और अचानक कड़वा सच बिजली की भाँति उसके सामने कौंध गया। ओह! मुखर्जी साहब के लिए आज की रात भारी है। वह वहीं आखिरी रात गुजरना चाहती थीं, अपने पति के साथ एक सुहागन की आखिरी रात! पर नर्स ने बरज दिया। वह उन्हें कोमलतापूर्वक कार तक ले गयी। 'आर यू ओके?' 'येस, आई ऐम फाइन।' स्वाति ने क्षीण स्वर में कहा और गाड़ी स्टार्ट कर घर वाली सड़क पर मोड़ लिया। घर पहुँचकर शर्त के अनुसार उसने स्टीव को फोन किया। 'आई एम सॉरी मिसज मुखर्जी।' स्टीव की संवेदना भरा स्वर सुनायी दिया। 'वे अभी जिंदा हैं।' ' ओह!'... थोड़ी देर सन्नाटा पसरा रहा। 'आप चिंता न करें। मैं सब सम्हाल लूँगा। मुझे हिंदू फ्युनरल का खूब अनुभव है।' स्टीव ने पूछा था 'गौतम आएगा क्या?' 'शायद नहीं, क्या कल ही फ्युनरल हो सकता है?' 'अगर मुखर्जी साहब चाहें तो जरूर हो सकता है! ' बोलने के बाद स्टीव को लगा कि वह गलत बोल गया है। यही बात स्वाति को भी लगी।

अभी मुखर्जी साहब जिंदा हैं। अभी कैसे वह फ्युनरल के बारे में सोच सकती है? कहीं न कहीं स्वाति के अंतर में भारतीय पत्नीत्व और पातिव्रत्य को धक्का लगा। पर ' जो पांडे के पतरा में वही पंडिताइन के अँचरा में!' थोड़ी देर बाद ही होसपाईस से फोन आया कि मुखर्जी साहब नहीं रहे। स्वाति सन्न रह गयीं पर आँसू नहीं बहे। थोड़ी देर के बाद वह प्रकृतिस्थ हुई और तब स्वाति ने कपड़े बदले। उसने सफेद चिकनकारी की साड़ी पहन ली। अपने लिए टिन खोलकर बोईल्ड सेम निकाला, माइक्रोवेव किया और टीवी खोलकर सोफे में बैठ गयी। खा-पीकर कमरा खाली किया। यहीं बीच वाले निचले ड्रॉइंग रूम में ताबूत रखा जाएगा। कम से कम तीन सौ लोग तो आएँगे ही।

मुखर्जी बाबू सुप्रसिद्ध थे, सामाजिक थे और मंदिर में ढेर चढ़ावा चढ़ाते थे। हो सकता है, मंदिर वाले स्पेशल सर्विस दें। यहाँ चर्च की तरह मंदिर भी मृत्यु पर कुछ वीआईपी को स्पेशल सर्विस देता है। फिर स्वाति ने लिस्ट निकाली और 'टू डू' वाले कॉलम को पढ़ना शुरू किया। सब कुछ तैयार है। कफन, ताबूत, चंदन की लकड़ी, घी, माला, गंगाजल,

तिल-जौ (पिंड दान के लिए), तंदूल का पिट्ठी, रामनामी चादर, तुलसी दल- सबकुछ! सुबह स्टीव ने आकर उनका अभिवादन किया। मूखाग्नि संस्कार कौन करेगा? स्वाति ने मेले में खोई हुई बच्ची की तरह स्टीव को देखा। मृणमयी के बच्चे भी यहाँ नहीं हैं- बाकी सब परिचित हैं पर सगा रिश्तेदार या करीबी मित्र कोई नहीं जिससे स्वाति मुखाग्नि संस्कार के लिए कह सके। 'स्टीव तुम ही मुखाग्नि दे दो न।' 'मैं कैसे? मैंने तो आज सुबह ड्रिंक भी लिया था- जस्ट वाइन।' 'कोई फर्क नहीं पड़ता।' स्वाति अस्फुट स्वर में कहती है। 'मैं तुम पे जोर नहीं डालना चाहती। अगर तुम नहीं करोगे तो मुझे ही मुखाग्नि देनी पड़ेगी।'

'नो नो ऐसी कोई बात नहीं है। मैं तैयार हूँ।' मुखर्जी साहब जो इतने परम्परागत थे, उनको मुखाग्नि एक ब्लैक क्रिस्चन युवक ने दिया! वक्त ही बदल गया है। इकलौता बेटा भी नहीं आ पाया और न उसके आने की उम्मीद है। हालाँकि स्वाति और मंदिर के पुजारी जी ने सारे भारतीय रिवाज संपन्न किए। मुखर्जी साहब के लिए एक सामूहिक प्रार्थना भी रखी गयी। स्वाति अंदर आ गयी और काला गाउन पहन लिया और काले गोगल्स भी। मृणमयी ने उन्हें तनिक आश्चर्य से देखा पर स्वाति चुप रही, यह सोचकर कि मृणमयी को बाद में समझाएँगी। यह स्वाति की चिर-पुरातन इच्छा कि वे गाउन पहनेंगी, किस तरह और किन परिस्थितियों में पूरी हो रही थी! लिमोजीन में कोफिन रखी गयी। लोग ढेर सारे रीथ और फूल ले आए थे। स्वाति ने भी कारनेशंस मंगाए थे। आगे पीछे चार मर्सिडीज और बीच में लिमोजीन! 'आगे पचास लोग और पीछे करीब दो सौ लोग! वाह प्लैटिनम फ्युनरल पैकिज का कमाल है।' स्वाति ने ईर्ष्या से सोचा 'इसलिए अपने लिए प्लैटिनम फ्युनरल प्लान लिया था मुखर्जी साहब ने।'

तभी उसे लगा कि मानों ताबूत में लेटे मुखर्जी साहब उसे गाउन पहने देखकर चिढ़ रहे हैं। वरना अचानक स्वाति को ठेस क्यों लगती! पैर का अंगूठा गाउन में उलझ कर चोटिल हो गया था। गाउन का लेस पैर में फँस गया था और वह गिरते गिरते बचीं। क्रिमीटोरियम में सब कुछ पहले से ही व्यवस्थित था। फिर से अंतिम पिंडदान किया गया। स्टीव बहुत मन लगाकर सब कुछ कर रहा था। ताबूत को क्रिमिटोरियम के रोज गार्डेन में एक ऊँचे प्लैटफॉर्म पर रखा गया। कई लोग सीधे क्रिमीटोरियम ही पहुँचे थे, सफेद गुलाब और कारनेशंस के गुलदस्तों और रीथ के साथ। सबने श्रद्धांजलि दी। तब ताबूत को इलेक्ट्रिक ट्रे में शिफ्ट किया गया। फिर तुलसी दल, जलती हुई घी डुबायी हुई चंदन की लौ से स्टीव ने मुखाग्नि दी। उसने सफेद धोती पहन लिया था और सिर भी मुंडा लिया था। वैसे भी उसके सिर पर बाल नहीं थे सो उसे कोई खास फर्क नहीं पड़ता था। राम नाम सत्य है के नारे के साथ ट्रे बंद करके स्विच ऑन कर दिया गया। तीन घंटे तक बॉडी जलने का समय दिया गया। सब लोग गुलाबों के लॉन में आ गए। ये बंद गोभी जैसे गुलाब! क्रिमीटोरियम की हड्डियों की भस्म से ये और भी पुष्ट होकर चटक रंगों में खिलकर हवा में लहरा रहे थे। स्वाति मौन सिर झुकाए एक केनवास की कुर्सी पर बैठी थीं। मृणमयी उनके हाथ थामे खड़ी थीं।

स्वाति को याद आया कि एक बार मुखर्जी साहब ही बता रहे थे कि अब लोगों के पास पैसे नहीं और न ही सरकार के पास सस्ती जमीन जहां पर बॉडी को दफनाया जा सके। ब्रिटेन सरकार तो कई सिमेटरी को खोदकर वहाँ बिल्डिंग बनवा रही है। ऐसे में क्रिस्चियन भी इलेक्ट्रिक क्रिमीटोरियम में बॉडी जलाते हैं और राख को इसी प्रांगण में गढ़ा खोदकर दफनाते है और कोई फूल लगाते हैं। 'स्साले! बास्टर्ड! हिंदू रीति ही माने न आखिर! हिंदुत्व में ही संसार की मुक्ति है।' मुखर्जी साहब ने गालियाँ देकर उनके सिस्टम को कोसा था। उन्हें यह गुमान भी न होगा कि कभी वे भी इस सिस्टम का हिस्सा बन जाएँगे कौन जानता है कि आने वाले मौसम में चटक लाल गुलाब में मुखर्जी साहब की भस्म भी मिली हो! यह गाली उस इनकार की वजह से थी कि उन्होंने दूसरे प्रभावी राजनीतिक हिंदूओं के साथ मिलकर लकड़ी से बॉडी जलाने की शमशान की अनुमति माँगी थी जो यूके सरकार द्वारा नामंजूर कर दी गयी। सरकार ने यह तर्क दिया कि लकड़ी से मुर्दे जलाना न सिर्फ प्रदूषण फैलाता है बल्कि आज के जमाने में जब इलेक्ट्रिक क्रिमीटोरियम की सुविधा मौजूद है तो ऐसे में आदिम बन जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

स्वाति को याद आया कि एक बार मुखर्जी साहब ही बता रहे थे कि अब लोगों के पास पैसे नहीं और न ही सरकार के पास सस्ती जमीन जहां पर बॉडी को दफनाया जा सके। ब्रिटेन सरकार तो कई सिमेटरी को खोदकर वहाँ बिल्डिंग बनवा रही है। ऐसे में क्रिस्चियन भी इलेक्ट्रिक क्रिमीटोरियम में बॉडी जलाते हैं और राख को इसी प्रांगण में गढ़ा खोदकर दफनाते है और कोई फूल लगाते हैं। 'स्साले! बास्टर्ड! हिंदू रीति ही माने न आखिर! हिंदुत्व में ही संसार की मुक्ति है।' मुखर्जी साहब ने गालियाँ देकर उनके सिस्टम को कोसा था। उन्हें यह गुमान भी न होगा कि कभी वे भी इस सिस्टम का हिस्सा बन जाएँगे कौन जानता है कि आने वाले मौसम में चटक लाल गुलाब में मुखर्जी साहब की भस्म भी मिली हो! यह गाली उस इनकार की वजह से थी कि उन्होंने दूसरे प्रभावी राजनीतिक हिंदूओं के साथ मिलकर लकड़ी से बॉडी जलाने की शमशान की अनुमति माँगी थी जो यूके सरकार द्वारा नामंजूर कर दी गयी। सरकार ने यह तर्क दिया कि लकड़ी से मुर्दे जलाना न सिर्फ प्रदूषण फैलाता है बल्कि आज के जमाने में जब इलेक्ट्रिक क्रिमीटोरियम की

सुविधा मौजूद है तो ऐसे में आदिम बन जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

स्वाति कब तक यही सब सोचती रहतीं कि तभी स्टीव ने अनाउन्स करके सबको बड़े हॉल में चलने का आग्रह किया जहाँ जलपान की व्यवस्था थी। लोग धीरे धीरे हॉल की ओर खिसकने लगे। लोगों को जलपान परोसा किया गया। सैंडविच, कोक, चाय कॉफी और पाटी सफ्टा, जो मृणमयी बनाकर लायी थीं। लोग छोटे छोटे झुंड बनाकर खा रहे थे, हँस रहे थे, बतिया रहे थे। यह शोक सभा थी पर कदाचित ही किसी को शोक था। जलपान के बाद इष्ट मित्रों को शोक सभा में बोलना था। स्वाति सिर झुकाये बैठी थीं कि मृणमयी ने धीरे स्वाति को बाहों में घेर लिया। स्वाति ने अश्रुपूरित आँखों से उसे देखा और हिलक कर रो पड़ी। मुखर्जी साहब बहुत अच्छे इंसान थे। फ्युनरल सर्विस के शोकसभा में किसी ने भीड़ में कहा। पर स्वाति यह नहीं मानती। मुखर्जी साहब ने उस पर बहुत सी पाबंदियाँ लगायीं। उसे साड़ी पहनने को बाध्य किया। ब्रिटेन में जहाँ मौसम इतना ठंडा रहता है और स्वाति को बहुत ट्रैवल करना पड़ता था, मुखर्जी साहब ने उससे वचन लिया कि वह आजीवन साड़ी पहनेगी। स्वाति आज भी वह वचन निभा रही है।

मुखर्जी साहब न अच्छे थे और न बुरे, वे एक आम इंसान थे। आम लोगों की भाँति उनकी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ थी। पर भारत की तरह यहाँ भी लोग मरणोपरांत मृतक और उसके परिवार के प्रशंसा करने लगते हैं। मुखर्जी साहब का एकाध लम्बा प्रेम प्रसंग भी रहा। उन दिनो भी स्वाति बेहद अकेली, डिप्रेस्ड और परेशान रही। फ्रेंच महिला के बाद वह नृत्यांगना, प्रेमा! जिसने मुखर्जी साहब को मोह लिया था। मुखर्जी भी उसपर जान लुटाते थे। उसके लिए वीसा स्पॉन्सर करवाते, उसका शो करवाते। दस सालों तक गर्मियों के छह महीने वह एडिन्बर्ग और ग्लाज्गो में रहतीं। मुखर्जी लटपटाए रहते और प्रेमा स्वाति के छाती पर मूँग दलती रहती। स्वाति ज्यों बच्चों और अपने आपको किसी आखेटक से बचा रही हो। गौतम और रोमा को छाती से लगाकर पाला है स्वाति ने।

पर यूके में कोई किसी का दर्द नहीं बाँटता। सब अपने अपने नरक भोगने को अभिशप्त हैं। पहले भी स्वाति अकेली थी, अब और अधिक अकेली हो गयी है पर कुछ अर्थों में अपनी जिम्मदारियों से मुक्त भी। अब वह अपना जीवन जीएगी। रात को मृणमयी स्वाति के पास ही रुक गयी। गौतम का संक्षिप्त फोन आया। फोन पर स्वाति आहत और उदास थी। वह किसी काम में फँस गया और नहीं आ सका। वह आरोप लगा रहा था कि स्वाति ने इतनी जल्दी फ्युनरल क्यो रखा। 'क्यों रखा? तुमने कभी भी फ़ोन करके यह इच्छा जाहिर की कि तू आ सकेगा या तुम्हें सुविधा होगी अगर लेट फ्युनरल किया जाए तो? तेरा बाप कितनी आशा से तुम्हारे फोन का इंतज़ार करता था। वे होसपोईस में भी सिर्फ तुम्हें अंतिम बार देखना चाहते थे और तुमने एक बार भी फोन नहीं किया। लाख बुरा हो पर तुम्हारा बाप था वह आदमी! वे तो साल भर से बीमार थे पर तुम और रूमा, दोनो नहीं आए। अकेली मैं। न तो कोई सलाह देने वाला और न ही सहारा। मुझे जो अच्छा लगा किया।'

इतना बोलने के बाद स्वाति एकदम टूट गयी। फफककर रोने लगी। मृणमयी ने उसे नींद की गोलियाँ दीं और खुद भी एक खायी और दोनो सो गयीं। दूसरे दिन स्वाति ने निर्णय लिया कि वे अकेली रहेंगी। 'बेचारी मृणमयी! सचमुच चिंता करती हैं, मेरे चक्कर में दौड़ती रहती है। यही एक औरत है जो हमेशा मेरे साथ रही। दुःख में भी और सुख में भी।' उन्होंने दृढ़ता से मृणमयी को वापस उनके वृद्धाश्रम भेजा। दूसरी रात को दस बजे तक तो सब ठीक था पर उसके बाद स्वाति को डर लगने लगा। खाने के बाद उसने थोड़ी देर टीवी देखा पर यह अहसास बना रहा कि स्वाति अब नितांत अकेली हैं। रात गहराने के साथ साथ अवसाद और डर की कालिमा उनके मन मस्तिष्क पर गहराती जा रही है। बचपन में सुने गए भूत की कहानियाँ याद आ रही हैं।

माँ बताती थीं कि मृत्यु के बाद भी आत्मा तेरहवीं तक घर के आस पास मंडराती रहती है। तो क्या मुखर्जी साहब भी यहीं कहीं होंगे। स्वाति को ठंडे पसीने छूटने लगे। बाहर बर्फ गिर रही है। रात गहराती जा रही है। ठंड में यहाँ ऐसे ही बेहद डिप्रेशन हो जाता है और यह साल इतना दुःखद और थकान भरा गुजरा है स्वाति का। वह नंग-धड़ंग आदमी, जो गाँव के ट्रार्मर के नीचे खड़ा रहता था। स्वाति गहन डिप्रेशन में डूब उतरा रही है। उसकी आँखों के सामने कई दृश्य नाचते हैं, वह गर्भवती चुड़ैल जो पेड़ से छिपकर बच्चों को चुटकी-बूटकी मारकर उड़ा लेती थी। वह शिशु शमशान वाली डायन जो मृत बच्चों को कब्र से निकालकर काजल लगाकर जिलाती थी और रात भर नंगी नाचती थी! शमशान की वे लकड़ियाँ जो भक भूक जलते बुझते पिशाच बन जाते थे।

स्वाति के पैर में ठंडे पसीने आने लगे। किसी भावना के वशीभूत वे खिड़की के पास खड़ी हो गयीं और सामने ट्रान्स्फार्मर पर कोई खड़ा दिखा! 'माँ गो माँ!' एक तेज चीख मारकर स्वाति बेहोश हो गयीं। उनको जबरदस्त हार्ट अटैक हुआ था। दो दिन बाद स्टीव फाइनल पेमेंट के लिए फोन पर संपर्क न हो पाने की वजह से घर पहुँचा, तब स्वाति की बॉडी खिड़की के पास मिली। स्टीव ने गौतम को फोन करके बुलाया। गौतम और स्टीव ने मिलकर उनका अंतिम संस्कार किया। स्टीव ने स्वाति के फ्युनरल के लिए प्लैटिनम पैकेज अप्ग्रेड कर दिया था, बिना किसी अतिरिक्त पैसे के! स्वाति के प्रति यही उसकी सच्ची श्रद्धांजलि थी।

उप महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली

दुश्मनों से लड़ना सीखो

- मदन गोपाल शर्मा

सारे दुश्मन अपने अन्दर
इनसे तुम लड़ना सीखो।

अंगारे से सुलग रहे ये,
इनको तनिक बुझाना सीखो।

आसानी से नहीं निकलते,
खींच खींच कर लाना सीखो।

उछल कूद बँदर सी करते,
इनको खूब नचाना सीखो।

ये जमकर अड़ते भी रहते,
बाहर इन्हें भगाना सीखो।

प्रेम प्यार से नहीं मानते,
गुस्सा भी दिखलाना सीखो।

सद्विचार, दया और करुणा,
इनको अपनाना सीखो।

पक्का निश्चय काम करेगा,
इसके बल पर बढ़ना सीखो।

ज्ञानप्रकाश आलोकित करता
तम से जम कर लड़ना सीखो।

काम, क्रोध, मद, लोभ सभी को
वशीभूत तुम करना सीखो।

सावधान ये जम ना पाएं,
जड़ से इन्हें मिटाना सीखो।

सतत् प्रयास बहुत जरूरी
जब-तब इन्हें हिलाना सीखो।

योग-साधना, सदा करें हम

- डॉ. प्रशांत आचार्य

योग करें उस परम तत्त्व से,
चितिशक्ति बन, एक बनें हम।

यम-नियम से, जी लें जीवन
कदा न इनसे, दूर रहें हम।।१।।

सुंदरतम साधन तन को,
आसन से स्थिर, दृढ करें हम।

जीवन ऊर्जा, प्राणों पर निर्भर,
प्राणायाम सें इसे, पुष्ट करें हम ।।२।।

प्रयत्नपूर्वक चंचल इन्द्रियों को,
प्रत्याहार सें करें, अन्तर्मुख हम।

चित्तवृत्ति को दुर्बल करके,
अंतस्थ रिपु को, दूर करें हम।।३।।

अंतरंग में करें सूक्ष्म धारणा
योगमार्ग पर नित, बढ़े चलें हम ।

अभ्यास निरन्तर एकाग्र हो,
ध्यान अवस्था, भी पालें हम।।४।।

जीवन में आनंद अतुल हो
समाधि साधना, सदा हरे तम।

व्यष्टिसमष्टि पुष्ट हो जिससे
ऐसा ही नित, ध्यान करें हम।।५।।

महामुनि के अष्टांगयोग से
विवेक प्राप्ति कर, शुद्ध बनें हम।

पूर्ण समर्पण, परम गुरु को
पतंजलि को, नमन करें हम।।६।।

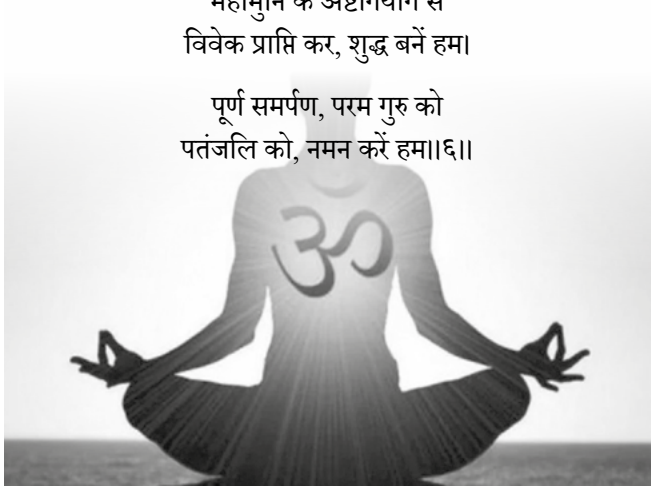

कविताओं में भारतीय संस्कृति

- डॉ. पवनपुत्र बादल

"छायावादी कवियों ने भी भारतीय संस्कृति के अनुरूप देश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। देश प्रेम की प्रवृत्ति दो रूपों में मिलती है - प्राचीन एवं नवीन। देश के अतीत के गौरव का ज्ञान तथा उसका स्मरण, स्तवन और वन्दन प्राचीन प्रवृत्ति के अन्तर्गत आता है और राजनीतिक आन्दोलनों का उल्लेख, क्रान्ति के स्वर आदि नवीन प्रवृत्ति के अन्तर्गत माने जाते हैं। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति में कहीं-कहीं विद्रोह के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। जैसे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की पंक्तियों में- "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये। एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।।"

भारतीय संस्कृति, वह संस्कृति है, जो वेदों, पुराणों से लेकर रामायण, महाभारत तक होती हुई, कल्हण के काव्य में, शंकर के मठ में, परशुराम के अस्त्र में, राम के शस्त्र में, कृष्ण की गीता में, सावित्री-सीता में, पद्मिनी की चिता में, अभिमन्यु के बलिदान में, प्रताप के स्वाभिमान में, शुक्राचार्य की रीति में, चाणक्य की नीति में, चैतन्य की चेतना में, तो मीरा की वेदना में पुष्पित, पल्लवित और सुरक्षित होती हुई निरन्तर प्रवाहमान रहती हुई गतिशील है। यह संस्कृति की मंदाकिनी काव्य रूपी जल को अंतस में समेटे भारतीय जनमानस को अवगाहन कराती हुई पावन बनाने में समर्थ है। तभी तो बंकिम चंद्र चटर्जी अपनी रचना में इस प्रकार इसका गुणगान करते हैं-

'सुजलाम्, सुफलाम्, मलयजशीतलाम्,
शस्यश्यामलाम् मातरम् वंदे मातरम्।

हमारे वेदों, पुराणों उपनिषदों ने भारतीय संस्कृति के सूत्र ही काव्य में पिरोये गये हैं। हम विश्व कल्याण की ही कामना करते हैं, यही हमारी संस्कृति की विशेषता है।

अयं निजः परोवेति, गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

एवं

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग भवेत्।

भारतीय संस्कृति में संतों की संगति, उनकी सेवा और उनका सत्कार करना पुण्य का कार्य माना गया है। इस सन्दर्भ में अनेक कवियों मे अपनी वाणी के द्वारा अपने उद्गारों को व्यक्त किया है। भक्ति काल के कवियों ने तो विशेष रूप से संतों की महिमा का गुणगान करते हुये उन्हें ईश्वर के समतुल्य माना है। भक्त कवि सूरदास जी का एक पद इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है

"जा दिन संत पाहुने आवत।
तीरथ कोटि सनान करे फल, जैसो दरसन पावत।
नयो नेह दिन-दिन प्रति उनके, चरण कमल चित लावत।
मन-बच-कर्म और नहिं जानत, सुमिरत औ' सुमिरावत।
मिथ्यावाद उपाधि रहित है, विमल-विमल जस गावत।
बन्धन कर्म कठिन जे पहले, सोरु काटि बहावत।
संगत रहै साधु की अनुदिन, भव दुःख दूर नसावत।
'सूरदास' संगति करि तिनकी, जे हरि सुरति करावत।।"

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' तो भारतीय संस्कृति का मानदण्ड है। इस ग्रन्थ के हर प्रसंग में भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। बच्चों को अपने माता-पिता और गुरु के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसके लिये केवल एक ही उदाहरण बहुत है-

'प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मात-पिता-गुरु नावहिं माथा।।' मानस में पिता-पुत्र, माता-पुत्र, भाई-भाई, गुरु शिष्य, पति-पत्नी और स्वामी-सेवक आदि के सम्बन्ध कैसे होने चाहिये, उनका आपस में व्यवहार कैसा हो, यह विस्तृत रूप से काव्यमयी भाषा में ही समझाया गया है।

इसी प्रकार कबीर, मीरा, रसखान, रहीम, रत्नाकर आदि ने भी अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति को पिरोकर समाज को दिशा देने का कार्य किया है।

महाप्राण निराला की लेखनी से निकली 'भारति जय विजय करे' मन में रोमांच पैदा करती है।

नोबेल पुरस्कार प्राप्त गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित राष्ट्र गान 'जन-गण-मन अधिनायक जय हो' को सुनने भर से ही भारतीय संस्कृति की एक झलक स्वतः ही आँखों के समक्ष आ जाती है। जब वे कहते हैं- "पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा, द्राविड़, उत्कल, वंग।' तो आसेतु

हिमालय भारत दर्शन स्वतः ही मनोमस्तिष्क पर स्पष्ट होने लगता है।

भारतीय संस्कृति अनादि काल से ही अहिंसा, सत्य, सद्कर्म और कर्म की महत्ता पर बल देती रही है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने काव्य में 'अहिंसा परमो धर्मः।' को केवल न्याय और शांति के समय का धर्म माना है, लेकिन जब अन्याय और अशान्ति का समय होता है, बलात् स्वत्वों का अपहरण किया जाता है, तब उस समय अहिंसा नहीं बल्कि शस्त्र उठाना ही परम है, ऐसा उनका मत है। दिनकर जी ने लिखा है-

'कौन केवल आत्म बल से जूझकर,
जीत सकता देश का संग्राम,
पाशविकता जब खड्ग लेती उठा,
आत्मबल का एक वश चलता नहीं।'

दिनकर जी ने इसी प्रकार शास्त्रों में वर्णित सूक्तियों 'सत्यं वद्, धर्मं चर, सत्यमेव जयते' आदि के आधार पर अपने काव्य ग्रन्थ 'रश्मिरथी' में सत्य की सार्थकता स्वीकार करते हुये इस प्रकार लिखा है-

जो सत्य जानकर भी सत्य न कहता है,
या किसी लोभ के विवश मूक रहता है,
उस कुटिल राजतन्त्री कार्य को धिक है,
यह मूक सत्यहंता कम नहीं बधिक है।'

कर्मवाद का भारतीय संस्कृति में अपना एक विशिष्ट महत्व है। गीता में भी कहा गया है -

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफल हेतुर्भूमाः ते संगोऽस्त्वकर्मणि।'

इसी आशय को ग्रहण करते हुये दिनकर जी ने भी लिखा कि क्रियाधर्म को छोड़कर मनुष्य कभी भी सुखी नहीं हो सकता-

'कर्मभूमि है निखिल महीतल,
जब तक नर की काया
जब तक है जीवन के अणु-अणु,
में कर्तव्य समाया।
क्रिया धर्म को छोड़ मनुज,
कैसे निज सुख पायेगा।
कर्म रहेगा साथ, भाग वह
जहाँ कहीं जायेगा।।'

दिनकर जी मे श्रम की महत्ता पर भी बल देते हुये अपने काव्य में दानवीर कर्ण द्वारा यह कहलवाया है-

'श्रम से नहीं विमुख होंगे, जो दुःख से नहीं डरेंगे।'
सुख के लिये पाप से जो नर संधि न कभी करेंगे।
कर्म धर्म होगा धरती पर, बलि से नहीं मुकरना।
जीना जिस अप्रतिम तेज से, उसी शान से मरना।।'

अन्य कवियों ने भी इसी प्रकार त्याग, तप, संयम, दान, गुरुभक्ति, मित्रता आदि गुणों पर अपनी लेखनी से काव्य की सर्जना की है और इनकी आवश्यकता पर बल दिया है।

छायावादी कवियों ने भी भारतीय संस्कृति के अनुरूप देश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। देश प्रेम की प्रवृत्ति दो रूपों में मिलती है - प्राचीन एवं नवीन। देश के अतीत के गौरव का ज्ञान तथा उसका स्मरण, स्तवन और वन्दन प्राचीन प्रवृत्ति के अन्तर्गत आता है और राजनीतिक आन्दोलनों का उल्लेख, क्रान्ति के स्वर आदि नवीन प्रवृत्ति के अन्तर्गत माने जाते हैं। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति में कहीं-कहीं विद्रोह के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। जैसे बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की पंक्तियों में- "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये। एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आये।।"

इसी प्रकार दिनकर जी की 'झन-झन, झन झन झन, झनन-झनन।' जैसी पंक्तियों में भी राष्ट्रीय भावनायें मुखरित होती हैं। प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पंत मानवता के पूर्ण विकास के लिये, विश्व प्रगति में रीति-नीति के जड़ बन्धन को स्वीकार नहीं करते। उनकी कामना इस प्रकार है-

'रूढ़ि नीतियाँ जहाँ न हो आधारित,
श्रेणि-वर्ग में, मानव नहीं विभाजित,

संस्कृति को परिभाषित करना और संस्कृति के विषय में कुछ कहना स्वयं में एक जटिल कार्य है और जब भारतीय संस्कृति के विषय की बात हो तो वह अपनी विषमताओं को समेटे हुये नि:सन्देह अद्भुत है। फिर भी भारत एक है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने इसे महान एवं विश्वगुरु इसीलिए घोषित किया था। पूर्व प्रधानमन्त्री स्व. श्री अटलबिहारी वाजपेयी भारत को मुक्ति मार्ग का अन्वेषक बताते हुए इसीलिए कह उठते हैं-

मैं अखिल विश्व का गुरु महान, देता विद्या का अमर दान।
मैंने सिखलाया मुक्ति मार्ग, मैंने सिखलाया ब्रह्म ज्ञान।।'

धन बल से हो जहाँ न जन-श्रम शोषण,
पूरित भव जीवन के, निखिल प्रयोजन,
जहाँ दैन्य जर्जर, अभाव ज्वर पीड़ित,
जीवनयापन हो न मनुज को गर्हित।'

पंत जी की कविताओं में भारतीय संस्कृति के अनुरूप आह्वान के स्वर सुनाई पड़ते हैं। शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् नव भारत में नई राष्ट्रीय चेतना का आगमन जब स्वतंत्रता दिवस के पुनीत पर्व पर होता है, इसके आगमन से भारत के साथ धरती का जीवन भी सभ्य हो जाता है और जग के जड़ बन्धन खुल जाते हैं। सांस्कृतिक चेतना का गायक कवि इस मंगल पर्व के अवसर पर सात्विक साज-सज्जाओं और उत्सव पूजन की विविध सामग्री के साथ 'जय स्वतन्त्र भारत' के उद्घोष और गान की प्रेरणा इस प्रकार करता है -

'आम्र बौर लाओ हे कदली स्तम्भ बनाओ,
पावन गंगाजल भर मंगल कलश सजाओ,
नव अशोक पल्लव के वंदनवार बँधाओ,
जय भारत गाओ स्वतन्त्र जय, जय भारत गाओ।'

प्रसिद्ध कवि जयशंकर प्रसाद जी जहाँ अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण चरित्रों को सामने लाते रहे, वहीं अपनी कविताओं के माध्यम से भी वे माँ भारती की स्वतन्त्रता हेतु ओजस्वी स्वरों में वीरों का आह्वान करते दिखाई पड़ते हैं-

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो,
असंख्य कीर्ति रश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाह सी,
सपूत मातृभूमि के, रुको न शूर साहसी,
अराति सैन्य सिंधु में, सुवाड्वाग्नि से जलो।
प्रवीर हो जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।'

इसी प्रकार नव जागरण का संदेश देते हुए प्रसाद जी नवप्रभात लाने का संदेश भी देते हैं-

अब जागो जीवन के प्रभात।
वसुधा पर ओस बने बिखरे,
हिमकण आँसू जो क्षोभ भरे,
ऊषा बटोरती अरुण गात।
अब जागो.....।।

तम नयनों की तारायें सब,
मुँद रही किरण दल में हैं अब,
चल रहा सुखद यह मलय बात।
अब जागो.....।।

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त जी का सम्पूर्ण वाङ्मय ही भारतीय संस्कृति पर आधारित है। गुप्त जी की सांस्कृतिक चेतना वैदिक अथवा आर्य मान्यताओं तक ही सीमित नहीं है, बल्कि वैदिक साहित्य के बाद विकसित स्मृतियों और पुराणों के विशाल साहित्य को भी, जिसमें रामायण और महाभारत भी सम्मिलित है, गुप्त जी ने अपने काव्य की विषय वस्तु बनाया है। गुप्त जी की चेतना को हम 'आर्य हिन्दू चेतना' कह सकते हैं। उनके कुछ विचार यहाँ दृष्टव्य हैं-

'विख्यात हिन्दू धर्म ही, सच्चा सनातन धर्म है।
वह धर्म ही धारण क्रिया का, नित्य करता कर्म है।'

गुप्त जी ने 'भारत-भारती' के माध्यम से धर्म के अलग- अलग मापदण्डों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। गुप्त जी धर्म के समर्थकों को चारों फलों की प्राप्ति का ज्ञान देते हुए कहते हैं-

'निजधर्म का पालन करो, चारों फलों की प्राप्ति हो।
दुख-दाह, आधि-व्याधि, सबकी एक साथ समाप्ति हो।

गुप्त जी ने समाज में व्याप्त अनेक आडम्बरों, स्वार्थपरायणता, रूढ़ियों, साधु-संतों की ढोंग आदि पर भी कड़ा कटाक्ष किया है। वे सभी का मार्गदर्शन करते हुए कहते हैं-

'ब्राह्मण बढ़ाये बोध को, क्षत्रिय बढ़ाये शक्ति को,
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को,
यो एक मन हेकर सभी, कर्तव्य के पालक बनें !
तो क्या न कीर्ति विमान चारों ओर भारत का तने।।'

व्यक्ति के संस्कार ही सामूहिक रूप से संस्कृति का निर्माण करते हैं। वही संस्कृति पुनः व्यक्ति में संस्कार भरती है। कभी-कभी अर्थ से अनर्थ की हो जाता है। गुप्त जी इस अर्थ के अनर्थ से व्याकुल होकर कह उठते हैं-

'सोचो हमारे अर्थ हैं, यह बात कैसे शोक की,

श्रीकृष्ण की हम आड़ लेकर, हानि करते लोक की,
भगवान को साक्षी बनाकर, यह अनंगोपासना,
है धन्य ऐसे कविवरों को, धन्य उनकी कामना।'

गुप्त जी के सन्दर्भ में यह समग्रतः कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतीय संस्कृति के आधारभूत जीवन मूल्यों, धर्म आधारित मान्यताओं तथा लोकमन में बसी जीवन पद्धति से भारतवासियों को पुनः परिचित कराने का प्रयास किया है।

आधुनिक काल के कवियों ने भारतीय संस्कृति को महत्व देते हुए अपनी काव्य रचनाओं में स्थान देकर नव जागरण का भी कार्य किया है। प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा यद्यपि वेदना की कवयित्री हैं, फिर भी उन्होंने भारतीय संस्कृति की रीढ़ नारियों की स्थिति एवं उनके जीवन की दुरूहताओं को अपने काव्य का आधार बनाकर समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। महादेवी जी भारतीय नारी को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नई रीतियों को चुनो क्योंकि यही वास्तविक जीवन है-

क्षितिज कारा तोड़कर अब, गा उठी उन्मत्त आँधी।
अब घटाओं में न रुकती, लास तन्मय तड़ित बाँधी।'

गुरु की महत्ता भारतीय संस्कृति का व्यापक आधार है। वीर रस के प्रसिद्ध कवि श्यामनारायण पाण्डेय जी की लेखनी अपने गुरु की अंतिम विदाई करते हुए थरथरा उठती है और वे गुरु को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए इस प्रकार कह उठते हैं -

सिर पर त्रिपुण्ड अंकित है, रांगाजल से तन धोये।
रुद्राक्ष गले में पहने, क्यों मौन साधकर सोये।
'चंदन चर्चित यह अर्थी, घर से बाहर निकली क्यों ?
धीरे-धीरे गलियों से, गंगा की ओर चली क्यों ?
नभ से फूलों की वर्षा, क्यों सुर जमात है आई,
इस माया की दुनिया से, गुरु की है आज विदाई,
किसको गोदी में लेकर, यह चिता अलग जलती है,
मत पूछो विधवा उर की, यह आशा ही बलती है;
कहता है कौन नहीं हैं, मेरे गुरु जीवित जग में,
आँखों के परदे फेंको, देखो मेरी रंग-रंग में,
मेरी वाणी में देखो, है ताक रही गुरु माया।
मेरे शब्दों में देखो, है आँक रही गुरु छाया।'

कहने को तो यह अंतिम विदाई की भावांजलि है किन्तु इस कविता में भारतीय संस्कृति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है। कविश्रेष्ठ श्याम नारायण पाण्डेय जी ने अपने सभी महाकाव्यों, खण्डकाव्यों में भारतीय संस्कृति के पोषक उदात्त चरित्रों को ही अपना नायक बनाया है। जौहर में रानी पद्मिनी, हल्दी घाटी में महाराणा प्रताप, जय में अंजनीतनय राम भक्त हनुमान और तुमुल में लक्ष्मण, मेघनाथ के चरित्रों का वर्णन है।

भारतीय संस्कृति में कुछ रूढ़ियाँ एवं आडम्बर भी समाहित हो गये थे जैसे देवदासी प्रथा और विधवा होने पर कठोर नियम आदि। देवदासी प्रथा को तो अब प्रतिबन्धित किया जा चुका है और यह सुखद है कि विधवाओं के जीवन में भी काफी सुधार हो रहा है। इस हेतु समाज अब विधवा विवाह को भी स्वीकार करने लगा है। प्रसिद्ध कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने अन्याय और अत्याचार सहती, पराधीनता की जंजीरों में जकड़ी, भारत में विधवा स्त्री की दयनीय स्थिति का वर्णन इस प्रकार अत्यन्त मार्मिक शब्दों में किया है-

वह इस्टदेव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीपशिखा सी शान्त भाव में लीन,
वह क्रूर काल गण्डव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की, छूटी लता सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।'

यह कविता सन् 1923 में लिखी गयी थी। तब भारत में विधवाओं की स्थिति अत्यन्त सोचनीय थी। विधवा होना अभिशाप माना जाता था। लेकिन अब समय बदला है, समाज बदला है और इस स्थिति में सुधार हो गया है।

संस्कृति को परिभाषित करना और संस्कृति के विषय में कुछ कहना स्वयं में एक जटिल कार्य है और जब भारतीय संस्कृति के विषय की बात हो तो वह अपनी विषमताओं को समेटे हुये निःसन्देह अद्भुत है। फिर भी भारत एक है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने इसे महान एवं विश्वगुरु इसीलिए घोषित किया था। पूर्व प्रधानमन्त्री स्व. श्री अटलबिहारी वाजपेयी भारत को मुक्ति मार्ग का अन्वेषक बताते हुए इसीलिए कह उठते हैं-

मैं अखिल विश्व का गुरु महान, देता विद्या का अमर दान।
मैंने सिखलाया मुक्ति मार्ग, मैंने सिखलाया ब्रह्म ज्ञान।।'

इसका और सशक्त प्रमाण अटल जी की यह प्रसिद्ध कविता हिन्दू तन मन, हिन्दू जीवन, रग-रग हिन्दू मेरा परिचय। भारतीय मूल्यों को

आधुनिक काल के कवियों ने भारतीय संस्कृति को महत्व देते हुए अपनी काव्य रचनाओं में स्थान देकर नव जागरण का भी कार्य किया है। प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा यद्यपि वेदना की कवयित्री हैं, फिर भी उन्होंने भारतीय संस्कृति की रीढ़ नारियों की स्थिति एवं उनके जीवन की दुरूहताओं को अपने काव्य का आधार बनाकर समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। महादेवी जी भारतीय नारी को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नई रीतियों को चुनो क्योंकि यही वास्तविक जीवन है।

पंत जी की कविताओं में भारतीय संस्कृति के अनुरूप आह्वान के स्वर सुनाई पड़ते हैं। शताब्दियों की पराधीनता के पश्चात् नव भारत में नई राष्ट्रीय चेतना का आगमन जब स्वतंत्रता दिवस के पुनीत पर्व पर होता है, इसके आगमन से भारत के साथ धरती का जीवन भी सभ्य हो जाता है और जग के जड़ बन्धन खुल जाते हैं। सांस्कृतिक चेतना का गायक कवि इस मंगल पर्व के अवसर पर सात्विक साज-सज्जाओं और उत्सव पूजन की विविध सामग्री के साथ 'जय स्वतन्त्र भारत' के उद्घोष और गान की प्रेरणा इस प्रकार करता है।

परिभाषित करती यह कविता अद्भुत है। साथ ही सनातन परम्परा का जयघोष भी है।

वास्तव में देखा जाये तो कविताओं एवं गीतों में ही भारतीय संस्कृति का दर्शन समाहित है। कवितायें जिस प्रकार से संस्कृति की संवाहक खेती है, वैसा अन्य माध्यम करने में सक्षम नहीं है। हम भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत अपने देश के गीत को आज भी सुनकर भाव विभोर हो उठते हैं। एक गीत इस प्रकार है-

जहाँ डाल-डाल पर सोने की चिड़ियाँ करती है बसेरा।
वह भारत देश है मेरा, वह भारत देश है मेरा।।

जब हम वर्तमान कवियों की कविताओं पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि अभी भी ऐसे बहुत से कवि हैं जो भारतीय संस्कृति से सम्पृक्त भावों को अपनी सृजनशक्ति में उपयोग करते है। लखनऊ के डॉ. शिव मंगल सिंह मंगल ने वर्तमान पीढ़ी द्वारा 1 जनवरी को मनाये जाने वाले नववर्ष को स्वीकार न करते हुए दिनकर जी की तरह ही चैत्र प्रतिपदा के दिवस पर नव वर्षागमन माना है। आपकी इस सन्दर्भ में एक कविता अवश्य ही पठनीय है-

'बौर लदी अमराई में जब, कोयल कुहु-कुहु गायेगी।
नये वर्ष की भोर सुनहरी, तब धरती पर आयेगी।।

हौले-हौले प्रखर रूप धर, सूर्य किरण भू पर आये,
नीलाम्बर आँचल में हिमकर धवल चाँदनी बिखराये,
ठिठुरन बाली शीत न होगी, धूप गुनगुनी छायेगी।
नये वर्ष की.....।।

भारतीय संस्कृति में नारियों को पूज्य माना गया है। हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।' इसी भाव को लेकर कविवर श्री शिव मंगल सिंह 'मंगल' जी ने बेटी के सन्दर्भ में एक गीतिका में अपने भाव कुछ इस प्रकार प्रकट किये हैं-

जीवन का आधार, हमारी ये बेटी।
नेह भरा संसार, हमारी ये बेटी।।

है आदर के योग्य बहन, पत्नी, माता,
रखे सुखी परिवार, हमारी ये बेटी।

दो-दो कुल की रीत, निभाये मरते दम,
कर दुख, सुख स्वीकार, हमारी ये बेटी।

अपनी संस्कृति संयुक्त परिवार की संस्कृति रही है, जहाँ बाबा, दादी, ताऊ, ताई, चाचा-चाची, बुआ-फूफा, मामा-मामी, काका-काकी, भाई बहन आदि सभी साथ रहते थे, एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटते थे। सम्बन्धों का प्रेम अटूट हुआ करता था। लेकिन अब संयुक्त परिवार टूट रहे हैं; सम्बन्धों का बिखराव हो रहा है। अतः कवि भी चिन्तित होकर इस विषय पर अपनी लेखनी को चलाने से रोक नही पाते हैं। कवि अरविन्द रस्तोगी बीते दिनों की स्मृति में इस प्रकार की सर्जना करते हैं-

जीवन में क्या आ पायेंगे, बीते गुजरे पल।
सोन चिरैया फिर गायेगी, कहना यह मुश्किल !!
आँगन बीच नहीं होती थी, कोई भी दीवार।
अम्मा-बाबू, ताई-ताऊ, सबका मिला दुलार।
पिंजरे का सुग्गा भी सबके, संग मिल कहता राम।
बहन भ्रात की हँसी ठिठोली, गुंजित था यह धाम।
मन कहता फिर से आ जाये, बीत गया जो कल।
सोन चिरैया.....।।

1968 के राष्ट्रधर्म में प्रकाशित आनन्द मिश्र 'अभय' जी की कविता बलिदानी किसी होतात्मय की बात करती है। वे लिखते हैं, जिसमें चन्द्रगुप्त, चाणक्य और शंकराचार्य की मेधा एक साथ समाहित हो गयी हो, सम्भवतः वो संकेत कर रहे हैं श्रद्धेय पं. दीनदयाल उपाध्याय की ओर-

है चन्द्रगुप्त-चाणक्य-शंकराचार्य यहाँ
युग-युग में केवल एक बार होते आये,
पर तुम समान तीनों का पुंजीभूत रूप
मिल पायेगा, हा ! फिर से कोई बतलाये ?

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के मूल्यों, प्रथाओं एवं मानकों को जिस कविता में समाहित किया है वह कविता संदेशपरक स्वतः ही हो जाती है। काव्य का उद्देश्य भी समाज को सद्संदेश देकर उसका मार्ग प्रशस्त करना है और यह कार्य भारतीय मनीषियों ने जिम्मेदारी से किया है।

प्रबन्धक, राष्ट्रधर्म
संयुक्त महामंत्री, साहित्य परिषद

मातृभाषा में शिक्षा: विविध आयाम

- डॉ. गौरव रंजन

> संज्ञानात्मक एवम बौद्धिक विकास के लिए पहला स्तंभ मातृभाषा होती है। मातृभाषा शिक्षा के क्षेत्र में बौद्धिक क्षमता के विकास का प्रमुख अवयव है। चाहे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हों या गुरुदेव के नाम से विख्यात रवींद्रनाथ ठाकुर, सबने अपने लेखों के माध्यम से भी मातृभाषा में शिक्षा की वकालत की है। इनकी दृष्टि में शिक्षा का अर्थ केवल किताबी ज्ञान और शिक्षा का केंद्र केवल स्कूल ही नहीं होता हैं बल्कि बच्चे की शिक्षा उसकी परवरिश, घर, परिवार तथा समाज पर भी निर्भर करती है। चूंकि इन सभी स्थानों पर मातृभाषा का ही अधिक प्रयोग होता हैं इसलिएअगर मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बना दिया जाए तो यह प्रक्रिया और सहज तथा आनंददायी हो जाएगी।

मातृभाषा अभिव्यक्ति का सबसे सहज माध्यम है। यह संचार का सबसे सहज तरीका है और इसे सीखने के लिए किसी व्याकरण की आवश्यकता नहीं होती हैं। जब हम माँ के गर्भ में रहते हैं शायद तभी से हमें इसकी जानकारी होना शुरू हो जाती हैं। शाब्दिक अर्थ के रूप में देखें तो मातृभाषा का आशय उस भाषा से है जिससे हम अपनी मां से संवाद करते हैं। जिस भाषा में मां हमें बोलना सिखाती है। यह भी कह सकते हैं कि जो भाषा मां की होती है वह हमारी मातृभाषा होती हैं। मातृभाषा में संवाद के लिए बच्चे को अलग से किसी विशेष ध्यान की जरूरत नहीं पड़ती. बच्चे अपने मातृभाषा के जरिये ही अपनी संस्कृति, समाज, परिवार के अधिक नजदीक महसूस करते हैं. मातृभाषा के प्रभाव से शिक्षा पर भी असर होता है क्योंकि बच्चे मातृभाषा में विषयों या अवधारणाओं को जल्दी समझते हैं। इसलिए मातृभाषा में शिक्षा देने से बच्चों के या विद्यार्थियो के सर्वांगिक विकास पर सकारात्मक असर देखने को मिलता है।

सांस्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक उन्नति में मातृभाषा की महत्ता पर लगातार कहा जाता रहा है। खड़ी बोली हिंदी के उन्नायक भारतेंदु हरिश्चन्द्र के शब्दों में,

" निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।"

अर्थात् मातृभाषा की उन्नति ही अन्य विधाओं में उन्नति का कारण है।

संस्कृत में एक श्लोक है - " मातृभाषां परित्यज्य येऽन्यभाषामुपासते। तत्र यान्ति हि ते यत्र सूर्यो न भासते. "

अर्थात्, मातृभाषा को त्याग कर दूसरे भाषा को अपनाने वाले अंधकार के गर्त में पहुँच जाते हैं। वे वहां पहुँच जाते हैं जहाँ सूर्य का प्रकाश भी नहीं पहुँच सकता।

भारत एक विस्तृत भूगोल वाला देश है जहां विविधता ही पहचान है। और विशेषकर हमारीभाषाएं तो विविधता का आईना भी हैं। भाषा के आधार पर राज्यों का गठन और पुनर्गठन यहां स्वतंत्रता के पश्चात की वह वास्तविकता है जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार देखें तो भाषाएं राष्ट्रीयता और वैचारिक एकता का मूलाधार भी सिद्ध होती हैं। यद्यपि भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने बड़े बड़े राज्यों की सीमाओं का निर्धारण किया लेकिन भाषाओं की बृहत्तर परिधि में अनेकानेक बोलियां और भाषाओं के विविध रूप-स्वरूप भी सहज दिख जाते हैं। स्थानीयता से प्रभावित होने की योग्यता भाषा की मूल प्रकृति है और इसे इस कहावत से अच्छी तरह समझ सकते हैं जिसमें कहा गया है-

"कोस कोस पर पानी बदले, चार कोस पर बानी"

अर्थात् यहां भूगर्म में अवस्थित पानी की गुणवत्ता कोस-कोस भर पर बदल जाती है और इसी तरह हर चार कोस पर बोली और भाषाओं में अंतर आ जाता है। यह स्वयंसिद्ध तथ्य है कि मात्र थोड़े दूर पर ही भाषा और बोली में अंतर आ जाता है। वाचिक और मौखिक स्वरूप का यह बदलाव आम तौर पर किसी की पहचान से भी जुड़ जाता है और भाषा बोली के विशेषज्ञ बातचीत के आधार पर ही यह बता देते हैं कि अमुक व्यक्ति किस क्षेत्र का निवासी है...।

भारत में हजारों भाषाएं हैं और हर राज्य को यह अधिकार है कि वह अपनी भाषा और बोली को संरक्षित करे। हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को संरक्षण दिया गया है ताकि मातृभाषाओं को अहमियत मिले। प्रसंगवश, भारतीय संविधान के भाग 17 के अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा को लेकर प्रावधान हैं। मातृभाषा की महत्ता अब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी स्वीकार की गई

मातृभाषा में शिक्षा देने के कई लाभ हो सकते हैं। इसमें सबसे प्रमुख है छात्रों का सर्वांगीण विकास, क्योंकि मातृभाषा में सीखने की प्रक्रिया सबसे सहज और तीव्र होते है। सर्वांगीण विकास में लाभ के साथ यह छात्रों के सामाजिक एवम सांस्कृतिक विकास में उन्नति का कारक हो सकता है, नैतिक विकास में सहायक हैं। दुनिया के तमाम राष्ट्र शिक्षा के माध्यम में मातृभाषा को प्राथमिकता देते हैं, जहाँ यह संभव नहीं है वहाँ भी प्राथमिक शिक्षा तो मातृभाषा में ही दी जाती है। बच्चों के जीवन में इसका असर तर्क, वाद- विवाद, अवधारणाओं की समझ एवम विकास में भी सहायक हैं. जहाँ मातृभाषा की उपयुक्त भूमिका है वहीं बच्चों के मानसिक विकास में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। मातृभाषा में शिक्षा देने से यह भी फ़ायदा हो सकता हैं कि बच्चे को रटंत विद्या से मुक्ति मिलेगी।

है और यूनेस्कोद्वारा प्रत्येक वर्ष 21फरवरी को अन्तर्राष्ट्रीय मातृभाषा दिवस मनाया जाता है ताकि लोगों में मातृभाषा के प्रति अनुराग बढ़े।

2011 की भाषा जनगणना के अनुसार भारत में मातृभाषा के रूप में 19569 भाषाओं या बोलियों का उल्लेख मिलता है जबकि मातृभाषा सर्वेक्षण के अनुसार भारत में कम से कम 576 भाषाएं बोली जाती हैं। 2011 की ही जनगणना के अनुसार, 44% भारतीयों की मातृभाषा हिंदी थी और शेष 56% लोग 120 दूसरी भाषाओं का इस्तमाल करते हैं।

चूंकि मातृभाषा में अवधारणाओं की बेहतर समझ होती हैं इसलिए भारत सरकार भी चाहती हैं कि मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाए और इसी की झलक हमें "राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020" में देखने को मिलती है। इसमें प्राथमिक स्तर पर छात्रों को मातृभाषा में ही शिक्षा देने की बात कही गई है। यद्यपि प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा को कई राज्यों में नीतिगत रूप से महत्व दिया गया है लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में मातृभाषा को शामिल करना इस बात का साक्षी है कि मातृभाषा का शिक्षा में अहम योगदान होगा। नई शिक्षा नीति में जोर देकर कहा गया है कि मातृभाषा का उपयोग करना भाषा को, और अपनी संस्कृति को, सम्मान देने जैसा है। इस नीति के तहत पांचवी कक्षा तक मातृभाषा में शिक्षा की बात की गई हैं किंतु यह भी कहा गया है कि यदि संभव हो तो आठवीं और उससे आगे भी घर की भाषा या मातृभाषा या स्थानीय भाषा ही शिक्षा का माध्यम बने। इसके सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए विज्ञान सहित अन्य विषयों के गुणवत्तापूर्ण पाठ्य पुस्तकों की उपलब्धता मातृभाषा में कराने की बात कही गई है। मातृभाषा के साथ संपर्क भाषा के रूप में त्रि-भाषा सूत्र की भी बात है जिसके तहत छात्रों को हिंदी, अंग्रेज़ी और संबंधित राज्य के क्षेत्रिय भाषा को सीखने पर बल दिया गया है। इससे छात्र अपनी मातृभाषा तक सीमित नहीं रहेगा और उसके विकास के पूर्ण अवसर उपलब्ध रहेंगे।

मातृभाषा में शिक्षा देने के कई लाभ हो सकते हैं। इसमें सबसे प्रमुख है छात्रों का सर्वांगीण विकास, क्योंकि मातृभाषा में सीखने की प्रक्रिया सबसे सहज और तीव्र होते है। सर्वांगीण विकास में लाभ के साथ यह छात्रों के सामाजिक एवम सांस्कृतिक विकास में उन्नति का कारक हो सकता है, नैतिक विकास में सहायक हैं। दुनिया के तमाम राष्ट्र शिक्षा के माध्यम में मातृभाषा को प्राथमिकता देते हैं, जहाँ यह संभव नहीं है वहाँ भी प्राथमिक शिक्षा तो मातृभाषा में ही दी जाती है। बच्चों के जीवन में इसका असर तर्क, वाद- विवाद, अवधारणाओं की समझ एवम विकास में भी सहायक हैं. जहाँ मातृभाषा की उपयुक्त भूमिका है वहीं बच्चों के मानसिक विकास में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका से इन्कार नहीं किया जा सकता। मातृभाषा में शिक्षा देने से यह भी फ़ायदा हो सकता हैं कि बच्चे को रटंत विद्या से मुक्ति मिलेगी, क्योंकि मातृभाषा में हमारा दिमाग विषयों को जल्दी समझ सकता है। अतः बच्चों के अंदर क्रिटिकल थिंकिंग विकसित होगी जो नई खोज, नए विचारों को आत्मसात करने के लिए बहुत जरूरी होता है।

यदि हम कहें कि किसी भी सभ्यता या संस्कृति के विकास के अनेक कारणों में से एक वहाँ की मातृभाषा है तो यह गलत नहीं होगा। पश्चिमी दुनिया के अधिकतर देश इस नीति का अनुसरण करते हैं। फ्रांस, जापान, इटली, जर्मनी, रूस, चीन, ब्रिटेन जैसे देशों की शैक्षिक और अन्य मानकों पर उन्नति मातृभाषा पर बल देने से ही संभव हुई है। यह हमारी उन्नति एवम समृद्धि की आधारशिला होती है। लोकचेतना का विकास मातृभाषा में स्वाभाविक होता है। यह बच्चों के मानसिक विकास, चेतना के विकास में भी भूमिका निभाती है। मातृभाषा छात्रों के अभिव्यक्ति के विकास में बेहद अहम भूमिका निभाता है। अमूमन छात्र या किसी भी उम्र के लोग किसी और भाषा में खुद को अभिव्यक्त

करने में संकुचित और असहज महसूस करते हैं किन्तु मातृभाषा में यह शिकायत कम हो जाती है। मातृभाषा हमारे सोचने की भाषा है जहाँ हमें कोई अलग से कोशिश नहीं करनी पड़ती। इसलिए भी सरकार कभी कभी अपने कार्यक्रमों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए स्थानीय भाषा में छपे पोस्टर या लोक नृत्य या नुक्कड़ नाटक का सहारा लेती है क्योंकि अपनी भाषा में लोग बात को जल्द समझते हैं और संप्रेषण तेजी से होता हैं.

मातृभाषा में शिक्षा के कारण सृजनात्मक गतिविधियाँ होंगी जो समाज को गति प्रदान करेंगी। इन गतिविधियों में नाटक, लोक कथाएँ, कहानियाँ, लेखन, समूह चर्चाएं शामिल की जा सकती हैं. इनसे जहाँ वर्तमान पीढी को अपनी जड़ों को मजबूत करने का मौका मिलेगा वहीं भविष्य के पीढ़ी के लिए एक नई आधार तैयार होगी।

विशेषज्ञों की माने तो वे छात्र जिन्हें अपनी मातृभाषा में शिक्षा मिलती है वे अपने विद्यार्थी जीवन को अच्छे ढंग से बिना किसी दवाब के बिताते हैं क्योंकि उनके लिए स्कूली वातावरण में खुद को समायोजित करना अधिक सहज होता है या यह कहें कि कठिन नहीं होता। फलतः ऐसे बच्चों में आत्मविश्वास की कमी नहीं होती हैं। न केवल बच्चे बल्कि उनके माता पिता कोभी विषय वस्तु समझने में दिक्कत नहीं होती हैं जिसके कारण वे बच्चों की पढाई में मदद कर सकते है। यह बड़ा सकारात्मक पहलू है। अभी अंग्रेजी माध्यम में पढ़ाने वाले बच्चों के अभिभावकों की मूल समस्या यह भी है कि उन्हें स्वयं पता नहीं है कि उनका बच्चा क्या पढ़ रहा है, कैसे पढ़ रहा है और उसकी प्रगति कैसी है? वे बच्चे की प्रगति का आकलन परीक्षा में आए उसके अंकों से करते हैं। अंकों का यह दबाव बच्चे के सर्वांगीण विकास में सबसे बड़ी बाधा बनकर उभर रहा है जो उसे अन्य सामाजिक गतिविधियों से दूर कर देता है। न केवल अभिभावक बल्कि शिक्षक भी विषय वस्तु को समझने या समझाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। अगर यह पढ़ाई मातृभाषा में हो तो शिक्षक को भी आसानी हो जाएगी। इससे पढ़ना एक बोझ न रहकर आनंद में परिवर्तित हो जाएगा। इससे स्कूल ड्रॉप आउट की संख्या पर भी सकारात्मक असर होगा, स्कूल ड्रॉप आउट की समस्या कम होगी जिससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए एक नई राह खुलेगी।

ड्रॉप आउट की समस्या कम होने का सीधा असर साक्षरता दर पर पड़ेगा जिससे एक शिक्षित समाज का निर्माण होगा। चूंकि प्राथमिक स्तर पर नियमित स्कूल जाने की आदत लगानाभी उद्देश्य होता है इसलिए यह काम भी मातृभाषा के जरिए रोचक शिक्षण से किया जा सकता है ताकि भविष्य में वे पढाई में रुचि लें और यह तभी संभव हैं जब स्कूल का माहौल शांत एवम अनुकूल हो। इस स्थिति में किसी दूसरी भाषा का प्रभावी होना बच्चों की अधिगम प्रक्रिया में विघ्न डाल सकता हैं किन्तु मातृभाषा का प्रयोग आनंददायी शिक्षा का माध्यम बन सकता है।

संभवतः इसी कारण राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का मातृभाषा के प्रति बड़ा आग्रह रहा है। वे बच्चों की शिक्षा मातृभाषा में देने के हिमायती थे और इस संदर्भ में उन्होंने बार-बार लिखा है।

न केवल राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, बल्कि निपुण (NIPUN) भारत मिशन, विद्या प्रवेश, निष्ठा फिन (Nishtha FIN) के तहत भी मातृभाषा में शिक्षा की बात जोर देकर की गई है।

संज्ञानात्मक एवम बौद्धिक विकास के लिए पहला स्तंभ मातृभाषा होती है। मातृभाषा शिक्षा के क्षेत्र में बौद्धिक क्षमता के विकास का प्रमुख अवयव है। चाहे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हों या गुरुदेव के नाम से विख्यात रवींद्रनाथ ठाकुर, सबने अपने लेखों के माध्यम से भी मातृभाषा में शिक्षा की वकालत की है। इनकी दृष्टि में शिक्षा का अर्थ केवल किताबी ज्ञान और शिक्षा का केंद्र केवल स्कूल ही नहीं होता हैं बल्कि बच्चे की शिक्षा उसकी परवरिश, घर, परिवार तथा समाज पर भी निर्भर करती है। चूंकि इन सभी स्थानों पर मातृभाषा का ही अधिक प्रयोग होता हैं इसलिएअगर मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम बना दिया जाए तो यह प्रक्रिया और सहज तथा आनंददायी हो जाएगी। मातृभाषा इसलिए भी जरूरी है क्योंकि यह इंसान के सोचने की, उसकी सहज अभिव्यक्ति की, सुख की-दुख की, प्रार्थना की, हर्ष-विषाद की, हंसने-रोने की तथा सपने देखने की भाषा है।

रिसर्च एसोसिएट, मीडिया एवं जनसंचार विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया

भारत की राजभाषा में लिपि विमर्श

- यतीन्द्र नाथ चतुर्वेदी

> विश्व की प्राचीनतम ज्ञात लिपि 'सिंधु लिपि' है। इसे 'सिंधु- सरस्वती लिपि' और 'हड़प्पा लिपि' भी कहते हैं। भारत में लिपि की उत्पत्ति हड़प्पा सभ्यता से अनुमानित की जाती है, परन्तु वह लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है अब तक अद्यतन। सिंधु घाटी की सभ्यता से संबंधित छोटे-छोटे संकेतों के समूह को 'सिंधु लिपि' कहा गया। कुछ इतिहासकारों का कहना है की यह लिपि ब्राह्मी लिपि का पूर्ववर्ती है। यह लिपि बौस्ट्रोपफेडन शैली का एक उदाहरण है क्योंकि यह लिपि दायें से बायें ओर और बाएं से दाएं की ओर लिखी जाती थी।

भाषा हमारे विचारों को अभिव्यक्त करने का मौखिक माध्यम है। भाषा की ध्वनियों को लिखने के लिए हम जिन चिह्नों का इस्तेमाल करते हैं, वही अभिव्यक्ति का लिखित स्वरूप उस भाषा की लिपि कहलाती है। लिपि का शाब्दिक अर्थ होता है - लिखित या चित्रित करना। मानव की बौद्धिक कृति लिपि मानव के प्रमुख आविष्कारों में से एक है। मानव-सभ्यता के विकास में, वाणी के बाद लेखन का ही सबसे अधिक महत्व है। मानव के बोलने की शैली, एक दूसरे को समझने की समझ तथा लिखने की कला ही मानवों को पशुओं से श्रेष्ठ बना देती है। कोई भी लिपि अधिकार (शासन-सत्ता) से नहीं पनपी अद्यतन। दुनिया के सभी वांग्मय की समस्त लिपियां आम नागरिकों द्वारा रोपी गई हैं, जिसकी फसलें उस भाषा का कल्पवृक्ष हैं आज भी।

हम नाद, माहेश्वर सूत्र की परम्परा के वंशज हैं। भारत का इतिहास कहीं से भी कुरेद कर देखा जाय तो इतिहास अपने रसातल तक यही बार बार कहेगा कि लाखों वर्षों में हजारों भाषाएं और सैकड़ों लिपियाँ बसी-उजड़ी पर किसी भी समुदाय की संपत्ति कोई भी भाषा नहीं रही कभी। कई भाषाओं की लिपि एक जैसी ही रही है पर परस्पर किसी एक भाषा ने किसी दूसरी भाषा को अस्तित्वहीन नहीं किया कभी।यूनेस्को के एक शोध के अनुसार 'जब एक लिपि विलुप्त होती है, तो उसके साथ-साथ एक पूरी संस्कृति विलुप्त हो जाती है, एक पूरा इतिहास विलुप्त हो जाता है।'

भारत का पुरालेखीय इतिहास कहता है कि सभी भारतीय लिपि ब्राह्मी लिपि से विकसित हुई है। लिपि के तीन मुख्य परिवार हैं- 'देवनागरी लिपि' उत्तरी और पश्चिमी भारत जैसे हिंदी, गुजराती, बंगाली, मराठी, डोंगरी, पंजाबी आदि भाषाओं का आधार है। 'द्रविड़ लिपि' तेलुगु और कन्नड़ का आधार है। 'ग्रंथ लिपि' तमिल और मलयालम जैसे द्रविड़ भाषाओं का उपखंड है। लिपि का इतिहास क्रम क्रमशः ब्राह्मी लिपि, सैंधव लिपि, वैदिक संस्कृत, संस्कृत, ब्राह्मी, प्राकृत, पाली, खरोष्ठी, कुटीलाक्षय और फिर कैथी आदि लिपि आती है।

भारत की लिपि

विश्व की प्राचीनतम ज्ञात लिपि 'सिंधु लिपि' है। इसे 'सिंधु-सरस्वती लिपि' और 'हड़प्पा लिपि' भी कहते हैं। भारत में लिपि की उत्पत्ति हड़प्पा सभ्यता से अनुमानित की जाती है, परन्तु वह लिपि पढ़ी नहीं जा सकी है अब तक अद्यतन। सिंधु घाटी की सभ्यता से संबंधित छोटे-छोटे संकेतों के समूह को 'सिंधु लिपि' कहा गया। कुछ इतिहासकारों का कहना है की यह लिपि ब्राह्मी लिपि का पूर्ववर्ती है। यह लिपि बौस्ट्रोपफेडन शैली का एक उदाहरण है क्योंकि यह लिपि दायें से बायें ओर और बाएं से दाएं की ओर लिखी जाती थी।

'ब्राह्मी लिपि' एक प्राचीन लिपि है। भारत की समस्त वर्तमान लिपियां (अरबी-फारसी लिपि को छोड़कर) ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं। इस प्रकार भारतवंशी अधिकतर लिपियों की जननी ब्राह्मी लिपि है। तिब्बती, सिंहली, कोरियाई तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की बहुत-सी लिपियाँ ब्राह्मी से ही जन्मी हैं। धर्म की तरह लिपियाँ भी देशों और जातियों की सीमाओं को लांघती चली गईं। 5वीं सदी ईसा पूर्व से 350 ईसा पूर्व तक इसका एक ही रूप मिलता है, लेकिन बाद में इसके दो विभाजन हो जाते हैं- उत्तरी धारा व दक्षिणी धारा। बायें से दायें लिखी जाने वाली ब्राह्मी लिपि की उत्तरी धारा में गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, शारदा और देवनागरी को रखा गया है। और दक्षिणी धारा में तेलुगु, कन्नड़, तमिल, कलिंग, ग्रंथ, मध्य देशी और पश्चिमी लिपि शामिल हैं। प्राचीन ब्राह्मी लिपि के उत्कृष्ट उदाहरण सम्राट अशोक द्वारा ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में बनवाये गए शिलालेखों के रूप में अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

सिंधु लिपि के बाद 'खरोष्ठी लिपि' भारत की प्राचीन लिपियों में से एक है। यह दाएँ से बाएँ की तरफ लिखी जाती थी। कुल 37 वर्णों वाली इस लिपि में स्वरों का अभाव था, यहाँ तक कि मात्राएँ और संयुक्ताक्षर भी नहीं मिलते हैं। 'शाहबाजगढ़ी' और 'मानसेहरा' (पाकिस्तान) स्थित सम्राट अशोक के अभिलेख 'खरोष्ठी लिपि' में है। इसका इस्तेमाल उत्तर-पश्चिमी भारत की गांधार संस्कृति में किया जाता था और इसलिए इसको 'गांधारी लिपि' भी बोला जाता है। इस लिपि के उदाहरण 'प्रस्तर शिल्पों', 'धातु निर्मित पत्रों', 'भांडों', 'सिक्कों',

'मूर्तियों' तथा 'भूर्जपत्र' आदि पर उपलब्ध मिले हैं। 'खरोष्ठी लिपि' के प्राचीनतम लेख 'तक्षशिला' और चार (पुष्कलावती) के आसपास से मिले हैं, किंतु इसका मुख्य क्षेत्र उत्तरी पश्चिमी भारत एवं पूर्वी अफगानिस्तान था। 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' के संस्थापक जेम्स प्रिंसेप (1799-1840) ने आधुनिक युग में पहली बार 'ब्राह्मी' और 'खरोष्ठी' लिपियों को पढ़ कर दुनिया को भारतीय भाषा की जड़ों की गहराई से परिचित कराया। 'गुप्त लिपि' को 'ब्राह्मी लिपि' भी बोला जाता है। यह गुप्त काल में 'संस्कृत' लिखने के लिए प्रयोग की जाती थी। 'देवनागरी', 'गुरुमुखी', 'तिब्बतन' और 'बंगाली'-'असमिया' लिपि का उद्भव इसी लिपि से हुआ है।

'गुप्त लिपि' का परिवर्तित रूप मानी जाने वाली 'कुटिल लिपि' को 'न्यूनकोणीय लिपि' तथा 'सिद्धमातृका' लिपि भी कहा जाता है। इस लिपि में अक्षरों के सिर ठोस त्रिकोण जैसे हैं, लेकिन कहीं-कहीं ये आड़े-तिरछे, टेढ़े-मेढ़े या कुटिल ढंग से भी हैं। यह लिपि छठी शताब्दी से 9वीं शताब्दी तक प्रचलन में रही।

आठवीं-नौंवी शताब्दी में कश्मीर में 'पश्चिमी ब्राह्मी' 'सिद्धमातृका लिपि' से 'शारदा लिपि' विकसित हुई। इसका उपयोग भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी-पश्चिमी भाग में सीमित था। 'नागरी लिपि' की तरह 'शारदा लिपि' भी 'कुटिल लिपि' से निकली है। 'शारदा लिपि' के अनेक अभिलेख कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश आदि में मिले हैं। 'शारदा लिपि' का सबसे पहला लेख सराहा (चंबा, हिमाचल प्रदेश) से प्राप्त प्रशस्ति है और उसका समय दसवीं शताब्दी है। यह कश्मीरी और गुरुमुखी (अब पंजाबी लिखने के लिए प्रयोग किया जाता है) लिपि में विकसित हुआ। सिखों के दूसरे गुरु अंगद देव द्वारा विकसित 'गुरुमुखी लिपि' में पंजाबी भाषा में 'गुरु ग्रंथ साहिब' का संकलन हुआ है।

7वीं से 12वीं शताब्दी के दौरान कलिंग प्रदेश (ओडिशा का प्राचीन नाम) में जिस लिपि (उड़िया के प्राचीन रूप को लिखने के लिए) का प्रयोग किया गया था उसे 'कलिंग लिपि' के रुप में जाना जाता है। इस लिपि में भी तीन शैलियाँ देखने को मिलती हैं। प्रारंभिक लेखों में मध्यदेशीय और दक्षिणी प्रभाव देखने को मिलता है। अक्षरों के सिरों पर ठोस चौखटे दिखाई देते हैं। आरम्भिक अक्षर समकोणीय हैं। लेकिन बाद में कन्नड़-तेलुगु लिपि के प्रभाव के अंतर्गत अक्षर गोलाकार होते नज़र आते हैं। 11 वीं शताब्दी के अभिलेख नागरी लिपि के हैं। पोड़ागढ़ (आंध्र प्रदेश) से नल वंश का (एकमात्र उपलब्ध शिलालेख) अभिलेख मिला है, उसके अक्षरों के सिरे वर्गाकार हैं।

दक्षिण भारत की प्राचीन लिपियों में एक 'ग्रंथ लिपि' है। 'तमिल'-'मलयालम' 'तुलु' व 'सिंहल' आदि लिपियों का विकास 'ग्रंथ लिपि' से हुआ है। दक्षिण भारत ;तमिलनाडुद्ध के पल्लव, पांडव एवं चोल शासकों ने ग्रंथ लिपि का विकास किया। इस लिपि का एक और संस्करण 'पल्लव ग्रंथ', पल्लव लोगों द्वारा प्रयोग किया जाता था, इसलिए इसे 'पल्लव लिपि' भी कहा जाता था। कई दक्षिण भारतीय लिपियाँ, जैसे कि बर्मा की 'मोन लिपि', इंडोनेशिया की 'जावाई लिपि' और 'मेर लिपि' इसी संस्करण से उपजी हैं। महाबलीपुरम् में धर्मराज रथ पर ग्रंथ लिपि में विवरण अंकित हैं। राजसिंह द्वारा बनवाए गए कैलाश मंदिर पर उत्कीर्ण शिलालेख, 'ग्रंथ लिपि' में ही हैं। 'तमिल' और 'मलयालम' भाषा को लिखने को लिखने में 'वट्टेलुतु लिपि' का उपयोग किया जाता था। इस लिपि पर ब्राह्मी लिपि का बहुत प्रभाव है और कुछ इतिहासकारों का कहना है की इसका विकास ब्राह्मी लिपि से ही हुआ है।

'तेलुगू' एवं 'कन्नड़' इन दोनों लिपियों का उद्गम स्रोत एक ही है और चालुक्य कालीन 'हलेबिड शिलालेख' (कर्नाटक) इसका प्राचीनतम साक्ष्य है। बाद में यह लिपि स्वतंत्र रूप से विभाजित हो गई 'तेलुगू लिपि' एवं 'कन्नड़ लिपि' में।

'कदंब लिपि' इसे 'पूर्व-प्राचीन कन्नड़ लिपि' भी बोला जाता है। इसी लिपि से 'कन्नड़' में लेखन का आरम्भ हुआ। यह कलिंग लिपि से लगभग मिलती-जुलती है। इसका इस्तेमाल 'संस्कृत', 'कोंकणी', 'कन्नड़' और 'मराठी' लिखने के लिए किया जाता था।

'तमिल लिपि' भारत और श्रीलंका में तमिल भाषा को लिखने में प्रयोग किया जाता था। यह ग्रंथ लिपि और ब्राह्मी के दक्षिणी रूप से विकसित हुआ। यह शब्दावली की भाषा है न कि वर्णमाला वाली। इसे बाएं से दाएं लिखा जाता है। 'सौराष्ट्र', 'बडगा', 'इरुला' और 'पनिया' आदि जैसी भाषाएं तमिल में लिखी जाती हैं।

'शाहमुखी लिपि' सूफियों द्वारा चलाई गई 'ईरानी लिपि' का 'पंजाबी' संस्करण है। अक्षरों में तोड़-मोड़ कर हेमाद्रि ने 'मोडी लिपि' शुरू किया। अक्षरों में तोड़-मोड़ के कारण इसे 'मोडी लिपि' कहा गया। 1950 से पहले मराठी को इसी लिपि में लिखा जाता था।

'देवनागरी लिपि'

'ब्राह्मी लिपि' से 'नागरी लिपि' का विकास हुआ। पहले इसे 'प्राकृत' और 'संस्कृत' भाषा को लिखने में उपयोग किया जाता था। इसी लिपि से से ही 'नंदिनागरी', 'देवनागरी', आदि लिपियों का विकास हुआ है। कई अनुसंधान इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि इस लिपि का विकास प्राचीन भारत में पहली से चौथी शताब्दी में गुजरात में हुआ था। बायें से दायें की ओर लिखी जाने वाली 'देवनागरी लिपि' अत्यंत व्यवस्थित तथा वैज्ञानिक लिपि है। प्रत्येक शब्द के ऊपर एक रेखा खींची होती है (कुछ वर्णों के ऊपर रेखा नहीं होती है) इसे 'शिरोरेखा' कहते हैं। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है जो प्रचलित लिपियों (रोमन, अरबी, चीनी आदि) में सबसे अधिक वैज्ञानिक है। इसमें ध्वनि एवं अक्षरों का उत्कृष्ट समन्वय होता है। इससे वैज्ञानिक और व्यापक लिपि

आठवीं-नौंवी शताब्दी में कश्मीर में 'पश्चिमी ब्राह्मी' 'सिद्धमातृका लिपि' से 'शारदा लिपि' विकसित हुई। इसका उपयोग भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी-पश्चिमी भाग में सीमित था। 'नागरी लिपि' की तरह 'शारदा लिपि' भी 'कुटिल लिपि' से निकली है। 'शारदा लिपि' के अनेक अभिलेख कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश आदि में मिले हैं। 'शारदा लिपि' का सबसे पहला लेख सराहा (चंबा, हिमाचल प्रदेश) से प्राप्त प्रशस्ति है और उसका समय दसवीं शताब्दी है। यह कश्मीरी और गुरुमुखी (अब पंजाबी लिखने के लिए प्रयोग किया जाता है) लिपि में विकसित हुआ। सिखों के दूसरे गुरु अंगद देव द्वारा विकसित 'गुरुमुखी लिपि' में पंजाबी भाषा में 'गुरु ग्रंथ साहिब' का संकलन हुआ है।

शायद केवल 'आइपीए लिपि' है। भारत के संविधान में देवनागरी लिपि को मान्यता प्रदान की गई है। 'संस्कृत', 'पालि', 'हिंदी', 'मराठी', 'कोंकणी', 'सिंधी', 'कश्मीरी', 'डोगरी', 'खस', 'नेपाली' ('अन्य नेपाली भाषाएं'), 'ताम्र भाषा', 'गढ़वाली', 'बोडो', 'अंगिका', 'मगही', 'भोजपुरी', 'मैथिली', 'संथाली' आदि भाषाएँ 'देवनागरी लिपि' में लिखी जाती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में 'गुजराती', 'पंजाबी', 'बिष्णुपुरिया मणिपुरी', 'रोमानी' और 'उर्दू' भाषाएं भी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

भारतीय और कुछ विदेशी भाषाओं द्वारा लिखी जाने वाली यह विश्व की सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाली लिपियों में से एक है। भारत की 'बांग्ला', 'गुजराती', 'गुरुमुखी' आदि कई लिपियाँ देवनागरी से बहुत अधिक मिलती-जुलती हैं। कम्प्यूटर प्रोग्रामों की सहायता से भारतीय लिपियों को परस्पर परिवर्तन बहुत आसान हो गया है। भारत तथा एशिया की अनेक लिपियों के संकेत देवनागरी से अलग हैं (उर्दू को छोड़कर), पर उच्चारण व वर्ण-क्रम आदि देवनागरी के ही समान हैं, क्योंकि वो सभी ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं। इसलिए इन लिपियों को परस्पर आसानी से लिप्यंतरित किया जा सकता है। इस लिपि में विश्व की समस्त भाषाओं की ध्वनियों को व्यक्त करने की क्षमता है। यही वह लिपि है जिसमे संसार की किसी भी भाषा को रूपांतरित किया जा सकता है।

देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता

देवनागरी लेखन की दृष्टि से सरल, सौंदर्य की दृष्टि से सुन्दर और वाचन की दृष्टि से सुपाठ्य है। भारतीय भाषाओं के किसी भी शब्द या ध्वनि को देवनागरी लिपि में ज्यों का त्यों लिखा जा सकता है और फिर लिखे पाठ को लगभग 'हू-ब-हू' उच्चारण किया जा सकता है, जो कि रोमन लिपि और अन्य कई लिपियों में सम्भव नहीं है, जब तक कि उनका कोई ख़ास मानकीकरण न किया जाये, जैसे आइट्रांस या आइएएसटी। इसमें कुल 52 अक्षर हैं, जिसमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। अक्षरों की क्रम व्यवस्था (विन्यास) भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं।

- एक ध्वनि-एक सांकेतिक चिह्न एक सांकेतिक चिह्न एक ध्वनि,
- स्वर और व्यंजन में तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक क्रम-विन्यास, वर्णों की पूर्णता एवं सम्पन्नता, उच्चारण,लेखन और मुद्रण में एकरूपता,

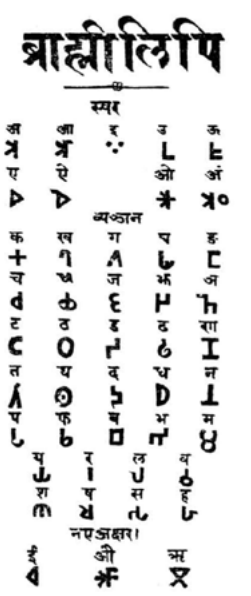

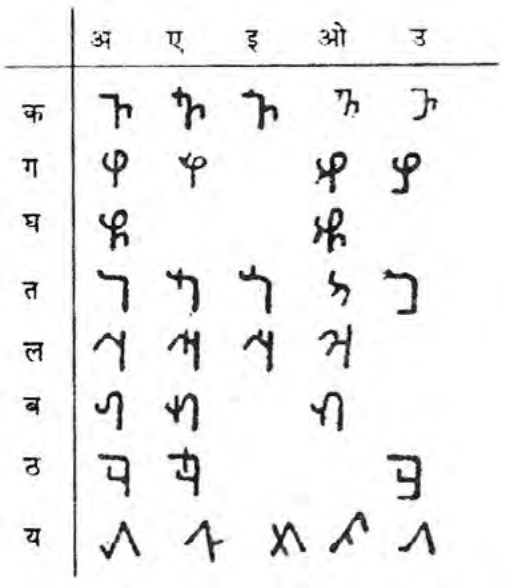

स्पष्टता

- रोमन,अरबी और फारसी में हस्तलिखित और मुद्रित रूप अलग-अलग हैं।
- देवनागरी लिपि सर्वाधिक ध्वनि चिह्नों को व्यक्त करती है।
- लिपि चिन्हों के नाम और ध्वनि में कोई अंतर नहीं (जैसे रोमन में अक्षर का नाम 'बी' है और ध्वनि 'ब' है)
- मात्राओं का प्रयोग, अर्ध अक्षर के रूप की सुगमता

कैथी लिपि

पाँचवीं-छठी शताब्दी से शुरू होने वाली और पिफर प्रशासनिक गतिविधियों के लिए कैथी लिपि बीसवीं शताब्दी के पहले दशक तक अलग-अलग समयों और जगहों पर जनलिपि, व्यापारिक लिपि, राजकीय लिपि और न्याय प्रणालिक लिपि के रूप में प्रचलित, समृद्ध और व्यावहारिक रही है। नियमित लेखन, साहित्यिक रचना, वाणिज्यिक लेनदेन, पत्राचार और व्यक्तिगत रिकॉर्ड रखने के लिए इस लिपि का उपयोग किया जाता था। एक धर्मनिरपेक्ष लिपि होने के बावजूद कैथी का उपयोग साहित्यिक और धार्मिक पांडुलिपियों को लिखने के लिए किया जाता था। इसकी लोकप्रियता की एक बड़ी वजह इसकी सुगमता थी।

गुप्त काल में 'कैथी लिपि' राज लिपि थी। सन् 1540 ईसवी में शेरशाह सूरी (उत्तर भारत) ने कैथी भाषा और लिपि को अपने शासन की आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया था। शेरशाह सूरी के शासन काल में व्यापारिक दृष्टिकोण से कैथी लिपि में मुद्राएं भी ढ़लवाई गई थी। 19 वीं सदी (ब्रितानिया हुकूमत तक) बिहार में आधिकारिक लिपि के रूप में यह मानित थी। सन् 1854 ईसवी में विद्यालयों में देवनागरी के मुकाबले में तीन गुना अधिक कैथी लिपि में रचित प्रारंभिक पुस्तकें थीं। सन् 1880 ईसवी में ब्रिटिश सरकार ने बिहार के न्यायालयों में वैधानिक लिपि के रुप में इसे मान्यता दिया था। मानित अमानित होते यह भाषा अपनी लिपि के साथ भूमि निबंधन आदि में सन् 1970 ईसवी तक उपयोग में रही।

बिहार में लोक गीत, सूफी गीत और तंत्र-मंत्र की पुस्तकें भी कैथी लिपि में लिखी जा चुकी हैं। कर्ण कायस्थ की पज्जी व्यवस्था की मूल प्रति भी कैथी लिपि में ही दरभंगा महाराज के संग्रहालय में सुरक्षित है। पटना म्यूजियम में कैथी लिपि की एक स्टोन स्क्रिप्ट भी सुरक्षित है। स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ राजेंद्र प्रसाद अपनी पत्नी को कैथी लिपि में ही चिट्ठियां लिखा करते थे। भिखारी ठाकुर के संदर्भ 'कैथी लिपि' में ही उपलब्ध हैं। स्वतंत्रता सेनानी एवं भोजपुरी गीतों के पूर्वी धुन के रचयिता श्री महेंद्र मिश्र के संदर्भ 'कैथी लिपि' में ही उपलब्ध हैं। चम्पारण आंदोलन के लिए महात्मा गांधी को बिहार लाने वाले पंडित राजकुमार शुक्ल की डायरी भी 'कैथी लिपि' में ही मिली है। महान स्वतंत्रता सेनानी स्वर्गीय वीर कुंवर सिंह के हस्ताक्षर भी 'कैथी लिपि' में मिले हैं।

समय के साथ क्रिश्चियन मिशनरीज़ ने अपने साहित्यिक रचनाओं का अनुवाद इसी 'कैथी लिपि' में किया। 'कैथी लिपि' को 'सिलेटी नागरी' और कई अन्य लिपियों का पूर्वज भी माना जाता है। इसका इस्तेमाल 'देवनागरी', 'फ़ारसी' और अन्य समकालीन लिपियों के साथ किया जाता था। महाजनों के द्वारा बही-खाते लिखने में इस्तेमाल होने के कारण यह 'महाजनी लिपि' भी कहलाई। बिहार, बंगाल का मालदा, झारखण्ड, पूर्वी उत्तर प्रदेश तक 'कैथी लिपि' को जानने वाले लोग मौजूद थे। बंगाल के पश्चिमी क्षेत्रों समेत सम्पूर्ण उत्तर भारत में सबसे ज्यादा लोकप्रिय लिपि थी 'कैथी लिपि'। खण्ड खण्ड भारत में महाजनपदों की भाषाओं में भोजपुर के साहित्य इतिहास का इतिहास ही भोजपुरी का इतिहास है।

'कैथी लिपि' में ही 'अवधि' (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, नेपाल), 'मगही' (बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल), 'बिहारी' (बिहार परिक्षेत्र), 'मैथिली' (बिहार, नेपाल), 'बज्जिका' (समस्तीपुर, सीतामढ़ी, मुजफ्फरपुर, वैशाली, पूर्वी चम्पारण, सारण, शिवहर, दरभंगा और नेपाल), 'राजस्थानी' (पश्चिमी क्षेत्र), मारवाड़ी (कुछ), 'भोजपुरी' (मध्य प्रदेश, नेपाल, मॉरीशस, गुयाना, त्रिनिदाद, दक्षिण अफ्रीका , सूरीनाम और फिजी) आदि भाषाएं लिखी और व्यावहारिक हुई।

कैथी और देवनागरी लिपि: समानता और असमानता

'कैथी लिपि' का उद्भव पांचवीं शताब्दी में और 'देवनागरी लिपि' का उद्भव दसवीं शताब्दी में हुआ। 'कैथी लिपि' केवल भारतीय भाषाओं में उपयोग और 'देवनागरी लिपि' भारतीय एवं कई विदेशी भाषाओं में उपयोग हुई। 'कैथी लिपि' में शिरोरेखा नहीं होती और 'देवनागरी लिपि' में शिरोरेखा आवश्यक है। 'कैथी लिपि' में दो शब्दों के बीच में दूरी नहीं होती और 'देवनागरी लिपि' में दो शब्दों के बीच में दूरी होती है। कई भाषाओं में 'कैथी लिपि' में 'ऊ' की मात्रा ' ू' नहीं होती और 'देवनागरी लिपि' में ऊ की मात्रा ' ू' होती है। कई भाषाओं में 'कैथी लिपि' में 'इ' की मात्रा 'ि' नहीं होती और 'देवनागरी लिपि' में इ की मात्रा ' ि' होती है। कई भाषाओं में 'कैथी लिपि' में चंद्रबिंदु ' ँ' की मात्रा नहीं होती और 'देवनागरी लिपि' में चंद्रबिंदु और रेफ होती है।

कई भाषाओं में 'कैथी लिपि' में प्रश्नवाचक, अल्पविराम और पूर्ण विराम चिह्न नहीं होता और 'देवनागरी लिपि' में प्रश्नवाचक, अल्पविराम और पूर्ण विराम चिह्न होता है।

(साहित्यकार)

विश्व में शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु की गई पीठों की स्थापना

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद का एक कार्य है, विश्व के शिक्षा जगत में भारतीय विषयों को बढ़ावा देना। इसके लिए परिषद् विदेशी विश्वविद्यालयों में पीठों की स्थापना करता है। इस वर्ष मार्च-अप्रैल माह में भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद के पीठ विभाग ने विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं और विषयों पर पीठ स्थापित करने के लिए सहमति पत्र यानी एमओयू किये। ताजिकिस्तान में ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के साथ हिन्दी सह उर्दु की पीठ स्थापित करने के लिए एमओयू किया गया। इस पीठ के माध्यम से ताजिकिस्तान में हिन्दी तथा उर्दु को बढ़ावा देने का कार्य किया जाएगा।

संयुक्त राज्य अमेरिका के टेक्सास राज्य के सबसे बड़े शहर ह्युस्टन के ह्युस्टन विश्वविद्यालय के साथ तमिल अध्ययन की पीठ की स्थापना के लिए एमओयू किया गया। इस पीठ का उद्देश्य है ह्युस्टन विश्वविद्यालय में तमिल भाषा, साहित्य और संस्कृति के अध्ययन को बढ़ावा देना। वेस्ट इंडीज के विश्वविद्यालय में पूर्व से ही भारत अध्ययन तथा भारतीय दर्शन, इंडोलॉजी तथा गाँधियन थॉट के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए एक पीठ स्थापित थी। इसका कार्यकाल समाप्त हो रहा था। इस वर्ष एक एमओयू करके उस पीठ के कार्यकाल को अब और पाँच वर्षों के लिए बढ़ाया गया है।

दक्षिण अफ्रीका के एक देश जाम्बिया के साथ अकादमिक सम्बन्धों तथा उसके माध्यम से दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बन्धों को मजबूत बनाने के लिए अप्रैल माह में जाम्बिया विश्वविद्यालय में एक भारत अध्ययन केंद्र स्थापित करने के लिए एमओयू किया गया। इस केंद्र में भारतीय दर्शन, इतिहास और संस्कृति का अध्ययन किया जाएगा।

थाईलैंड में संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन को प्रोत्साहित करने के लिए वहाँ के सिल्पाकॉर्न विश्वविद्यालय में एक पीठ स्थापित थी। उस पीठ को नवीकृत करने के लिए एक एमओयू किया गया।

इस प्रकार गत दो माह में ही परिषद् ने विश्व के पाँच विश्वविद्यालयों में भारतसम्बन्धी अध्ययन और भारतीय भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए पीठों को स्थापित किया और उनके कार्यकाल को बढ़ाया।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की ओर से जाम्बिया में भारत के उच्चायुक्त श्री अशोक कुमार तथा जाम्बिया विश्वविद्यालय के कार्यकारी कुलपति प्रो. एन सिक्वीबेले एमओयू पर हस्ताक्षर करते हुए

थाईलैंड के भारतीय राजदूत नागेश सिंह और सिल्पाकॉर्न विश्वविद्यालय के अध्यक्ष तानासैत नॉउहीरुन्पत संस्कृत पीठ के नवीकृत करने के एमओयू पर हस्ताक्षर करते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ह्युस्टन विश्वविद्यालय के अधिकारियों के साथ एमओयू करते हुए।

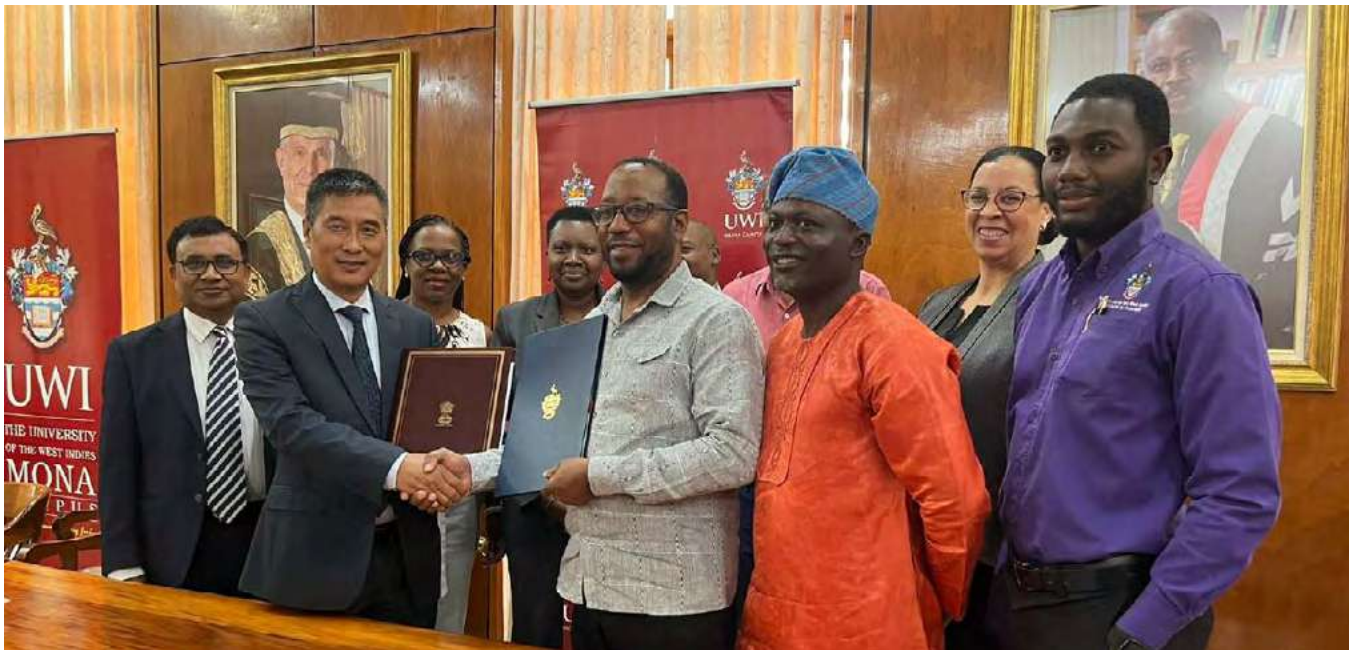

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद वेस्ट इंडीज विश्वविद्यालय के अधिकारियों के साथ एमओयू करते हुए।

ताजिकिस्तान में भारत के राजदूत विराज सिंह और ताजिक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रेक्टर एमओयू पर हस्ताक्षर करते हुए।

लोकतंत्र की भारतीय परम्परा से विश्व का कराया परिचय

आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद ने एक अभिनव पहल करते हुए जेन नेक्स्ट डेमोक्रेसी नेटवर्क प्रोग्राम (लोकतंत्र संजाल की भावी पीढ़ी का कार्यक्रम) प्रारंभ किया। इसके तहत विश्व के प्रमुख 75 लोकतांत्रिक देशों तथा मंचों के युवा, ऊर्जावान तथा नवोदित सामाजिक तथा राजनीतिक लोगों को भारत में आमंत्रित करके भारत की लोकतांत्रिक परम्पराओं, सांस्कृतिक धरोहरों तथा विकास कार्यों से परिचय कराया जाता है। इस क्रम में नवम्बर, 2021 से लेकर 19 अप्रैल, 2023 तक तक परिषद् ने कुल नौ समूहों को भारत बुलाया है, जिसमें 59 देशों से 127 पुरुष तथा 95 स्त्री कुल 222 प्रतिनिधि सहभागिता कर चुके हैं।

इन समूहों का 41 सांसदों, आठ मंत्रियों/सहमंत्रियों/पूर्वमंत्रियों, पाँच लोक/राज्य सभा के अध्यक्षों/उपाध्यक्षों, 39 सत्ता/विपक्ष के राजनेताओं, 39 प्रशासनिक अधिकारियों, चार विधायकों, सात मेयरों, चार स्वयंसेवी संगठनों, 12 छात्र नेताओं तथा 63 प्राध्यापक, पत्रकार, उद्यमियों, अधिवक्ता आदि अन्यान्य व्यक्तित्वों से संवाद करवाया गया है। इन समूहों ने देश के कुल 12 राज्यों का भ्रमण किया।

इस कार्यक्रम का आठवाँ समूह गत 06 से 15 मार्च तक भारत में था। इस समूह में चिल्ली, इक्वाडोर, नाइजीरिया, स्विट्जरलैंड, केन्या, मैक्सिको, सूरीनाम और न्यूजीलैंड सहित कुल आठ देशों के 38 प्रतिनिधि शामिल थे। दिल्ली के अलावा इस समूह ने असम और मेघालय राज्यों का भ्रमण किया। असम के राज्यपाल से उनका संवाद हुआ। नॉर्थईस्टर्न विश्वविद्यालय के कुलपति से वे मिले और साथ ही दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों के साथ भी उनकी गोष्ठी की गई।

Indian Council for Cultural Relations
PRESENTS

जी 20 तथा वसुधैव कुटुम्बकम् के विषयों पर प्रतियोगिता सम्पन्न

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के अध्यक्ष डॉ. विनय सहस्रबुद्धे जी की पहल पर परिषद् ने पहली बार भारत में पढ़ रहे विदेशी छात्र-छात्राओं के लिए फरवरी, 2023 में एक लेख तथा भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया। इस आयोजन में परिषद् द्वारा छात्रवृत्ति प्राप्त छात्रों के अलावा स्वयं के व्यय से भारत में पढ़ने वाले विदेशी छात्रों भी सहभागी हो सकते थे।

भाषण प्रतियोगिता

भाषण प्रतियोगिता दो भागों में थी। इसके विषय थे –

1. वसुधैव कुटुम्बकम् की प्रासंगिकता अथवा राष्ट्रों की वैश्विक दृष्टि – सम्पूर्ण विश्व एक परिवार
2. 20वीं शताब्दी के मध्य में उपनिवेशवाद से वैश्विक संघर्ष को मजबूत करने में भारत की भूमिका
3. पारम्परिक भारतीय ज्ञान का महत्त्व

प्रतियोगिता का पहला चरण परिषद् के क्षेत्रीय कार्यालयों तथा मेवाड़ विश्वविद्यालय में आयोजित हुआ और दूसरा तथा अन्तिम चरण जिसमें पहले चरण के विजेताओं ने भाग लिया, मेवाड़ विश्वविद्यालय में गत 19-21 फरवरी, 2023 को आयोजित किया गया। इस अन्तिम चरण में कुल 14 प्रतिभागी थे और इसका परिणाम निम्नानुसार रहा –

क्रमांक	छात्र का नाम	देश	पुरस्कार
1	श्री इजियोक माइकल ओबीना	नाइजीरिया	प्रथम
2*	सुश्री इन्द्रकान्ति श्रीप्रदा	संयुक्त राज्य अमेरिका	द्वितीय
3*	सुश्री ननाजी क्लारा सोशिमैजेम	नाइजीरिया	द्वितीय
4*	श्री प्रिंस यादव	नेपाल	तृतीय
5*	सुश्री मोहिनी प्रिथुला	बांग्लादेश	तृतीय

** निर्णायक मंडल ने द्वितीय और तृतीय स्थान के लिए दो-दो छात्रों का चयन किया।*

लेख प्रतियोगिता

लेख प्रतियोगिता का आयोजन ऑनलाइन ही किया गया। इसमें 40 देशों से 252 छात्रों ने सहभागिता की। लेख प्रतियोगिता के विषय निम्नानुसार थे –

1. भारत में प्रजातंत्र का विकास
2. आध्यात्मिक नेतृत्व का भारत के विकास में भूमिका
3. भारत में स्टेम (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अभियांत्रिकी तथा गणित) शिक्षण तथा उसका भविष्य
4. जी 20 समूह की भारत की अध्यक्षता – महत्त्व तथा प्रभाव

गत 20 फरवरी, 2023 को लेख प्रतियोगिता में तीन श्रेष्ठ आलेखों के लेखकों को पुरस्कृत किया गया।

लेख तथा भाषण दोनों ही प्रतियोगिता के विजेताओं को मेवाड़ विश्वविद्यालय में आयोजित किये गये कार्यक्रम में पुरस्कृत किया गया।

*Group photograph of students participated in the Elocution event held at Mewar university.

विशिष्ट योगदान देने वाले पूर्व छात्रों को मिले भारतमित्र सम्मान

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विशिष्ट पूर्व छात्र सम्मान की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य परिषद के उन भूतपूर्व छात्रों को पहचानना है जिन्होंने अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की हैं और/या भारत और उनके देश के बीच समझ, सदिच्छा तथा मित्रता के प्रचार में उत्कृष्ट योगदान दिया है। वर्ष 2023 से यह पुरस्कार भारतमित्र सम्मान विशिष्ट छात्र "Bharat Mitra Samman Distinguished Alumni" नाम से दिया जाएगा। पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं का चयन परिषद द्वारा नामित जूरी सदस्यों द्वारा किया जाता है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के सहभागिता से दिनांक 27 मार्च 2023 को भारतीय उच्चायोग, कोलम्बो, श्रीलंका द्वारा विशिष्ट पूर्व छात्र सम्मान 2020 हेतु पुरस्कार समारोह आयोजित किया गया जिसमें डॉ. आर के लाल मर्विन धर्मासिरी को सम्मानित किया गया।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विश्व संस्कृत पुरस्कार की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य उन प्रसिद्ध संस्कृत विद्वानों को पहचानना है जिन्होंने संस्कृत भाषा और साहित्य में अध्ययन / शिक्षण / अनुसंधान में उत्कृष्ट योगदान दिया है। पुरस्कार प्राप्तकर्ता का चयन परिषद द्वारा नामित जूरी सदस्यों द्वारा किया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की सहभागिता से दिनांक 18 अप्रैल 2023 को भारतीय राजदूतावास, स्लोवेनिया द्वारा विश्व संस्कृत पुरस्कार 2022 हेतु पुरस्कार समारोह आयोजित किया गया जिसमें सुश्री व्लास्ता पशिनेर क्लांदेर को संस्कृत अध्ययन हेतु सम्मानित किया गया।

इस वर्ष 2023 से यह पुरस्कार भारतमित्र सम्मान – संस्कृत के नाम से दिया जाएगा।

दिनांक 27 मार्च 2023 को श्रीलंका में डॉ. विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष, आई.सी.सी.आर द्वारा Dr. RK Lal Mervin Dharmasiri को विशिष्ट पूर्व छात्र सम्मान 2020 प्रदान किया गया।

दिनांक 18 अप्रैल 2023 को स्लोवेनिया में माननीय श्रीमती मिनाक्षी लेखी, विदेश राज्य मंत्री द्वारा सुश्री व्लास्ता पशिनेर क्लांदेर Ms. Vlasta Pacheiner Klander को विश्व संस्कृत पुरस्कार 2022 प्रदान किया गया।

गोआ में संपन्न हुआ सांस्कृतिक कार्यक्रम

शंघाई सहयोग संगठन (एस.सी.ओ.) एक बहुपक्षीय सैन्य संगठन है जिसकी स्थापना 15 जून 2001 में हुई। वर्तमान में एस. सी. ओ. के सदस्य देश भारत, चीन, कजकिस्तान, किर्गिस्तान, तजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान व पाकिस्तान है। एस.सी.ओ. की अध्यक्षता प्रत्येक वर्ष रोटेशन के माध्यम से तय की जाती है। वर्ष 2022-23 की अध्यक्षता भारत को प्राप्त हुई।

गत 04 व 05 मई 2023 को गोवा में एस.सी.ओ. के विदेश मंत्रियों की बैठक का आयोजन किया गया। इस बैठक में भारत समेत सदस्य देशों के विदेश मंत्रियों ने हिस्सा लिया। इस उपलक्ष्य में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिसमें 41 देशी-विदेशी कलाकारों ने नृत्य व संगीत की प्रस्तुति दी। इस नृत्य समूह की कोरियोग्राफी सुश्री मैत्रेयी पहाड़ी द्वारा की गई।

इन सांस्कृतिक कार्यक्रमों में कथक, ओडिसी, भरतनाट्यम, मणिपुरी, लावणी, भांगड़ा, छाऊ, पुंग चोलम इत्यादि लोकनृत्य व बॉलीवुड के स्वर्णिम काल (राजकपूर, मिथुन चक्रवर्ती इत्यादि) के गीतों पर नृत्य प्रस्तुतियाँ शामिल की गई। कलाकारों द्वारा प्रस्तुत नृत्य विश्व को भारत की प्राचीन व विशाल संस्कृति की झलक दिखाते है | इस प्रकार एस. सी. ओ. के मंच पर इन नृत्यों ने सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व किया और भारतीय नृत्य परम्परा का दुनिया को दर्शन करवाया।

सांस्कृतिक प्रस्तुतियों में एस.सी.ओ. के सदस्य देशों के कलाकारों ने भी अपने अपने देश के नृत्यों को प्रस्तुत किया व इसके माध्यम से अपने देश की सांस्कृतिक विरासत को दिखाया। यह दो दिवसीय कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क			प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	₹	500 (भारत)		
		US$	100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	₹	1200 (भारत)		
		US$	250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय		10%		
	पुस्तक विक्रेता		25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली–110002, भारत
फोन नं. 011–23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 46 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ–साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार–प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश–विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन–योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
हिंदी अनुभाग	:	23370237, 23379309-10 एक्स. 2256/2272

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

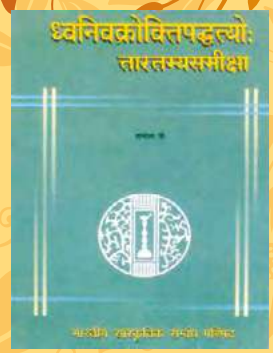

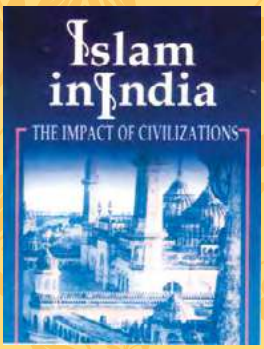

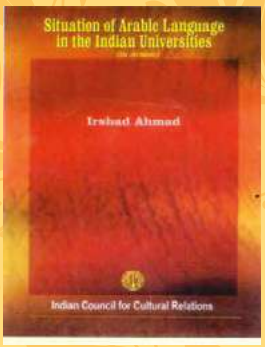

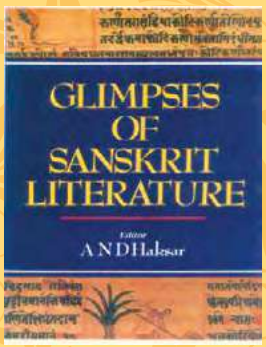

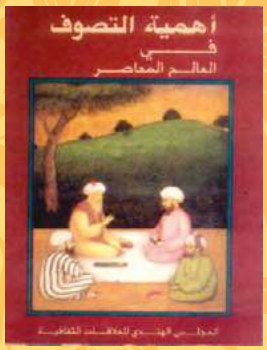

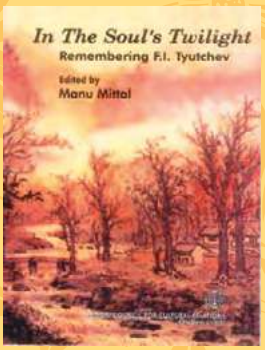

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका